विषय सूची

चित्र-सूची

HAUDHRY
SOAPS
P.DAYAL

पुजारी

होकर सदय नाथ अब आओ, अन्तस्थल में करो निवास,
हृदय-मुकुर में दीख पड़े कुछ, मिटे वाह्य पूजन-उल्लास।

FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD

[चित्रकार श्री० सुवन, बी० ए०

आध्यात्मिक स्वराज्य हमारा ध्येय, सत्य हमारा साधन और प्रेम हमारी प्रणाली है, जब तक इस पावन अनुष्ठान में हम अविचल हैं, तब तक हमें इसका भय नहीं, कि हमारे विरोधियों की संख्या और शक्ति कितनी है।

वर्ष ११, खण्ड १ | जनवरी, १९३३ | सं० ३, पू० सं० १२३

स्मरण के दो शब्द

[प्रोफ़ेसर रामकुमार वर्मा, एम० ए०]

भारती, भव्य भाव भाण्डार,
सजा दो शब्दों पर सुकुमार।
हृदय उनको चुन-चुन कर चारु,
गूँथ डाले कविता का हार!

सुनहले कर से उषा उदार,
लुटाती है सोने का भार।
देवि, मेरी कविता कमनीय,
लुटाती रहे स्वर्ण सा प्यार!

मिला दो निज स्वर सरस, सहास,
व्यथित मेरे स्वर में कल्याणि।
जगा दे मेरे सोए भाव,
प्रवीणा वीणा वीणापाणि!

निशा-तम-सी विस्मृति में देवि,
खो गए मेरे भाव अनूप।
हाथ-हारों से उनका हार,
सजा दो तारों के अनुरूप!

सरस्वति, सरस स्वरों से सजा,
सजग सरिता-सा कविता-तार।
हिला दे, हिल कर विश्व विराट,
छलक जावे पल-पल में प्यार!!
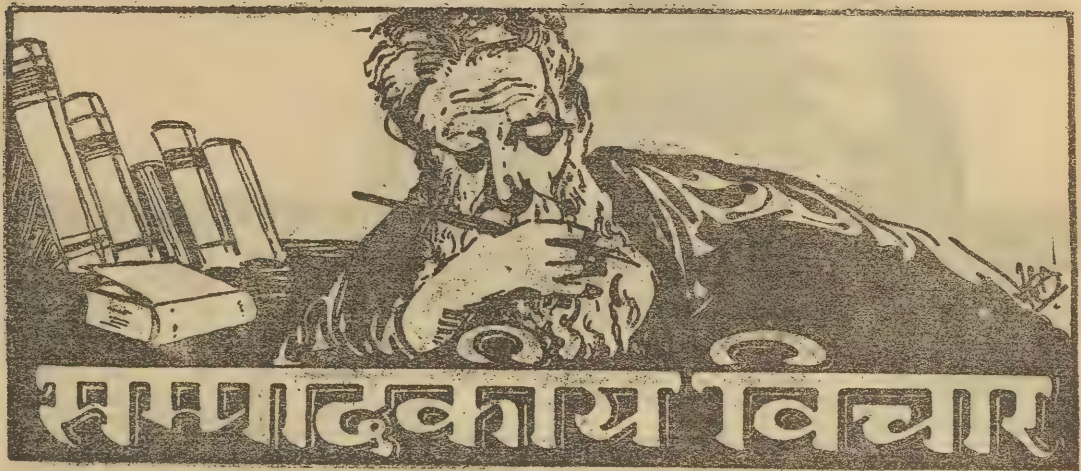
जनवरी, १९३३

संसार-सङ्कट

त यूरोपीय महासमर की संहार-कारिणी शक्ति ने समस्त संसार को व्यथित कर दिया था और उसके कारण मनुष्य जाति को ऐसे कष्टों का सामना करना पड़ा था, जिनकी लोगों ने पहले कल्पना तक न की थी। इस युद्ध में भाग लेने वालों के अतिरिक्त साधारण जनता के हज़ारों व्यक्ति भी लम्बी मार वाली तोपों और हवाई जहाज़ों की गोलाबारी द्वारा मारे गए थे और प्रायः सभी देशों के निवासियों को भयानक आर्थिक कष्ट भोगना पड़ा था। इसलिए जब, युद्ध का अन्त होने के पश्चात् सन् १९१९ में, विजयी राष्ट्रों ने 'लीग ऑफ़ नेशन्स' अथवा राष्ट्र-सङ्घ की स्थापना की तो कितने ही लोगों को आशा हुई थी कि अब इस प्रकार की प्रलयङ्कर घटना की पुनरावृत्ति न होगी और मनुष्य जाति कुछ काल तक शान्ति-सुख का उपभोग कर सकेगी। लोगों का इस प्रकार की आशा करना सर्वथा निर्मूल भी न था; क्योंकि इस युद्ध में मित्र-राष्ट्रों की विजय का अधिकांश श्रेय अमेरिका को प्राप्त था, और अमेरिका के राष्ट्र-नायक प्रेज़िडेण्ट विल्सन ही इस राष्ट्र-सङ्घ के प्रधान प्रेरक थे। उन्होंने युद्ध में सम्मिलित होते समय चौदह शर्तों की घोषणा की थी, जिनमें से चौथी शर्त यह थी कि "इस बात का भली-भाँति विश्वास दिला दिया जाय, कि प्रत्येक देश की युद्ध-सामग्री इतनी हद तक कम कर दी जायगी कि वह केवल देश की भीतरी शान्ति स्थिर रख सकने के लिए यथेष्ट हो।" इसका स्पष्ट अर्थ यह था कि प्रत्येक देश की सैन्य-शक्ति इतनी घटा दी जायगी, जिससे किसी अन्य देश पर आक्रमण कर सकने में वह असमर्थ हो जाय। इस शर्त के आधार पर सन्धि होने के पश्चात् सर्व-प्रथम जर्मनी से अपनी सेना और युद्ध-सामग्री कम करने को कहा गया और उसने इसे स्वीकार भी कर लिया। जर्मनी की सेना, जो महायुद्ध से पूर्व संसार के समस्त राष्ट्रों की सेना की अपेक्षा वृहत और शक्तिशालिनी थी, एक प्रकार से पूर्णतया भङ्ग कर दी गई और उसके स्थान पर सात डिवीज़न इन्फ़ेण्टरी (पैदल सेना) और तीन डिवीज़न कैवेलरी (घुड़सवार) की एक नवीन सेना

सङ्गठित की गई; जिसमें सिपाहियों और अफ़सरों की संख्या कुल मिला कर एक लाख है। जर्मन-सेना का जनरल स्टाफ़ तोड़ दिया गया, युद्ध-सामग्री में अत्यन्त कमी कर दी गई; बख़्तरदार गाड़ियों, टैङ्क और ज़हरीली गैस की मनाही कर दी गई; और अनिवार्य सैनिक शिक्षा निषिद्ध ठहरा दी गई। देश की रक्षा के लिए सीमा पर जो क़िलेबन्दी की गई थी वह भी तोड़ दी गई। दस हज़ार टन से भारी रणपोतों और ग़ोताख़ोर नावों का बनाना रोक दिया गया और जल-सेना की संख्या घटा कर केवल पन्द्रह हज़ार कर दी गई। फ़ौजी ढङ्ग के हवाई जहाज़ों का बनाना सर्वथा रोक दिया गया। इन उपायों से जर्मनी की सैनिक शक्ति इतनी क्षीण कर दी गई कि वह सिवा पुलिस का काम कर सकने के और किसी मतलब की नहीं रही। बाहरी देशों पर आक्रमण कर सकना तो दूर, यदि देश के भीतर सशस्त्र क्रान्ति आरम्भ हो जाय तो यह सेना उसे दबा सकने तक में भी समर्थ नहीं हो सकती।

प्रेज़िडेण्ट विल्सन को इस समय भी अपनी शर्त का ख़याल था और उन्होंने सन्धि-पत्र के उस अध्याय के आरम्भ में, जिसमें जर्मनी की सैन्य-शक्ति को कम करने की योजना की गई थी, एक भूमिका सम्मिलित करा दी, जिसमें कहा गया था कि "समस्त देशों के सम्मुख एक ऐसा आदर्श उपस्थित करने के लिए, जिससे कि प्रत्येक देश की सैन्य-शक्ति नियमित की जा सके, जर्मनी निम्न-लिखित स्थल-सेना, जल-सेना और वायु-सेना सम्बन्धी नियमों को स्वीकार करता है।" यदि इस सन्धि-पत्र की शर्तों का पालन किया जाता, तो उचित यही था कि जैसे ही जर्मनी का निरशस्त्रीकरण समाप्त हुआ, अन्य राष्ट्र भी अपनी सेनाओं और शस्त्रास्त्रों में कमी करने लगते। परन्तु जब कई वर्ष बीत जाने पर भी विजयी राष्ट्रों ने इस प्रकार की कोई चेष्टा न की, तो जर्मनी स्वभावतः ही इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि ये राष्ट्र अपनी सैन्य-शक्ति को घटाना नहीं चाहते और सन्धि-पत्र की शर्तों का उनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं है।

सन् १९२६ में जर्मनी भी राष्ट्र-सङ्घ का सदस्य बना लिया गया और उसी समय से वह सङ्घ के अधिवेशनों में अन्य राष्ट्रों के निरशस्त्रीकरण पर ज़ोर देने लगा। उसकी ओर से जितने प्रतिनिधि समय-समय पर राष्ट्र-सङ्घ की कार्यवाही में भाग लेते रहे, उन सबने पूर्ण औचित्य और दृढ़ता के साथ इस माँग का समर्थन किया। उन लोगों ने इस बात को भली-भाँति स्पष्ट कर दिया कि जर्मनी की इच्छा यह नहीं है कि वह अन्य राष्ट्रों के वचन-भङ्ग करने का अनुकरण करके स्वयं भी उन्हीं की भाँति सेना और युद्ध-सामग्री की वृद्धि करने लगे। क्योंकि न तो उसकी आर्थिक स्थिति इसके अनुकूल है और न वह जनता के टैक्स की रक़म को इस हानिकारक चेष्टा में बहाना उचित समझता है। पिछले वर्षों के कष्ट-सहन ने जर्मनी के अधिवासियों के हार्दिक भावों को बदल दिया है और वे संसार में निरर्थक रक्तपात होने के विरोधी बन गए हैं। इसलिए जर्मनी की माँग यही है कि अन्य देश भी उसीका अनुकरण करके अपनी सैन्य-शक्ति घटाना आरम्भ कर द।

इस प्रश्न का निबटारा करने के लिए राष्ट्र-सङ्घ ने निरशस्त्रीकरण कॉन्फ्रेन्स की योजना की, जिसके अब तक कई अधिवेशन हो चुके हैं। इन अधिवेशनों में रूस, इटली और अमेरिका ने भी जर्मनी की माँग का समर्थन किया और उसे सर्वथा न्याययुक्त बतलाया। पर सङ्घ के अन्य सदस्यों के, जिनमें मुख्य इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और जापान हैं, विरोध के कारण कोई वास्तविक निर्णय नहीं हो सका। यह परिस्थिति यूरोप ही नहीं, समस्त संसार के कल्याण की दृष्टि से बड़ी आशङ्काजनक है। सैन्य-शक्ति और सैनिक बजट की कोई सीमा न होने के कारण प्रत्येक देश अपनी शक्ति को बढ़ाने के पीछे पागल हो रहा है। जैसे ही विज्ञान द्वारा किसी नवीन संहारक उपाय का आविष्कार होता है, प्रत्येक देश उसको अपनी युद्ध-सामग्री में सम्मिलित करने की चेष्टा करने लगता है। देश की आय का एक बड़ा अंश युद्ध-सामग्री और एक बड़ी सेना तैयार रखने में ख़र्च हो जाता है। अङ्कशास्त्र के जानने वालों का अनुमान है कि इस समय संसार के समस्त राष्ट्र कम से कम एक अरब पौण्ड सेनाओं के लिए ख़र्च कर रहे हैं। छोटे राष्ट्र भी बड़े राष्ट्रों की नक़ल करते हैं और इस प्रतियोगिता में उनका दिवाला निकला जा रहा है। नीचे कुछ देशों के वार्षिक आय-व्यय के हिसाब के आधार पर उनके सेना-विभाग में होने वाले ख़र्च का विवरण दिया जाता है:—

देश	सम्पूर्ण आय	सेना-विभाग का ख़र्च
ग्रेटब्रिटेन	८५,७३,८१,५७७ पौण्ड	११,०५,२४,००० पौण्ड
फ़्रान्स	५२,६४,३४,८५,३९५ फ़्रैङ्क	११,४०,०२,८९,०४३ फ़्रैङ्क
जापान	१,२७,३५,००,००० येन	३१,३४,८५,००० येन
पोलैण्ड	२,३७,५०,००,००० लोटी	८२,९३,००,००० लोटी
जूगोस्लेविया	११,४०,००,००,००० दीनार	२,५९,५९,०७,००० दीनार
जैकोस्लोविया	९,३२,३३,७६,००० क्रोन	१,३०,००,००,००० क्रोन

(एक पौण्ड में १२५ फ़्रैङ्क, ९'८ येन, ४३'३४ लोटी, २५'२२ दीनार और १६४'२५ क्रोन होते हैं)

क्या यह आश्चर्य का विषय नहीं है कि एक ओर तो ये युद्ध-प्रेमी राष्ट्र बेकारी, व्यापार की मन्दी और असहनीय ऋणों का रोना रोते हैं और दूसरी ओर इतनी बड़ी धनराशि युद्ध-सामग्री की तैयारी में बहाते रहते हैं ? यह प्रवृत्ति किसी एक राष्ट्र के लिए नहीं, वरन् समस्त संसार के लिए घोर अनिष्टकारिणी है और जब तक इसे दबाया न जायगा तब तक संसार की आर्थिक दशा के सुधरने की आशा रखना व्यर्थ है। इसके फल-स्वरूप जनता की शिक्षा, स्वास्थ्य-रक्षा आदि उपयोगी कार्यों के लिए पर्याप्त रुपया नहीं मिलता और लोगों का नैतिक पतन होता जाता है।

आरम्भ में लोगों को निश्शस्त्रीकरण कॉन्फ़्रेन्स से कुछ आशा हुई थी और वे समझने लगे थे कि इसके द्वारा चाहे अन्य राष्ट्रों की सैन्य-शक्ति जर्मनी के समान घटाई न जा सके, पर कम से कम विभिन्न राष्ट्रों के सैनिक बजट नियमित कर दिए जायँगे और उनमें जो सैन्य-शक्ति की वृद्धि की होड़ लगी हुई है, उसका अन्त हो जायगा। परन्तु जैसे-जैसे समय बीतता जाता है, यह आशा झूठी सिद्ध हो रही है। लक्षणों से तो यही जान पड़ता है कि या तो यह कॉन्फ़्रेन्स किसी निर्णय पर पहुँचने के पहले ही समाप्त हो जायगी अथवा कोई ऐसा अस्पष्ट और द्विअर्थी निर्णय करेगी, जिससे युद्ध-सामग्री की वृद्धि में विशेष अन्तर नहीं पड़ेगा और भावी युद्ध की आशङ्का इसी प्रकार बनी रहेगी। पिछले जून मास में अमेरिका के प्रेज़िडेण्ट हूवर ने कॉन्फ़्रेन्स के सम्मुख एक प्रस्ताव रक्खा था कि समस्त राष्ट्र की सब प्रकार की युद्ध-सामग्री का एक तिहाई भाग नष्ट कर दिया जाय और सेना भी एक तिहाई घटा दी जाय ; पर इसे इङ्गलैण्ड और फ़्रान्स ने स्वीकार नहीं किया। रूस के प्रतिनिधि ने समस्त युद्ध-सामग्री को एकदम नष्ट करने का प्रस्ताव किया, पर उसकी बातें केवल दिल्लगी मानी गईं। यदि किसी प्रकार अमेरिका के दबाव से अथवा आर्थिक सङ्कट से बचने के ख़याल से सैनिक बजटों को किसी अंश में घटाने का प्रस्ताव स्वीकार भी किया जायगा तो उसके प्रतिकार के लिए सेना को और भी अधिक सङ्गठित तथा शिक्षित बनाया जायगा, जिससे संख्या में कम होते हुए भी वह अधिक कारगर हो सके। क्योंकि आजकल युद्ध-विज्ञान-विशारदों का यह मत होता जाता है कि युद्ध में सफलता प्राप्त करने के लिए बड़ी सेना की अपेक्षा छोटी और सुसङ्गठित सेना अधिक उपयोगी है। विशेषतः इधर विज्ञान ने हवाई जहाज़ों, बमों और ज़हरीली गैस की कार्यकारिता में जो उन्नति की है, उससे बड़ी सेनाओं तथा बहुव्ययसाध्य रणपोतों तथा तोपों की आवश्यकता और भी कम हो गई है और युद्धशील राष्ट्र थोड़े व्यय से ही अपनी संहारक शक्ति को बेहद बढ़ा सकते हैं।

इस दशा में विचारशील और मनुष्य जाति के कल्याण की कामना रखने वाले व्यक्तियों के हृदय में स्वभावतः चिन्ता का भाव उत्पन्न हो रहा है और वे भावी महासमर के बड़े बुरे दुःस्वप्न देख रहे हैं। इसमें

सन्देह नहीं कि इस शस्त्रास्त्रों की दौड़ का अन्तिम परिणाम दूसरा भीषण महासमर ही होगा। सन् १८८७ में इङ्गलैण्ड की सरकार के आय-व्यय सचिव लॉर्ड रैण्डोल्फ़ चर्चिल ने उस वर्ष के सैनिक बजट का विरोध करते हुए कहा था कि "पास में एक तेज़ धार वाली तलवार रखने से स्वयं ही दिल में उसकी तेज़ी दिखलाने का लालच पैदा होता है, जिसका रोके रहना बड़ा कठिन काम है।" आजकल के शासक सन् १८८७ की अपेक्षा सैन्य-शक्ति के बढ़ाने में तिगुना-चौगुना ख़र्च कर रहे हैं और शस्त्रास्त्रों की भीषणता भी उस समय की अपेक्षा सैकड़ों गुनी अधिक बढ़ गई है। ऐसी दशा में थोड़ा सा भी बहाना मिल जाने पर संसार में युद्ध की आग का भड़क उठना किसी प्रकार असम्भव नहीं कहा जा सकता। इसी सम्भावना को देख कर सुप्रसिद्ध फ्रेञ्च दार्शनिक रोमारोलाँ ने कई महीने पहले संसार के समानतावादी तथा न्यायप्रेमी व्यक्तियों से अपील करते हुए कहा था :—

"युद्ध आ रहा है, चारों तरफ़ से आ रहा है। यह समस्त राष्ट्रों के लिए अत्यन्त सङ्कट का समय है। अगर यह संसार के किसी एक कोने में आग लगा देगा, तो वह आग उसी स्थान में समाप्त न हो जायगी। कुछ ही सप्ताह में अथवा कुछ ही दिनों में वह प्रत्येक वस्तु को भस्म कर देगी। यह एक अचिन्तनीय घटना होगी, जो वर्तमान सभ्यता का पूर्णरूप से नाश कर देगी। इस समय मानव-सभ्यता और समस्त संसार इस सङ्कट में पड़ा है। लोगों को चाहिए कि इस सम्बन्ध में अभी से सावधान हो जायँ। समस्त राष्ट्रों, समस्त राजनीतिक दलों और प्रत्येक स्त्री-पुरुष का, जिन्हें न्याय से प्रेम है, कर्तव्य है कि इस सम्बन्ध में अभी से चेष्टा करने लगें। यह किसी विशेष देश, या श्रेणी या दल के हित का प्रश्न नहीं है। प्रत्येक वस्तु का अस्तित्व भय में है और सब लोगों की सम्मिलित चेष्टा से ही इस सङ्कट से परित्राण हो सकता है। हम सब लोगों को अपने इस शत्रु का विरोध करने के लिए सम्मिलित हो जाना चाहिए। युद्ध पर आक्रमण करो और उसकी सम्भावना नष्ट कर दो।"

❀ ❀ ❀

चाँद—जनवरी, १९२३

स्त्री-शिक्षा के कार्य-क्रम में परिवर्तन की आवश्यकता

[सम्पादकीय]

गत यूरोपीय युद्ध ने यह स्पष्ट रीति से सिद्ध कर दिया है कि स्त्रियों की आत्मिक, शारीरिक और मानसिक शक्तियों के पूर्ण विकास में बाधा डालने से मनुष्य-मात्र को बड़ी हानि पहुँचती है। यही कारण है कि आज पश्चिम के प्रायः सभी देशों में इस बात का भरसक प्रयत्न किया जा रहा है कि स्त्रियों की शक्तियों का पूर्ण रूप से विकास हो। राष्ट्रों के जीवन-संग्राम में यदि भारत भी आदरपूर्ण स्थान प्राप्त करना चाहता है, तो उसके लिए भी यह नितान्त आवश्यक है कि वह इस समस्या को सन्तोषजनक रीति से हल करे। अर्थात् स्त्रियों की सर्वाङ्गिक उन्नति के मार्ग की कठिनाइयों को हटा दे। प्राचीन गौरव के गीत गाने से ही मनुष्य अपने उच्च ध्येय को नहीं पहुँच सकता। उस ध्येय को पहुँचने के लिए उसे क्रियात्मक योग्यता का परिचय देना भी आवश्यक है। इसलिए यदि हम वह आदर्श पूरा करना चाहते हैं, जिसे पूरा करने का विशेष दायित्व विधाता ने हमारे ही कन्धे पर डाला है; यदि हम संसार के समस्त राष्ट्रों के समूह में वही उच्च स्थान प्राप्त करना चाहते हैं, जो हमें वैदिक काल में प्राप्त था; यदि हम संसार के सामने मुक्ति के मार्ग-प्रदर्शक होना चाहते हैं, जैसे कि प्राचीन काल में थे; यदि हम अपनी जन्म-भूमि के माथे से अपमान-रूपी कलङ्क के उस टीके को सदा के लिए मिटा देना चाहते हैं, जो टीका स्वयं हमने अपने स्वार्थ के वश होकर लगाया है; यदि हम चाहते हैं कि इस देश में द्रोण, कर्ण, भीम, शिवाजी, प्रताप के समान वीर पुरुष, और तारामती,

दमयन्ती, सावित्री के समान पतिव्रता स्त्रियाँ ; चाँदबीबी, पद्मिनी, लक्ष्मीबाई के समान वीर रमणियाँ पैदा हों; यदि हम इस नरक-तुल्य आधुनिक संसार को स्वर्ग, या इस संसाररूपी भीषण वन को रमणीय नन्दन वन में परिवर्तित करना चाहते हैं, तो हमारे लिए यह अनिवार्य है कि हम अपने देश की देवियों की समस्त शक्तियों को पूर्णावस्था को पहुँचाने का दिल तोड़ कर प्रयत्न करें। क्योंकि स्त्रियों के सहयोग बिना हम इस प्रशंसनीय कार्य में सफल नहीं हो सकते और स्त्रियों का सहयोग हमें लाभदायक तब तक नहीं होगा, जब तक कि हम पुरुषों की शक्तियों के साथ-साथ उनकी भी समस्त शक्तियों को परिपक्व नहीं कर देते।

यदि हम यह सब स्वीकार कर लें तो प्रश्न यह उठता है कि इस उच्च आदर्श को पहुँचने के मार्ग कौन से हैं? इस सिद्धि के साधन क्या हैं? यह कहना निरी मूर्खता होगी कि इसका केवल एक ही मार्ग या साधन है। मार्ग और साधन अनेक हैं। इन्हीं अनेक साधनों में एक मुख्य साधन स्त्रियों में उचित शिक्षा का प्रसार है। जब तक इस देश की देवियाँ अज्ञान के गहरे कूप में पड़ी रहेंगी ; जब तक भावी भारत की माताओं के हृदय-पट पर शिक्षा द्वारा यह बात अच्छी तरह अङ्कित नहीं की जाती कि विधाता ने उन्हें किसी विशेष कार्य की पूर्ति के लिए इस सृष्टि में पैदा किया है ; जब तक हम अपनी बहिनों को उनका असली दायित्व जता नहीं देते, तब तक हमें अपनी सिद्धि पाना कठिन ही नहीं, बल्कि बिलकुल असम्भव है। यदि हमने इस देश की स्त्रियों में उचित शिक्षा का प्रचार न किया, तो हमारी समाज-रूपी नौका किसी न किसी दिन इस भवसागर की भवरों में फँस कर डूब जावेगी। परन्तु सन्तोष का विषय है कि हमारे देशवासी, क्रमानुसार ही क्यों न हो, स्त्री-शिक्षा के महत्व को समझने लगे हैं। वे इस बात को अनुभव करने लगे हैं कि पुरुष के समान स्त्रियाँ भी समाज का अनिवार्य अङ्ग हैं, इसलिए जैसे पुरुषों को शिक्षा की आवश्यकता है; उसी प्रकार स्त्रियों को भी है। शिक्षा के बिना मानवी आत्मा-रूपी कमल का खिलना दुष्कर है।

हमारे चारों ओर जो चिह्न दिखलाई दे रहे हैं, वे निस्सन्देह आशाजनक हैं। देश में जगह-जगह हमारी बहिनों की शिक्षा के लिए नई संस्थाएँ खुल रही हैं और इनमें पढ़ने वाली लड़कियों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। स्त्री-शिक्षा के प्रति समाज के विरोध की मात्रा भी कम होती जाती है। यद्यपि यह सच है कि स्त्री-शिक्षा के प्रचारकों ने अपने कार्यक्षेत्र में बहुत कुछ सफलता प्राप्त कर ली है, तथापि इस सफलता पर फूले न समाना हमारी मूर्खता होगी ; क्योंकि अभी जितनी प्रगति हमने की है, वह आशाजनक भले ही हो, परन्तु काफ़ी नहीं है। सभ्यता के इस युग में भी ऐसे अनेक लोग मौजूद हैं, जो स्त्री-शिक्षा का दिल-जान से विरोध करते हैं और इस देश की शिक्षिता स्त्रियों पर तिरस्कार की वर्षा करने में ज़रा भी नहीं हिचकते। इसके अलावा आज दिन हमारे यहाँ स्त्रियों की शिक्षा की जितनी संस्थाएँ हैं उतनी काफ़ी नहीं हैं। ३० करोड़ आदमियों में इतनी थोड़ी संस्थाओं का रहना निस्सन्देह लज्जाजनक है। इन सब बातों को ध्यान में लेते हुए प्रत्येक स्त्री-शिक्षा-प्रेमी का कर्तव्य है कि वह इस प्रश्न पर विचार करे कि इतने दिन के प्रयत्न के बाद भी हमने इतनी कम उन्नति क्यों की है? हमारी उन्नति के मार्ग की रुकावटें क्या-क्या हैं? जब तक हम इन रुकावटों को मालूम नहीं कर लेते, तब तक इन्हें दूर करना असम्भव है। हमारा अनुभव है कि स्त्री-शिक्षा की उन्नति के मार्ग की सब से बड़ी बाधा यह है कि आजकल के स्कूलों में जिस प्रकार की शिक्षा दी जाती है, वह सर्वथा निन्दनीय है। किसी भी दृष्टि से देखा जावे, आधुनिक शिक्षा-प्रणाली दोषपूर्ण है। यही कारण है कि हमारे अनेक देशवासी स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती होते हुए भी अपने घर की लड़कियों को स्कूलों में नहीं भेजते। उनका मत है, और हम उन्हें दोष भी नहीं दे सकते, कि वर्तमान स्कूलों में अपनी लड़कियों को शिक्षा पाने के लिए भेजने की अपेक्षा, उन्हें घर में ही शिक्षा देना अधिक श्रेयस्कर है। क्योंकि इन संस्थाओं में लड़कियों की आत्मिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति तो होती ही नहीं, बल्कि उनका पतन अवश्य होता है। हम निष्पक्ष रीति से इस प्रश्न पर विचार करते हैं कि स्त्री-शिक्षा का जो कार्य-क्रम देश में इस समय प्रचलित है, वह क्या वास्तव में दोषपूर्ण है?

असली शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की समस्त शक्तियों का भावी आदर्श के अनुसार पूर्णरूप से विकास करना होना चाहिए। अर्थात् मनुष्य की शारीरिक, मानसिक

और आत्मिक उन्नति करना होना चाहिए। एक पाश्चात्य विद्वान ने लिखा है :—

"Education is an attempt on the part of adult members of human society to shape the development of the coming generation in accordance with their own ideals of life."

अर्थात्—"मानव-समाज के युवा पुरुष आने वाली नसल की, अपने आदर्श के अनुसार, उन्नति करने का जो प्रयत्न करते हैं उसे शिक्षा कहते हैं।" हम आगे चल कर बतलावेंगे कि इस विद्वान सज्जन की शिक्षा की परिभाषा अपूर्ण है। यूनान के प्रसिद्ध तत्ववेत्ता प्लेटो लिखते हैं कि मनुष्य की शारीरिक और आत्मिक शक्तियों का विकास करने के प्रयत्न को शिक्षा कहते हैं। हमारा विश्वास है कि प्लेटो की व्याख्या भी वैसी ही अपूर्ण है, जैसी कि उपर्युक्त सज्जन की है। शिक्षा का उद्देश्य आने वाली नसल को आधुनिक आदर्श के अनुसार मानसिक, शारीरिक और आत्मिक उन्नति करना न होना चाहिए; बल्कि भावी आदर्श के अनुसार उन्नति करना होना चाहिए। परिवर्तन और वृद्धि, प्रकृति के दो महत्वपूर्ण नियम हैं, जिनके बिना संसार-चक्र एक क्षण के लिए भी नहीं चल सकता। विधाता की इस रहस्यपूर्ण सृष्टि के हर क्षेत्र में परिवर्तन और वृद्धि क्षण-क्षण पर होते रहते हैं। जहाँ कल एक विशाल पर्वत की चोटी थी, वहीं आज अथाह जल दिखलाई देता है। इन्हीं दो नियमों के अनुसार समाज के आदर्श भी बदला करते हैं। संसार के इतिहास में एक काल था, जब एक ग्राम ही मनुष्य के कार्यों का पर्याप्त क्षेत्र समझा जाता था। उस समय प्रत्येक मनुष्य अपने ग्राम की उन्नति के मार्ग ढूँढ़ने में लगा रहता था। धीरे-धीरे मानव-विचारों ने उन्नति की और देश, मनुष्य के कार्यों का पर्याप्त क्षेत्र समझा जाने लगा और आज भी समझा जाता है। आज भी लोग इसी प्रयत्न में लगे रहते हैं कि अपने देश की उन्नति करें। उसका गौरव बढ़ावें। आज भी सर्वसाधारण लोग—और संसार में सर्वसाधारण लोगों की संख्या ही अधिक है, असाधारण पुरुष तो बिरले ही पाए जाते हैं—इस बात का प्रयत्न करते हैं कि अपने देशवासी इज़्ज़त के साथ सुखी रहें और योग्य नागरिक बनें। तात्पर्य यह है कि आधुनिक समाज का मूल मन्त्र "स्वदेश" या "स्वदेश-सेवा" है। इसलिए यदि हम अपने देश के युवकों और युवतियों को इस आदर्श के अनुसार शिक्षा दें, जैसा कि उपर्युक्त पाश्चात्य सज्जन का कथन है, तो ये युवक और युवतियाँ शिक्षा प्राप्त कर चुकने पर भविष्य में कार्य-क्षेत्र में जब क़दम रक्खेंगी, तब वे अपने को सर्वथा अयोग्य पावेंगी। क्योंकि वह समय भी अब दूर नहीं है, जब हमारा मूल मन्त्र "स्वदेश" या "स्वदेश-सेवा" नहीं, बल्कि "समस्त मानव-समाज के मनुष्य" या "मनुष्य-मात्र की सेवा" होगा। इसलिए यदि हम अपने होनहार युवक और युवतियों को भविष्य का बोझ सँभालने योग्य बनाना चाहते हैं, तो हमें उन्हें अपने आदर्श के अनुसार नहीं, बल्कि भावी आदर्श के अनुसार ऐसी शिक्षा देनी चाहिए, जिससे उनकी आत्मिक, नैतिक, शारीरिक और मानसिक उन्नति हो। हमारी शिक्षा-प्रणाली का यही उद्देश्य होना चाहिए। अब हमें देखना है कि आधुनिक स्त्री-शिक्षा-प्रणाली इस उद्देश्य को कहाँ तक पूरा करती है।

इङ्गलैण्ड में विद्यार्थी वेलिङ्गटन, क्लाइव, क्रॉमवेल इत्यादि महान पुरुषों की जीवनी पढ़ते हैं। वह देखते हैं कि इन महान आत्माओं ने अपने देश को स्वतन्त्र बनाने और उसकी हालत सुधारने के लिए कौन-कौन सी मुसीबतें झेलीं। इन वीर आत्माओं के चरित्रों को पढ़ते-पढ़ते उनकी आँखों में अभिमान के आँसू भर आते हैं और उनका रक्त अभिमान की गर्मी से उबलने लगता है और इनका पदानुकरण करने की प्रबल महत्वाकांक्षा उनके दिल में पैदा होती है, इन्हीं महान पुरुषों के जीवन-चरित्र हमारे बहिनों को भी पढ़ाए जाते हैं। परिणाम यह होता है कि अपने देश का अभिमान दिल में जाग्रत होने की अपेक्षा इन लड़कियों के दिलों में स्वदेश के प्रति निरादर और इङ्गलैण्ड के प्रति आदर पैदा होता है। स्वतन्त्र देशों में विद्यार्थियों को पाठशालाओं में देश-प्रेम सिखलाया जाता है। उन्हें यह सिखलाया जाता है कि उनका देश समस्त संसार में श्रेष्ठ, सर्वपूज्य और उनके आत्म-समर्पण की वेदी है। इन बातों को सीख कर जब ये विद्यार्थी परदेश जाते हैं, तब उन्हें अपने देश के महत्व, गौरव और मान-मर्यादा का अभिमान सदा बना रहता है और अपनी मातृभूमि की पुकार पर मरने के लिए वे सदा तैयार रहते हैं। देश की लड़कियों के लिए यह आवश्यक है कि वे

अपने देश के पूर्वजों के इतिहास को भली-भाँति जानें, अपने राष्ट्र के वीरों से अच्छी तरह परिचित हों। उनके हृदय में इन वीरों के प्रति आदर हो। वे इस बात का अभिमान करें कि उनकी रगों में भी इन्हीं वीर पुरुषों का रक्त बह रहा है।

वर्तमान स्कूलों में हमारी बहिनों को जो पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं, उनसे इन्हें न तो अपने देश के प्राचीन गौरव का ही ज्ञान मिलता है और न उनके भावी कर्तव्य का। इन पुस्तकों में हमारे वीर पूर्वजों का जो वर्णन दिया रहता है, उसे पढ़ कर साधारण बुद्धि की लड़की के दिल में इन वीर आत्माओं के प्रति आदर उत्पन्न होना असम्भव है। इन्हें बतलाया जाता है कि तुम्हारे पूर्वज असभ्य थे और अङ्गरेज़ों ने इस देश में आकर उनका उद्धार किया। शिवाजी पहाड़ी चूहा था, जो अपने देशवासियों के लूटने में ही स्वर्ग का आनन्द अनुभव करता था। औरङ्गज़ेब एक धर्मान्ध मुसलमान था, जिसके जीवन का एकमात्र लक्ष्य हिन्दू-जाति को दुनिया के परदे से उठा देना था। परिणाम यह होता है कि यह कोमल बुद्धि की लड़कियाँ अपने पूर्वजों को जङ्गली समझने लगती हैं और पश्चिमी सभ्यता की अन्धभक्त बन जाती हैं। उनके दिल में अपने देश के प्रति उचित कर्तव्य के भाव जाग्रत नहीं होते। लॉर्ड मेकॉले का कथन है—"जिस राष्ट्र को अपने पूर्वजों के वीरतापूर्ण कार्यों का अभिमान नहीं होता, वह कभी भी कोई ऐसा काम नहीं कर सकता, जिसे आने वाली नसलें अभिमान के साथ स्मरण करें।" प्रसिद्ध अङ्गरेज़-लेखक कार्लाइल का कथन है कि जिस राष्ट्र का भूतकाल उज्ज्वल नहीं होता, उसका भविष्य भी उज्ज्वल नहीं हो सकता।

"A nation that has no bright past can not have brilliant future."

समाज को अपनी हालत सुधारने के लिए उनके पूर्वजों के आदर्श तथा उनके कार्य बहुत मदद करते हैं। परन्तु जहाँ इन पूर्वजों का चरित्र समाज के होनहार युवक और युवतियों के सामने दूषित रूप में रक्खा जाता है, वहाँ इन युवक और युवतियों के दिल में अपने पूर्वजों के आदर्श के प्रति आदर पैदा होना कैसे सम्भव है? स्वभावतः आधुनिक स्कूल की युवतियाँ इस देश की प्राचीन संस्कृति से अनभिज्ञ रक्खी जाती हैं। इस-लिए उनमें अपने देश और अपने समाज के प्रति कर्तव्य का ज्ञान पैदा नहीं होता। ये प्राचीन आदर्श को भूल कर अर्वाचीन आदर्श को अपने सामने रखती हैं। मनुष्य के जीवन में यही एक अवस्था होती है, जब कि उसके हृदय-पट पर जो भाव अङ्कित हो जाते हैं, वे कभी नहीं मिटते। इस अवस्था में इस बात से सावधान रहना आवश्यक है कि युवक और युवतियों के हृदय में किन भावों के अङ्कुर जमाए जावें। आजकल की पाठशालाओं में पढ़ने वाली लड़कियों के हृदय में नक़ली स्वतन्त्रता के विचार पैदा होते हैं। ये युवतियाँ पश्चिमी सभ्यता की मृगतृष्णा के पीछे मर्यादा, सीधापन, लज्जा, विनय इत्यादि दैवी गुण खो बैठती हैं। इनके जीवन का लक्ष्य पुरुष के साथ सहयोग करके जीवन-यात्रा पूरी करना नहीं रह जाता, बल्कि जीवन-संग्राम में पुरुष पर अधिकार जमाना हो जाता है। जब ये लड़कियाँ थोड़ा पढ़-लिख लेती हैं, तब अपनी अशिक्षिता बहिनों को तिरष्कार की दृष्टि से देखने लगती हैं। इसका कारण यही है कि आजकल की पाठशालाओं में लड़कियों की आत्मिक उन्नति की ओर आवश्यक ध्यान नहीं दिया जाता। उन्हें यह भली-भाँति नहीं सिखलाया जाता कि उनका कुटुम्ब, समाज और मनुष्य-मात्र के प्रति क्या कर्तव्य है। उन्हें यह साफ़-साफ़ नहीं बतलाया जाता कि स्त्री और पुरुष में वास्तविक सम्बन्ध कैसा होना चाहिए। इन लड़कियों को, जो कि आगे चल कर भावी भारत की जन्मदात्री होंगी, यह समझाना आवश्यक है कि इस सृष्टि में विधाता ने स्त्री और पुरुष को इसलिए नहीं निर्माण किया है कि वे एक दूसरे का विरोध करें और एक दूसरे पर अधिकार जमाने का प्रयत्न करें; बल्कि इसलिए निर्माण किया है कि वे आपस में सहयोग करके अपने कुटुम्ब, समाज, राष्ट्र और मनुष्य मात्र को सुखी, सन्तुष्ट और समृद्धि-शाली बनाने का प्रयत्न करें। इन सब तत्वों का ज्ञान हमारी बहिनों को नहीं कराया जाता। यही कारण है कि इन युवतियों की आत्मा की उन्नति तो होती ही नहीं, परन्तु पतन अवश्य होता है।

आत्मिक अवनति का दूसरा बड़ा कारण कन्या-पाठशालाओं में धार्मिक शिक्षा का अभाव है। समस्त देश में ऐसी बहुत कम कन्या-पाठशालाएँ हैं, जहाँ पर लड़कियों को धार्मिक शिक्षा देने का उचित प्रबन्ध किया

गया हो। जब तक इन्हें अपने धर्म के गहन और गम्भीर तत्वों का ज्ञान नहीं होगा, वे असली धर्म और नक़ली आडम्बर में भेद समझने के सर्वथा अयोग्य होंगी। हमारा तो यह विश्वास है कि कोई भी सुधार तब तक सफल नहीं हो सकता, जब तक कि वह धर्म के आधार पर निर्माण न किया गया हो। यही कारण है कि हमारे पूर्वजों ने इस संसार की अनेक बातों के साथ किसी न किसी रूप में धर्म जोड़ ही दिया है।

धार्मिक शिक्षा के अभाव के कारण हमारी बहिनों की आत्मिक उन्नति के साथ-साथ उनकी नैतिक उन्नति भी नहीं होती। इसके अतिरिक्त वर्तमान स्कूलों में हमारी बहिनों की शारीरिक उन्नति कराने का भी कोई उचित प्रबन्ध नहीं होता। यह सच है कि कहीं-कहीं कन्याओं का पाठशालाओं में टेनिस या अन्य किसी विदेशी खेल का प्रबन्ध अवश्य होता है। परन्तु हमारा मत है कि इस प्रबन्ध से लड़कियों को लाभ पहुँचने की अपेक्षा हानि पहुँचने की ही अधिक सम्भावना है। इन संस्थाओं के प्रबन्धकर्ता पाश्चात्य आदर्शों की नक़ल करते हैं। वे भूलते हैं कि जो बातें पुरुषों को लाभदायक हैं, उनका स्त्रियों के लिए लाभदायक होना आवश्यक नहीं है। स्त्रियों की शारीरिक उन्नति का आवश्यक प्रबन्ध करना भी स्त्री-शिक्षा के प्रेमियों का कर्त्तव्य है। क्योंकि आत्मा और शरीर दोनों समान महत्व के हैं। यदि शरीर सुदृढ़ और निरोगी रहा, तब ही मनुष्य इस संसार में आत्मा की अभिलाषाओं को पूर्ण कर सकता है। सच कहा है कि "आरोग्यमूल साधनम्।" आरोग्य ही सब साधनों की जड़ है। परन्तु खेद है कि प्रचलित स्त्री-शिक्षा-प्रणाली में इस महत्वपूर्ण सिद्धान्त को उचित स्थान नहीं दिया गया है।

जिस प्रकार आधुनिक शिक्षा-प्रणाली इस देश की लड़कियों की आत्मिक, शारीरिक और नैतिक उन्नति नहीं करती, उसी प्रकार वह उनकी मानसिक उन्नति में भी कोई विशेष मदद नहीं पहुँचाती है। इन्हें उच्च श्रेणी की शिक्षा अङ्गरेज़ी भाषा में दी जाती है। इन बालिकाओं का सारा समय अङ्गरेज़ी भाषा सीखने में ही जाता है और अङ्गरेज़ी मातृ-भाषा न होने के कारण वे इसमें निपुण भी नहीं होतीं। इस तरह शिक्षा प्राप्त कर चुकने पर उन्हें न अङ्गरेज़ी का ही असली ज्ञान होता है और न अपनी मातृ-भाषा का। जो समय वे अन्य किसी उपयोगी विषय का अध्ययन करने में ख़र्च करतीं, वही समय उन्हें अङ्गरेज़ी भाषा सीखने में व्यतीत करना पड़ता है। इस तरह उनकी बुद्धि पर अनुचित बोझ पड़ने के कारण उनकी शक्तियों का पूर्ण रूप से विकास नहीं होने पाता।

इस तरह यह स्पष्ट है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली हमारी बहिनों की आत्मिक, नैतिक, मानसिक और शारीरिक उन्नति में ज़रा भी मदद नहीं करती।

इसके अतिरिक्त हमारे युवक और युवतियों के दिल में आधुनिक शिक्षा-प्रणाली उच्च आध्यात्मिक भाव पैदा करने में भी कोई मदद नहीं करती। भारत की आध्यात्मिक सम्पत्ति निःसन्देह अमूल्य है। परन्तु शोक है कि हमारे होनहार युवक और युवतियाँ इस सम्पत्ति के उपभोग से वञ्चित रक्खी जाती हैं। भारत की आध्यात्मिक प्रवृत्ति के कारण ही यह देश आज तक जीवित है और भविष्य में भी उच्च स्थान पर पहुँचेगा। आध्यात्मिक सम्पत्ति का ही फल है कि आज भारतवर्ष जीता है, जब कि अन्य प्राचीन राष्ट्र, जो उसके समकालीन थे, मिट चुके हैं। बेबीलोन को आज कौन जानता है? प्राचीन मिश्र, ईरान और यूनान के समान महान साम्राज्य आज रसातल को पहुँच चुके हैं, वे सब ख़ाक में मिल गए हैं; परन्तु भारतवर्ष आज तक जीता है। और इस समय भी उसके शरीर में नवीन जीवन के रक्त का प्रवाह बड़े वेग के साथ हो रहा है। इसी आध्यात्मिक सम्पत्ति के ज़ोर पर भारत संसार के समस्त राष्ट्रों में अग्रगण्य होगा और प्राचीन कीर्ति के समान उसकी अर्वाचीन कीर्ति भी सारे भूमण्डल में फैलेगी। संसार को भावी घोर आपत्ति से बचने के लिए आध्यात्मिक और दार्शनिक ज्ञान की आवश्यकता है। यह ज्ञान उसे भारत ही दे सकता है। परन्तु जब भारत के युवक और युवतियाँ स्वयं ही अपने पूर्वजों की सम्पत्ति के उपभोग से वञ्चित रक्खी जाती हैं, तब वे दूसरों को इस सम्पत्ति से लाभ कैसे पहुँचा सकती हैं?

तात्पर्य यह है कि आधुनिक शिक्षा-प्रणाली इस देश की बालिकाओं में साहस, सहिष्णुता, धैर्य, देश-प्रेम, विचार-बल, शारीरिक बल और नैतिक बल पैदा करने

में ज़रा भी मदद नहीं करती। अर्थात् उनकी नैतिक, आत्मिक, शारीरिक और मानसिक उन्नति नहीं करती। इसलिए यह नितान्त आवश्यक है कि उसमें योग्य परिवर्तन किया जावे। यदि परिवर्तन न किया जावेगा तो स्त्री-शिक्षा की उन्नति की गति ऐसी ही मन्द बनी रहेगी, जैसी आज है।

❀ ❀ ❀

विधवा

[श्रीयुत "विक्रम"]

बहो न मेरे तन को छूकर,
हे सौरभ से भरे समीर।
हा! दूषित कर देंगे मुझको,
मधुर मयन के कोमल तीर॥

❀

भरो न मुझमें हे वसन्त तुम,
सुन्दरता का मधुर विकास।
मँडराएँगे रसिक भ्रमर,
नाहक़ मुझ हत्भागिनि के पास॥

❀

कहाँ भूल कर आए हो तुम,
मेरे प्यारे मनोविनोद?
चिर-विषाद ने अब तो भर ली,
आजीवन को मेरी गोद॥

❀

सखि आशे! अब इस जीवन में,
किसको देती हो सन्तोष।
भरा हुआ है विपुल निराशा—
से मेरे मानस का कोष॥

❀

है अनन्त मेरे वियोग के
अखिल मरुस्थल का विस्तार।
रच रक्खा है विधि ने मेरे—
हित, असीम दुख का संसार॥

है अगाध मेरी विपदा का,
भरा हुआ यह पारावार।
जिसमें किञ्चित अस्फुट स्मृति—
का है केवल मुझको आधार॥

❀

अतुल निराशा मेरा धन है,
नीरवता मेरा व्यापार।
विरह-व्यथा निशदिन पीती हूँ,
चिर-चिन्ता मेरा आहार॥

❀

तन मेरा प्रज्वलित चिता है,
मेरा जीवन घोर मसान।
ज्वालामुखी हृदय है मेरा,
मानस मेरा वन सुनसान॥

❀

मैं वह जीवन की सरिता हूँ,
सूख गया जिसका सुख-नीर!
मैं वह नीरव व्याकुलता हूँ,
हुई निराशा में जो धीर॥

❀

मैं वह निर्जल मानस-सर हूँ,
जिसमें अब उड़ती है धूल।
मैं वह शुष्क लता हूँ वन की,
जिसमें अब न खिलेंगे फूल!!

❀

मैं वह करुणामय गाथा हूँ,
सुन जिसको पिघले पाषाण।
मैं वह विधि के हाथ सताई,
जिसका यम के कर कल्याण॥

❀

मैं वह जीवनधारी शव हूँ,
जिसका जीना मरण समान।
मैं वह हत्भागिनि विधवा हूँ,
जिसका यह करुणामय गान!!

पत्थर की मूर्ति

[श्री० पृथ्वीनाथ शर्मा, बी० ए० (ऑनर्स), एल्-एल्० बी०]

चमकती हुई बिजली के प्रकाश में पत्थर की मूर्ति खिल उठी। हम दोनों—मैं और किशोर—मेज़ के ऊपर पड़ी हुई बिल्लौर की भाँति चमकीली मूर्ति के ठीक सम्मुख बैठे थे। रात के कोई ग्यारह बजे का समय होगा। हमारे कमरे के सब द्वार बन्द थे। चारों ओर शान्ति थी।

सहसा किशोर कहने लगा—वाह, अढ़ाई फ़ीट ऊँचे और एक फ़ुट चौड़े पत्थर को तराश कर निपुण मूर्तिकार ने जीवन के कितने बड़े रहस्य—प्रेम—को किस ख़ूबी से चित्रित करके रख दिया है। कला को कितना ऊँचा ले गया है।

मैंने फिर एक बार ग़ौर से मूर्ति की ओर देखा। एक महल और उसकी सबसे ऊपर की खिड़की में खड़े हुए दो व्यक्ति, बस यही थी, मूर्ति। परन्तु कितनी साफ़ गढ़ी हुई मूर्ति थी। महल की खिड़कियों पर की हुई बारीक से बारीक मीनाकारी भी साफ़ नज़र आ रही थी। महल की ऊपर वाली खिड़की के जँगले के साथ जकड़ कर बँधे हुए प्रेमियों के चेहरों का भाव-प्रदर्शन कितना सजीव था। दोनों के चेहरों से वीरता, करुणा तथा प्रेम झलक कर मानो संसार की क्षुद्रता तथा नश्वरता को चुनौती दे रहे थे। युवती की साड़ी और युवक के चोग़े की एक-एक सिकुड़न तथा सिलाई की लकीरें तक गिनी जा सकती थीं। रस्सी का एक-एक तृण तक दृष्टिगोचर हो रहा था।

मूर्ति को कुछ काल तक मनोनिवेशपूर्वक देख कर पुरातत्त्ववेत्ता किशोर बोला—सम्राट अशोक के समय की कला है।

मैं अपने होठों को बल देकर मुस्कराया। "मूर्ति मोल लेते समय मैंने भी यही सोचा था।"—मैंने उसे खिझाते हुए कहा।

परन्तु किशोर पर मेरे कथन का कुछ भी प्रभाव न पड़ा। वह बिलकुल शान्त स्वर में बोला—इसकी कोई कहानी भी तुम्हें मालूम है ?

"अद्भुत !"

"सुना सकते हो ?"

"सुनो।"—मैंने कहना आरम्भ किया।

२

फ़रवरी का अन्त था ; शीत ऋतु बीत चुकी थी, परन्तु जाड़ा अड़ियल घोड़े की भाँति अड़ कर बैठ गया था, मानो जाने से इन्कार कर रहा था। अँगीठी की बुझती हुई अग्नि को सुलगाने के लिए मैंने नौकर को आवाज़ दी। परन्तु वह पहले ही कमरे में घुस रहा था।

"क्यों ?"—मैंने पूछा।

"एक आदमी आपसे मिलना चाहता है।"—उसने जवाब दिया—"फटे-पुराने कपड़े हैं। बग़ल में काग़ज़ से लिपटा एक लम्बा सा बण्डल दबाए है।"

मैंने सोचा, कोई मुअक्किल होगा। पूछा—काम क्या बताता है?

"कहता है, स्वयं हाज़िर होकर अर्ज़ करूँगा।"

जी में आया जवाब दे दूँ। कह दूँ, कल आने को कहो। इतनी रात गई—उस समय दस बज चुके थे—एक अजनबी से कौन मिलने जाए। पर उत्सुकता ने एक न सुनी और मानो जिह्वा पर बैठ कर बोली—अन्दर ले आओ।

सर्दी से ठिठुरते हुए बण्डल वाले आदमी ने कमरे में प्रवेश किया। स्याह मुख पर पड़ी हुई झुर्रियाँ साफ़ दीख रही थीं। चिपके हुए गालों के बीच तीखी नाक। अवस्था कोई साठ साल के लगभग, पर आँखों में अभी तक काफ़ी चमक थी। उसने बण्डल बड़ी सावधानी से दरी पर रख दिया और अँगीठी के निकट बैठता हुआ बोला—सरकार के लिए एक नायाब तोहफ़ा लाया हूँ।

मैंने बण्डल की ओर देखा। मेरा सङ्केत समझ कर वह कहने लगा—हाँ हुज़ूर, यही। आप देखेंगे तो दिल खोल कर दाद देंगे, निहायत नायाब चीज़ है।

उसने काग़ज़ फाड़ कर मूर्ति को बाहर निकाला और अपने घुटने से ज़रा हटा कर रखता हुआ बोला—लीजिए सरकार, है हीरे के तौल मँहगी कि नहीं?

मैं देख कर सचमुच उछल पड़ा। मूर्ति को अपनी कहने के लिए मन तड़प उठा। पर अपने भावों को छिपाता हुआ बोला—परन्तु तुमसे किसने कहा कि मुझे यह मूर्ति चाहिए?

पीले-पीले दाँत निकालता हुआ बूढ़ा खुल कर मुस्कराया और मूर्ति को अपनी धोती से साफ़ करता-करता बोला—क़द्र गौहर शह बेदानद या बेदानद जौहरी। कला के पारखी के पास इसे न लाता तो कहाँ ले जाता?

"तुम्हारी ही तरह"—मैंने किशोर की ओर देख कर कहा—"उन दिनों मेरे सिर पर भी पुरातत्व-ज्ञान का भूत सवार था। इस विषय पर दो-चार लेख भी पत्रिकाओं में लिखे थे, परन्तु यह मैंने भूल कर भी न सोचा था कि मेरी ख्याति इतनी तीव्र गति से बढ़ रही है कि मैली धोती और फटे हुए कुर्ते वाले कला के महारथियों तक भी पहुँच चुकी है।"

ख़ैर, कुछ क्षण ठहर कर मैंने फिर प्रश्न किया—इस मूर्ति का आशय क्या है? ये दोनों हैं कौन?

"यह प्रदर्शित कर रही है प्रेम का उच्चतम आदर्श और यौवन का मद।"—बूढ़ा करुणा भरे स्वर में कहने लगा—"आह! जिस समय यह युवक अपनी प्रियतमा के आलिङ्गन के लिए विह्वल होकर इस रस्सी द्वारा महल की दीवार से पाँवों को रगड़ता हुआ ऊपर चढ़ रहा था, उस समय उसे क्या पता था कि वह प्रेम के इतिहास के पृष्ठों में अपने लिए अमर पंक्तियाँ लिखने जा रहा है!"

खिड़की का जँगला फाँद कर, बाँहें फैलाए हुए, ज्यों ही वह आगे बढ़ा, त्योंही उसकी नज़र एक पुरुष पर पड़ी, जो उसकी प्रेमिका के बजाय, उसके स्वागत के लिए खड़ा था। वह था, उसका पिता—उस देश का राजा। उसके पास ही कई अन्य राज-कर्मचारियों के साथ राज्य का मन्त्री—प्रेमी युवक का पिता—भी सिर नीचा किए खड़ा था। यह दृश्य देखते ही युवक का हृदय धक से रह गया। पाँव जहाँ पड़े थे, वहीं पड़े रहे। फैली हुई भुजाएँ काँपती हुई सिमट गईं। उसका सिर नीचे झुक गया।

पर थोड़ी ही देर में वह सारी स्थिति समझ गया। उसे पता लग गया कि प्रेम का मूल्य चुकाने की घड़ी आ पहुँची है। उसने ज़रा मुस्करा कर मुख को ऊपर उठाया और गम्भीर स्वर में राजा की ओर देख कर बोला—अब दण्ड की आज्ञा दीजिए!

राजा का शरीर सिर से पाँव तक काँप उठा। उसकी आँखों से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। परन्तु वह युवक के इस उद्दण्ड साहस का जवाब क्या देता। दाँत पीस कर रह गया।

फिर टूटते हुए स्वर को सँभालते हुए बोला—लड़की को मेरे सामने हाज़िर करो!

उसी समय दो कर्मचारी राजाज्ञा का पालन करने को दौड़ गए और कुछ ही मिनटों में उनके आगे-आगे लड़की अपनी नूपुर-ध्वनि द्वारा कमरे के सन्नाटे को चीरती हुई उपस्थित हुई। उसका मुख पीला था, परन्तु उसमें चमक थी। आँखों में कितनी निर्भीकता थी। वह चुपके से लड़के से कुछ दूर हट कर खड़ी हो गई।

राजा ने एक बार उनकी ओर देखा, फिर तीखे स्वर में बोला—मैं तुम दोनों का हाल ख़ूब जानता हूँ। तुम दोनों को हाथ में हाथ डाल कर इस खिड़की में खड़े होने का बड़ा शौक़ था। मैं उसे आज पूरा किए देता हूँ। (लड़के की ओर देख कर) लो, दण्ड की आज्ञा भी सुन लो। तुम दोनों को इस जँगले के साथ इसी रस्सी द्वारा जकड़ कर बाँध दिया जाएगा और तब तक नहीं खोला जायगा, जब तक भूख और प्यास से व्याकुल होकर तुम उस पार न पहुँच जाओ।

कर्मचारीगण दण्ड की क्रूरता और नम्रता पर दङ्ग रह गए। पर क्रोध से पागल राजा से वाद-विवाद कौन करता? आख़िर, राजा के एक बहुत बूढ़े तथा पुराने कर्मचारी से न रहा गया। वह आगे बढ़ कर हाथ जोड़ता हुआ बोला—महाराज, दण्ड बहुत कठोर है।

"कठोर!"—राजा खिलखिला कर हँस पड़ा। ऐसा प्रतीत हो रहा था, जैसे उसका मस्तिष्क उसके हाथ से निकला जा रहा हो। पर वह शीघ्र ही सँभल गया और बोला—"ऐसे अहिंसावादी हो तो जाओ महाराज अशोक के पास। यहाँ क्या कर रहे हो?"

कर्मचारी चुप रह गया।

मैं कहानी सुनने में इतना तल्लीन हो गया था कि मुझे यह भी न पता रहा कि बूढ़े को कहानी समाप्त किए कई क्षण हो चुके थे। मैं सहसा बोल उठा—फिर?

"फिर जो कुछ हुआ, वह हुज़ूर सामने है।"

३

मैंने कुर्सी से झुक कर मूर्ति को उठा लिया और उस पर हाथ फेरते हुए पूछा—ख़ैर, क्या दाम लोगे इसका?

अपने भावों को छिपाने के लिए आरम्भ में जिस आड़ की मैंने सहायता ली थी, वह अब छिन्न-भिन्न हो चुका था। मेरा प्रत्येक हाव-भाव प्रदर्शित कर रहा था कि मैं उस मूर्ति के लिए ललच रहा हूँ।

बूढ़े ने मेरे हाथ में पकड़ी हुई मूर्ति की ओर देख कर फिर मेरी ओर दृष्टि डाली और जवाब दिया—यदि कोई और मनुष्य होता तो मैं इसे शायद दो हज़ार रुपए में भी न बेचता, परन्तु चूँकि आप कलाविद हैं और मुझे विश्वास है कि यह मूर्ति आपके पास सुरक्षित रहेगी, इसलिए मैं आपसे बहुत कम लेने को तैयार हूँ।

"क्या?"—मैं बीच में ही बोल उठा।

"केवल एक हज़ार।"

दाम बिलकुल उचित था, पर मुझमें इतना देने की सामर्थ्य नहीं थी। पाँच वर्ष तक जी-तोड़ परिश्रम करने पर भी मैं वकालत के पेशे से केवल छः सौ रुपया जुटा सका था। यही मेरा सर्वस्व था। बूढ़े को किसी भाँति इतने रुपए पर मना लूँ, यही सोचता हुआ मैं चुप रहा।

बूढ़ा मुझे चुप देख कर बोला—क्या यह क़ीमत वाजिब नहीं?

"बिलकुल वाजिब है।"—मैंने स्पष्ट कह देना ही उचित समझा और अपनी सारी परिस्थिति उसके सम्मुख रखते हुए कहा—"परन्तु मैं तो छः सौ से अधिक नहीं दे सकता।" और मूर्ति उसके हाथ में दे दी।

बूढ़ा चुप रहा। उसके मस्तक के बल कह रहे थे कि वह गहरे सोच में डूबा हुआ है। वह बड़ी देर तक ऐसे ही बैठा रहा। सहसा उसके बल साफ़ हो गए। उसने निर्णय कर लिया था। क्षीण स्वर में बोला—मुझे मञ्जूर है।

उसकी करुण मुखाकृति तथा क्षीण आवाज़ ने मेरी प्रसन्नता से सारा आह्लाद छीन लिया। पर मैं बेबस था।

"परन्तु यह तो बताओ"—किशोर बोल उठा—"इतने चाव से ख़रीदी हुई चीज़ को तुमने गोदाम की ख़ाक के हवाले क्यों कर दिया था?"

"क्योंकि मैं अपनी मूर्खता का ढिंढोरा नहीं पीटना चाहता था।"—मैंने कहा।

"कैसे?"

"झूठी तथा बीसवीं सदी की गढ़ी हुई मूर्ति अपने पास रख कर,"—मैं कहने लगा—"एक दिन बैठे-बैठे मैंने मूर्ति को उलट-पलट कर देखा तो उसमें यह खुदा था—'मूर्तिकार हरीश—१९०८।' बस, उसी दिन मैं जान गया कि मैं किस बुरी तरह ठगा गया था। बूढ़े के प्रति मेरा मन क्रोध से भड़क उठा। पर वह न जाने कहाँ था। इसलिए मूर्ति को ठुकरा कर मैंने पृथ्वी पर फेंक दिया और उसी समय नौकर से उठवा कर उसे गोदाम में रखवा दिया। बीस वर्षों के बाद आज तुम्हारे इतना अनुरोध करने पर मैंने इसे निकाला है।"

किशोर ने मूर्ति उठा ली और उलट-पलट कर मूर्तिकार के हस्ताक्षर देखता हुआ बोला—क्या इसे बेचोगे?

"क्या दोगे ?"

"एक हज़ार।"

मैंने समझा, किशोर ठट्ठा कर रहा है। इसलिए उससे मज़ाक़ करते हुए कहा—बस ?

"दो हज़ार लोगे ?"—किशोर ने गम्भीर स्वर में कहा।

मैं चकित और उत्सुक हो उठा और उसे उकसाते हुए कहा—पागल हो गए हो क्या ? कल की बनी हुई चीज़ के लिए इतना दाम लुटाने पर तुले बैठे हो।

किशोर मुस्कराया और जवाब देने लगा—शायद तुमको यह पता नहीं कि सम्राट अशोक के समय की एक बहुत प्रसिद्ध मूर्ति की यह एक अद्भुत प्रतिमूर्ति है। वह मूर्ति आज से कोई तीस वर्ष पूर्व पेशावर के निकट पाई गई थी और आज से कोई ग्यारह महीने पहिले वह लाहौर के अजायबघर में थी।

"और अब कहाँ है ?"

"अब ? कौन जाने ? तुमने शायद अख़बारों में पढ़ा होगा कि कुछ महीने हुए लाहौर के अजायबघर में चोरी हो गई थी। चोरी जाने वाली चीज़ों में एक वह मूर्ति भी थी।"

वैसे तो मैं अख़बार प्रतिदिन देखता हूँ, परन्तु काम बहुत अधिक होने के कारण किसी-किसी दिन नहीं भी देख पाता। ऐसे ही किसी दिन इस चोरी की कहानी मेरी दृष्टि से बच निकली होगी। मैंने कहा—कुछ याद नहीं आता ?

"ख़ैर !"—किशोर फिर कहने लगा—"पुलीस अभी तक इस चोरी का रहस्य उद्घाटन करने में सफल नहीं हो सकी और न इसकी कुछ आशा ही है। इसलिए अशोक के समय के उस महान परन्तु अज्ञात मूर्तिकार की कला का इस समय संसार में केवल यही एक नमूना रह गया है।"

"पर है तो प्रतिमूर्ति ही।"

"हाँ, है तो प्रतिमूर्ति, परन्तु तुमको शायद पता नहीं कि इसका गढ़ने वाला इतना प्रसिद्ध तो नहीं था, पर था इस युग का एक चोटी का मूर्तिकार। असली और इस मूर्ति को पास-पास रख कर यह बताना असम्भव है कि कौन सी किसकी बनाई हुई है।"

"तब तो यह एक दुर्लभ वस्तु हुई।"

"निस्सन्देह। इस समय यदि तुम इस मूर्ति का दस हज़ार भी माँगो तो अनुचित नहीं।"

मैंने मूर्ति किशोर के हाथ से ले ली और उसे अपने सम्मुख मेज़ पर रख कर उस युवक और युवती की ओर देखने लगा—किशोर, क्या इस मूर्ति को ख़ाक में रुलाने के अपराध में इनकी आत्माएँ मुझे कोसती न रही होंगी ?

किशोर चुप रहा। परन्तु मुझे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो दोनों प्रेमी व्यंग्य की हँसी हँस कर कह रहे हैं—इन खिलौनों की लालच से हमने प्रेम पर सर्वस्व निछावर नहीं किया था। हमारे प्रेम की अमर कहानी इन पत्थर की मूर्तियों से बहुत परे है।"

उद्गार

[श्री० नर्मदाप्रसाद खरे]

जीवन-प्रभात में मेरे, थी सुख की धुँधली लाली।
बिखरी थी अन्तर-जग में, आशा की मृदु उजियाली॥
जीवन की निशा-निराशा, दुख-तम की चादर ताने।
आशा आँगन में आई, अपना वह खेल दिखाने॥
उसने निज खेल दिखा कर, ऐसा कुछ जादू फेरा।
उस दिन से भाग्य-गगन में, है छाया तुमुल अँधेरा॥

ईसाई मत और साम्यवाद

[श्री० सत्यभक्त]

ईसाई मत की उत्पत्ति पृथ्वी पर एक ऐसे समाज की स्थापना करने के उद्देश्य से हुई थी, जो न्याय, समानता और पारस्परिक सहयोग के सिद्धान्त के अनुसार आचरण करता हो। ऐसे समाज में विभिन्न श्रेणियों अथवा ऊँच-नीच के भेद-भाव का अस्तित्व नहीं होता, वरन् भ्रातृभाव, समाज-सेवा, सादा जीवन और त्याग का ही विशेष महत्व माना जाता है। जो व्यक्ति इस प्रकार के समाज के सदस्य होते हैं, वे अपने अन्य भाइयों के श्रम-जनित फल का अपहरण करने के बजाय अपने न्याययुक्त अंश से भी दूसरों की सहायता करते हैं और उनकी दृष्टि सदा परमार्थ तथा परोपकार पर रहती है। यद्यपि आजकल के ईसाई कहलाने वालों में से बहुत थोड़े लोग उपर्युक्त बातों की ओर ध्यान देते हैं, और उनकी तृष्णा समस्त संसार के स्वत्व का अपहरण करके भी शान्त नहीं हो रही है, पर बाइबिल तथा ईसाइयों के अन्य प्राचीन ग्रन्थों से सिद्ध होता है कि ईसा ने अपने मज़हब की स्थापना उपर्युक्त सिद्धान्तों के आधार पर ही की थी और आरम्भ में कई सौ वर्ष तक यह एक प्रकार का साम्यवादी आन्दोलन ही था।

पूर्व दशा

ईसाई मत की जन्मभूमि पैलेस्टाइन है, जो एशिया महाद्वीप की पश्चिमी सीमा पर एक छोटा सा देश है। यह देश प्राचीन काल से यहूदियों का निवास-भूमि था। ईसा के जन्म से पूर्व वहाँ के निवासी तीन मुख्य श्रेणियों में विभाजित थे। पहली श्रेणी सैड्यूसीज़ की थी, जिसमें धार्मिक सत्ता रखने वाले सम्पत्तिशाली व्यक्ति सम्मिलित थे। ये लोग राजनीति और सांसारिक व्यवहार में चतुर थे, और उन लोगों का विरोध करते थे, जो यहूदियों की सत्ता को समस्त संसार में फैलाने का स्वप्न देखा करते थे। दूसरा दल फ़रीसीज़ कहलाता था, जिसमें मध्यम श्रेणी के व्यक्ति थे। ये यहूदी धर्म के समस्त आदेशों का बड़ी तत्परता से पालन करते थे और अपनी जाति को समस्त अन्य जातियों की अपेक्षा अधिक पवित्र तथा धर्मपरायण समझते थे। तीसरा दल ऐसीनियन कहलाता था, जो उस समय के साम्यवादी थे और जिनको यहूदियों ने अपने से पृथक् कर रक्खा था। ये लोग चरित्र की विशुद्धता पर सब से अधिक ध्यान देते थे। उनके मतानुसार 'ईश्वरीय-राज्य' अथवा आदर्श-समाज वही था, जिसमें शासकों का किसी प्रकार का दबाव न हो; शासक अथवा धर्माध्यक्षों के बनाए क़ानून न हों, और जिसमें सब लोग समाज के हित की दृष्टि से स्वेच्छा-पूर्वक यथायोग्य कार्य करें। ये लोग सब प्रकार की दल-बन्दियों और अधिकार-तृष्णा से पृथक् रहते थे और सैड्यूसीज़ तथा फ़रीसीज़ के पारस्परिक झगड़ों से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं रखते थे।

ईसा के जन्म से ६३ वर्ष पूर्व रोम वालों के एक सेनापति ने पैलेस्टाइन को विजय करके यहूदियों के प्रधान धर्म-मन्दिर को, जो जरूसलम में था, भ्रष्ट कर दिया। इससे लोगों में बड़ा असन्तोष फैला। पर रोम की शक्ति के सम्मुख उनका वश न चल सका। पैलेस्टाइन के बादशाह रोम के अधीन हो गए और रोम वाले उनसे कर वसूल करने लगे। पर जनता ने रोम का विरोध करना न छोड़ा और लोग षड्यन्त्र, बलवे और सविनय क़ानून-भङ्ग के रूप में अपना असन्तोष प्रकट करने लगे। नए-नए नेता उत्पन्न हो गए और नवीन संस्थाओं तथा दलों का जन्म होने लगा, जिनमें से कुछ आतङ्क-वाद के मानने वाले भी थे। इस प्रकार समस्त देश में बड़ी हलचल और उथल-पुथल मच गई। सामाजिक

एकता नष्ट हो गई और विभिन्न श्रेणियों के लोगों में पारस्परिक लड़ाई-झगड़े बढ़ने लगे। उस समय की परिस्थिति पर कुछ प्रकाश ईसा की माता मेरी के उन उद्गारों से पड़ता है, जो उसने अपने गर्भ का पता लगने पर परमात्मा की स्तुति करते हुए प्रकट किए थे—"उस सर्वशक्तिमान ने अहङ्कारियों का दर्प भङ्ग कर दिया। उसने शक्ति-सम्पन्नों को अपने आसन से गिरा दिया और दीन-दुखियों को महत्व प्रदान किया। दरिद्रों को उसने समस्त सुख की सामग्री दी और धनवानों को ख़ाली हाथ लौटा दिया।" उस समय भीतर और बाहर सब तरफ़ से पैलेस्टाइन में अशान्ति की ज्वाला प्रज्वलित थी और लोगों में राष्ट्रीय तथा सामाजिक समस्याओं के सम्बन्ध में बड़े-बड़े विचार उत्पन्न हो रहे थे। ऐसी परिस्थिति में, जबकि जन-समूह पर घोर अत्याचार और दमन हो रहा था और राजनीतिक क्षेत्र में उथल-पुथल मची थी, यहूदियों का ध्यान स्वभावतः अपने धर्म-ग्रन्थों की भविष्यवाणियों की ओर गया और वे सोचने लगे कि अब 'ईश्वरीय राज्य' का समय पास आ गया और भक्तों के उद्धार के लिए भगवान की तरफ़ से कोई महापुरुष अवतीर्ण होने ही वाला है।

ईसा का जन्म और मृत्यु

ऐसे सङ्कटापन्न काल में ईसा का आविर्भाव हुआ। वह उत्तरी पैलेस्टाइन के नज़रेथ नामक स्थान में एक दस्तकार के घर में उत्पन्न हुआ था। उसकी शिक्षा एक यहूदी स्कूल में हुई थी और वह नियमित रूप से यहूदियों के धर्म-मन्दिर में मज़हबी व्याख्यान सुनने जाता था। वह प्रति वर्ष 'पासोवर' के उत्सव के समय जरूसलम की यात्रा करता था। छोटी उम्र से ही उसमें विशुद्धता, तेजस्विता और निर्भीकता के चिन्ह पाए जाते थे। उसे 'इसायिहा' के लेख बहुत पसन्द थे और उनमें से वह प्रायः निम्न-लिखित वाक्य पढ़ा करता था—"मेरे भीतर ईश्वरीय ज्योति प्रविष्ट हुई है। उसने मुझे ग़रीबों को धर्मोपदेश देने के लिए मसीहा बनाया है। उसने मुझे भग्न-हृदयों को सुखी करने, क़ैदियों को बन्धन-मुक्त करने, अन्धों को दृष्टि-शक्ति देने और घायलों को सशक्त बनाने के लिए भेजा है।"

कुछ ही दिनों में ईसा के व्यक्तित्व ने उसके साथियों को आकर्षित कर लिया। उसके विवाद करने और विषय-प्रतिपादन का ढङ्ग ऐसा ज़ोरदार था कि लोग सहज ही उसके अनुयायी बन जाते थे। लोग समझने लगे कि आगे चल कर वह अवश्य ही राष्ट्रीय आन्दोलन का एक प्रधान नायक होगा। जो लोग रोमन साम्राज्य की सत्ता के विरुद्ध षड्यन्त्र रचते थे, उन्होंने उसे अपने दल के लिए एक उपयुक्त सदस्य समझा और वे उसे अपने पक्ष में मिलाने की चेष्टा करने लगे। आरम्भ में ईसा षड्यन्त्रकारियों के सिद्धान्तों की तरफ़ कुछ झुका भी और समझने लगा कि सम्भवतः इस उपाय से उसकी मातृभूमि तथा जाति-भाइयों का उद्धार हो सकेगा। पर कुछ ही दिनों में उसका विचार पलट गया और उसने कहा—"शक्ति से नहीं, बल से नहीं, वरन् आध्यात्मिक उपाय द्वारा ही सच्ची सफलता प्राप्त हो सकती है।" पार्थिव शक्ति एक क्षण के लिए चाहे प्रधानता प्राप्त कर ले, पर अन्त में उसका नाश अवश्यम्भावी है, क्योंकि उसका आधार पाप पर होता है। तब रोमनों के विरुद्ध बलवा खड़ा करने की समस्त योजना उसे शैतान के प्रलोभन के समान जान पड़ने लगी और वह चालीस दिन तथा चालीस रात तक निरन्तर उससे अपना पीछा छुड़ाने के लिए मानसिक संग्राम करता रहा। उसने अपने मन में विचारा कि यदि रोमनों को हरा कर उनके साम्राज्य और वैभव का स्वामी पैलेस्टाइन हो जाय, तो इससे क्या लाभ होगा? क्या उसके स्थान में फ़रीसीज़ का साम्राज्य स्थापित होने और पुरोहितों के बनाए क़ानून जारी होने से मनुष्य जाति का विशेष कल्याण होगा? नहीं, ऐसा हो सकना असम्भव है। मनुष्यों का कल्याण तो 'ईश्वरीय राज्य' की स्थापना होने से ही सम्भव है। ईश्वरीय राज्य क्या है? ईश्वरीय राज्य वह है, जिसमें अन्यायपूर्ण सामाजिक भेदभाव न हो, ग़रीबों के कष्ट मिटाए जायँ, धन-सम्पत्ति को घृणा की दृष्टि से देखा जाय, सब प्रकार के दमनकारी और बल पर आधार रखने वाले शासन का अन्त हो जाय, और समस्त मनुष्यों के प्रति प्रेम-भाव रक्खा जाय।

जब ईसा ने इस प्रकार के विचार प्रकट किए, तो उसके समस्त क्रान्तिकारी तथा राष्ट्रीयतावादी मित्रों ने उसे छोड़ दिया। पर साधारण जनता पर उसका प्रभाव

बढ़ने लगा और कितने ही लोग उसके अनुयायी बन गए। जब साधारण जनता उसका उपदेश सुनने को इकट्ठी हुई, तो उसने एक पहाड़ के ऊपर चढ़ कर कहना आरम्भ किया :—

"धन्य हैं वे लोग, जो ग़रीब हैं, जो दुःख और पश्चात्ताप करते हैं, जो नम्र, दयालु और शान्ति-प्रचारक हैं; और जो न्याय की ख़ातिर दण्ड सहते हैं। धन्य हैं वे, जो बुराई का प्रतिकार नहीं करते वरन् बुराई के बदले भलाई करते हैं। धन्य हैं वे, जिनके यहाँ अदालतें नहीं हैं, और जो दण्ड-विधान से अनभिज्ञ हैं, तथा जो अपने शत्रुओं से भी प्रेम करते हैं और अपने दण्ड देने वालों के कल्याण के लिए भी प्रार्थना करते हैं। क्योंकि समस्त मनुष्य एक ही पिता के सन्तान हैं।"

ईसा ने अपने अनुयायियों को समझाया कि राजनीतिक विग्रह, क्रान्तिकारी उपद्रव, राष्ट्रीय युद्ध, हत्याकाण्ड, क़ानूनी सुधार और राष्ट्रीय स्वतन्त्रता से ईश्वरीय राज्य का आदर्श प्राप्त नहीं किया जा सकता। अगर यहूदी जाति अन्य देशों पर अधिकार कर ले और बहुत सा सोना-चाँदी इकट्ठा कर ले, तो इससे वास्तविक आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती। मन्दिर में पूजा-पाठ करना, धर्म-सभा में उपदेश सुनना, शास्त्र की विधियों से जप-तप और प्रायश्चित्त करना अथवा न्याय के लिए क़ानून बनाना, देशभक्ति का भाव जागृत करना और राष्ट्रीय झण्डे को फहराते रहना ईश्वरीय राज्य के चिन्ह नहीं हैं। इसके विपरीत ईश्वरीय राज्य के चिन्ह ये हैं—मनुष्य-मात्र के प्रति अनन्त-प्रेम के आधार पर जीवन का पुनर्निर्माण, निर्बलों और भूले-भटकों के प्रति दया-भाव, समस्त मनुष्यों के प्रति अनन्त सहानुभूति, समाज में से समस्त भेदभावों का निराकरण और सब लोगों के लिए आवश्यकीय रूप से परिश्रम करने का नियम।

ईसा का उपदेश स्पष्टतः राष्ट्रीयता तथा प्रचलित धार्मिक रूढ़ियों का विरोधी था और सङ्कीर्ण विचारों के शासकों तथा धर्माधिकारियों के लिए उसे सहन कर सकना असम्भव था। ईसा ने जिस मानव-प्रेम तथा विश्व-बन्धुत्व की घोषणा की थी, उसको समझ सकने की उनमें क्षमता न थी। उन दिनों पैलेस्टाइन के अधिकांश निवासी राष्ट्रीय भावनाओं से भरे हुए थे और जो व्यक्ति उस भावना को निर्बल बनाने की चेष्टा करता था, वह उनकी दृष्टि में देश और जाति का द्रोही था। इसलिए अधिकारियों तथा अन्य शक्ति-सम्पन्न लोगों की क्रूर दृष्टि शीघ्र ही ईसा पर पड़ी और उसे न्यायालय द्वारा प्राणदण्ड की आज्ञा दे दी गई।

साम्यवादी समितियाँ

ईसा को बहुत थोड़े समय तक जनता में अपने सिद्धान्तों के प्रचार करने का अवसर मिला था, इसलिए उसकी मृत्यु के पश्चात् लोग उन सिद्धान्तों को भूलने लगे। उसके शिष्यों में से भी कोई इस योग्य न था कि अपने गुरु के कार्यक्रम को बदस्तूर जारी रख सकता। वे लोग स्वयम् ही ईसा के उपदेशों के वास्तविक आशय से अपरिचित थे और उन्होंने उसे ग़रीबों के उद्धार के आन्दोलन के बजाय एक वाह्य आडम्बर-युक्त धर्म का रूप दे दिया। ईसा के साम्यवादी चरित्र पर पर्दा डाल कर उन्होंने उसके सम्बन्ध में अनेकों चमत्कारिक और आश्चर्यपूर्ण कथाएँ गढ़ डालीं और उसे एक दैवी व्यक्ति बना कर सर्वसाधारण की पहुँच से परे कर दिया। इन कारणों से कुछ वर्षों बाद इस आन्दोलन की बागडोर सेण्ट पाल के हाथ में आ गई, जो स्वयम् एक फ़रीसीज़ था और जिसे श्रमजीवियों और ग़रीबों के मनोभावों के सम्बन्ध में कुछ ज्ञान न था। इसमें सन्देह नहीं कि वह एक विद्वान और विमल चरित्र वाला सज्जन व्यक्ति था और उसकी तपस्या तथा धर्मशीलता के सम्मुख सब श्रेणियों के व्यक्ति सर झुकाते थे। आरम्भ में साम्यवादी विचार के लोगों ने उसका बहुत विरोध किया, पर उसके आध्यात्मिक प्रभाव तथा दृढ़ता के सम्मुख अन्त में उनको हार माननी पड़ी। सेण्ट पाल के सिद्धान्तानुसार पार्थिव सफलता या असफलता का कोई मूल्य न था, आत्मिक कल्याण ही एकमात्र महत्व का विषय था, और इसका सब से सीधा रास्ता ईसा में विश्वास रखना था। इस मत के फैलने से ग़रीबों की आर्थिक स्थिति को सुधारने तथा उन पर होने वाले अन्यायों को दूर करने का प्रश्न पीछे पड़ गया और लोग पारलौकिक सुख प्राप्त करने के लिए ही चेष्टा करने लगे।

तो भी ईसा के आत्म-बलिदान के पश्चात् कितने ही वर्षों तक यहूदी श्रमजीवी अपनी स्वतन्त्र समितियाँ

बना कर साम्यवाद के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन निर्वाह करते रहे। ये लोग, जो 'एबियोनाइट' कहलाते थे, ग़रीबी को गौरव का विषय मानते थे। वे लोग स्वेच्छापूर्वक दरिद्रता को स्वीकार करते थे और इसे सदाचार तथा नीति का प्रधान अङ्ग समझते थे। वे लोग ईसा के इस सिद्धान्त के अनुयायी थे कि "मनुष्य एक ही समय में भगवान और लक्ष्मी दोनों की भक्ति नहीं कर सकता।" इन समितियों के सदस्य जो कुछ उत्पन्न करते थे, उस पर अपना नहीं, वरन् समस्त समाज का अधिकार मानते थे। ये लोग प्रायः सम्मिलित रूप से रहते और खाते-पीते थे। जैसा कि बाइबिल के एक प्रकरण में वर्णन किया गया है—"जो लोग ईसा में विश्वास रखते हैं, वे मिल कर रहते हैं और समस्त पदार्थों का सम्मिलित रूप से उपभोग करते हैं।" इस सिद्धान्त के अनुसार इन लोगों ने अपनी समस्त जायदाद तथा अन्य चीज़ें बेच डाली थीं और तमाम धन सब लोगों को उनकी आवश्यकतानुसार बाँट दिया था। ये तमाम विश्वासी लोग एक हृदय और एक आत्मा रखते थे और उनमें से कभी किसी ने यह नहीं कहा कि उसके पास जो चीज़ें हैं, उनका स्वामी वह स्वयम् है।" इन विचारों के लोग सम्पत्ति को अपमान का कारण समझते थे और दरिद्रता को पवित्रता का चिन्ह मानते थे। उनका दृढ़ विश्वास था कि लक्ष्मी की भक्ति करने से, सम्पत्ति और वैभव की तृष्णा रखने से अवश्य ही पाप-पङ्क में लिप्त होना पड़ता है।

पर जैसे-जैसे ईसाइयों की संख्या बढ़ती गई, साम्यवादी समितियों की वृद्धि होकर उनमें फूट फैलने लगी। साथ ही पाल का प्रचार-कार्य ज़ोर पकड़ता गया, और उसके फल से ईसाई-मत में से साम्यवाद का भाव क्षीण होता गया और उसने दान, भिक्षा तथा उदारतापूर्वक ग़रीब भाई-बहिनों की सहायता करने का स्वरूप धारण कर लिया। नतीजा यह हुआ कि कुछ ही दिनों में ईसाइयों में भी श्रेणी-भेद उत्पन्न हो गया और उनमें भी अमीर तथा ग़रीब, मालिक तथा मज़दूर दिखलाई पड़ने लगे। इससे पुराना भ्रातृभाव वाला भाव नष्ट हो गया। धार्मिक क्षेत्र में यह भेदभाव 'श्रद्धा' और 'कर्म' के विवाद के स्वरूप में प्रकट हुआ। इस कलह में ग़रीबों का पक्ष समर्थन करने वाला जेम्स था, जिसने अपने लेखों में ईसा और पाल की शिक्षाओं का अन्तर दिखलाया है। वह लिखता है—"यदि कोई व्यक्ति कहता है कि वह श्रद्धा रखता है, पर वह काम नहीं करता, तो इससे क्या लाभ? × × अमीर लोग केवल श्रद्धा के नाम पर ईसाइयों की धर्म-सभाओं में विशेष रूप से सम्मान पाने का दावा करते हैं और अपने अन्य सहधर्मियों को छोटा समझ कर उन पर अनुग्रह दिखलाते हैं। × × पर सच यह है कि बिना कर्म के श्रद्धा प्राणहीन है। × × अमीर लोग याद रक्खें कि भगवान ग़रीबों से ही प्रसन्न रहता है, जिनका धन-सम्पन्न व्यक्ति अब भी रक्त-शोषण करते हैं और जिनको अदालतों में घसीटा जाता है। × × पर ऐ धन के घमण्ड में अन्धे लोगो, तुम रोओ और पुकारो, क्योंकि तुम्हारे दुर्दिन भी पास आ रहे हैं। तुम्हारी सम्पत्ति भ्रष्टतापूर्ण है और तुम्हारे कपड़ों में दीमक लग गया है। तुम्हारे सोने-चाँदी में मोर्चा लगा है। तुमने गुज़रे ज़माने में अपने ख़ज़ाने को ख़ूब भरा है। पर याद रक्खो कि जिन मज़दूरों ने तुम्हारे खेतों में परिश्रम किया है और जिनकी मज़दूरी को तुमने चालबाज़ी से हड़प लिया है, वे पुकार मचा रहे हैं और उनकी आवाज़ भगवान के कानों तक जा पहुँची है।"

अन्य प्रचारक

इस प्रकार यद्यपि पाल के सिद्धान्तों और शक्ति-सम्पन्न व्यक्तियों की चेष्टाओं ने ईसाई धर्म का मूल-स्वरूप विकृत कर दिया, पर उसमें स्वतन्त्र विचारकों का अभाव नहीं हुआ और वे निरन्तर ग़रीबी और निर्धनता की प्रशंसा करते रहे। विशेषतया ईसा की तीसरी और चौथी शताब्दी में ग्रीक और लैटिन गिर्जाघरों के पादरियों ने त्यागमय जीवन की महिमा को फैलाया, जिससे जरूसलम की आरम्भिक साम्यवादी समितियों की स्मृति फिर ताज़ा हो गई और लोग सम्मिलित रूप से रहने की श्रेष्ठता अनुभव करने लगे। बहुत सा समय बीत जाने के कारण अब इन समितियों के सम्बन्ध में लोगों की धारणा में अन्तर पड़ गया था और उनके विषय में कवियों के कवित्वमय वर्णन को पढ़ कर वे उन्हें सतयुग की चीज़ समझने लगे थे। धीरे-धीरे इसी विश्वास ने 'मिलैनियम' अथवा राम-राज्य का स्वरूप ग्रहण कर लिया। इन विचारों के मुख्य

प्रचारक बर्नबास, जस्टिन, क्लीमेण्ट, टरटूयूलियन, सिपरियन, बैसिलस, क्रिसोसटम आदि धर्माचार्य थे, जो किसी न किसी अंश में धन-सत्ता के विरोधी और साम्यवाद के पृष्ठपोषक थे। इनकी सम्मति में साम्यवाद के सिद्धान्तों के अनुसार जीवन-निर्वाह करना ही धर्मानुकूल और सच्चे ईसाइयों के लिए आदर्श रूप था।

इन विचारकों में बर्नबास सब से प्रथम था। उसका समय ईसा की द्वितीय शताब्दी के आरम्भ में माना गया है। उसने अपने धार्मिक लेखों में ईसाइयों को आदेश दिया है—"समस्त वस्तुओं का अपने पड़ोसियों के साथ मिल कर उपभोग करो। तुम इन वस्तुओं को अपनी मत बतलाओ। क्योंकि जब तुम अविनाशी वस्तुओं का उपभोग अन्य लोगों के साथ मिल कर करते हो, तो इन नाशवान चीज़ों को अपना बतलाना किस प्रकार उचित कहा जा सकता है।"

जस्टिन ने ईसा के शिष्यों के मन्तव्यों का ज़िक्र करते हुए लिखा है—"हम लोग किसी समय सम्पत्ति और वैभव के मार्ग को ही सब से अधिक प्रेम करते थे। पर अब हम सब लोगों के साथ मिल कर जीवन-निर्वाह की सामग्री उत्पन्न करते हैं और जिसे ज़रूरत होती है उसे दे देते हैं।" क्लीमेण्ट ने लिखा है—"हमको यह बात समझ लेनी चाहिए कि उत्तम वस्तुएँ उत्तम व्यक्तियों की ही सम्पत्ति हैं और समस्त ईसाई उत्तम व्यक्ति हैं। इसलिए उत्तम वस्तुओं के उपभोग का अधिकार समस्त ईसाइयों को है। पर अधिकार का अर्थ क्या है? सच्चा अधिकारी वह नहीं है, जो किसी वस्तु को पास में रखता है। वरन् जो उसे दूसरों को दे डालता है, वही सच्चा धनी है।" क्लीमेण्ट की यह कहावत भी प्रसिद्ध है कि "धन की तृष्णा पाप का क़िला है।"

टरटूयूलियन यद्यपि एक रोमन सैन्य अधिकारी का पुत्र था, पर वह रोम के साम्राज्यवाद का कट्टर विरोधी था और उसमें किसी तरह का भाग लेना अथवा नौकरी करना ईसाई धर्म के विरुद्ध समझता था। उसके मतानुसार "ईश्वरीय और मानवीय क़ानूनों में कभी एकता नहीं हो सकती। इसी प्रकार ईसा का झण्डा और शैतान का झण्डा कभी एक नहीं हो सकता।" वह देशभक्ति और राष्ट्रीयता का भी क़ायल न था। उसने एक स्थान पर लिखा है—"हम लोगों में से मान-सम्मान की समस्त आकांक्षा नष्ट हो चुकी है और हम तुम्हारी सार्वजनिक सभाओं में भाग लेने की तनिक भी इच्छा नहीं रखते। तुम्हारी राजनीति से हमको अत्यधिक विराग है। हम केवल एक ही सर्वव्यापी साम्राज्य को मानते हैं, जिसमें संसार का प्रत्येक देश सम्मिलित है। × × × केवल सत्पुरुष ही परस्पर में एक-दूसरे के बन्धु हो सकते हैं। इस प्रकार का भ्रातृभाव बाहरी घटनाओं से नष्ट नहीं हो सकता। जिस पारिवारिक सम्पत्ति के कारण तुम लोगों का भाई का रिश्ता टूट जाता है, उससे हमारा भ्रातृभाव और भी दृढ़ होता है। हम लोगों का मस्तिष्क और आत्मा एक है और हम अपनी सांसारिक सम्पत्ति को अपने अन्य भाइयों को देने में सङ्कोच नहीं करते। हम लोगों में पत्नियों को छोड़ कर अन्य तमाम वस्तुओं का सम्मिलित रूप से उपभोग किया जाता है।"

बैसिलस ने धनवानों के रहन-सहन के ढङ्ग की तीव्र आलोचना करते हुए कहा है—"सम्पत्ति की शक्ति के सामने सबको परास्त होना पड़ता है और हर एक को उसके अत्याचारों के सामने मस्तक झुकाना पड़ता है। × × × पर क्या ये सम्पत्तिवान लोग चोर और लुटेरे नहीं हैं? तुम्हारे पास जो रोटी है, वह भूखों की है। तुम जो बेशक़ीमती चुग़ा पहिने हो वह चिथड़े लपेटने वालों का है; तुम जो जूता पहिने हो वह नङ्गे पैर फिरने वालों का है; तुमने जो सोना-चाँदी इकट्ठा कर रक्खा है वह ग़रीबों का है। तुम जितनों को दे सकते हो उतने लोगों को तुमने हानि पहुँचाई है। × × × कैसे खेद का विषय है कि हम लोग, जिनको विवेक-बुद्धि प्राप्त है, बुद्धिहीन पशुओं से भी बढ़ कर निर्दय हैं। पशु प्राकृतिक वस्तुओं का सम्मिलित रूप से उपभोग करते हैं। भेड़ों का झुण्ड एक ही खेत में चरता है। घोड़े एक ही मैदान में घूमते और अपना पेट भरते हैं, पर हम सार्वजनिक चीज़ों को अपनी निजी बना लेते हैं और समाज की सम्पत्ति को व्यक्तिगत बतलाने लगते हैं। × × × इस सम्बन्ध में हमको स्पार्टा वालों का अनुकरण करना चाहिए, जो मनुष्यता के अनुकूल है। उन लोगों में सद्गुण-सम्पन्न व्यक्ति पाए जाते हैं और वे सब एक मकान में एक ही मेज़ के चारों तरफ़ बैठ कर भोजन करते हैं।"

क्रिसोस्टम ने सन् ४०० में जरूसलम की आरम्भिक साम्यवादी समितियों का ज़िक्र करते हुए कहा था—"उन लोगों का यह दस्तूर न था कि सम्पत्ति का कुछ अंश दे दें और कुछ रख लें। न वे जो कुछ देते थे उसे अपनी चीज़ समझ कर देते थे। तो भी उनके यहाँ सब वस्तुओं की बहुतायत रहती थी। उन्होंने अपने भीतर से सब प्रकार की असमानता को दूर हटा दिया था और इससे वे बड़े सुख से रहते थे। इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि पृथक्-पृथक् रहना ख़र्च बढ़ाने वाला है और इससे दरिद्रता फैलती है। उदाहरण के लिए एक घर में बच्चे, स्त्री और पुरुष मिल कर रहते हैं। उनमें से स्त्री चर्ख़ा कात कर कपड़े तैयार करती है और पुरुष बाहर काम-काज करके अन्य आवश्यकीय सामग्री लाता है। अब समझना चाहिए कि ये लोग एक साथ रह कर और एक साथ भोजन करके कम ख़र्च करेंगे या पृथक्-पृथक् रह कर? इसका एकमात्र उत्तर यही है कि पृथक् रहने से ख़र्च अधिक होगा। क्योंकि अगर दस बच्चे अलग रहना चाहें तो उनके लिए दस कमरे चाहिएँ, दस रसोई-घर चाहिएँ और दस नौकर चाहिएँ। यही कारण है कि जहाँ बहुत से ग़ुलाम होते हैं, वे एक ही रसोईघर में भोजन करते हैं, जिससे ख़र्च अधिक न हो। इसलिए पृथकता से अभाव की वृद्धि होती है और सम्मिलन से बहुतायत होती है। मठों में रहने वाले साधु सम्मिलित रूप से खाते-पीते और रहते हैं, पर क्या कभी किसी ने उनको भूख से मरते सुना है? पर कैसा आश्चर्य है कि लोग अन्धकारपूर्ण और अथाह गढ़े में गिरने की अपेक्षा इस लाभजनक नियम से कहीं अधिक भयभीत होते हैं।"

एम्ब्रोस के मतानुसार निजी जायदाद का नियम पापपूर्ण है और आरम्भ में पाप द्वारा ही निजी सम्पत्ति की सृष्टि हुई थी। उसने स्टॉइक दर्शन के सिद्धान्त का समर्थन करते हुए बतलाया है—"प्रकृति ने समस्त वस्तुएँ मनुष्य-मात्र के सम्मिलित उपयोग के लिए उत्पन्न की हैं। ईश्वर ने समस्त वस्तुओं की सृष्टि ऐसे ढङ्ग से की है कि सब लोग उनके उपभोग का आनन्द प्राप्त कर सकें और पृथ्वी पर सबका समान रूप से अधिकार रह सके। इस प्रकार प्रकृति मनुष्य को सम्मिलित रूप से समानतापूर्वक जीवन-निर्वाह की शिक्षा देती है, पर ज़बरदस्ती और अन्याय के द्वारा लोग निजी जायदाद का नियम जारी कर देते हैं।"

एम्ब्रोस का शिष्य ऑगस्टाइन भी, जो रोमन कैथलिक सम्प्रदाय के सबसे बड़े विद्वान धर्माचार्यों में से एक था, सिद्धान्त की दृष्टि से साम्यवाद का प्रतिपादन करता था। उसने ईसाइयों के धार्मिक भजन-ग्रन्थ के भाष्य में लिखा है—"प्रिय भाइयो, तनिक विचार करो कि निजी सम्पत्ति के कारण मनुष्यों में कितनी मुक़दमेबाज़ी, शत्रुता, झगड़े-फ़साद और युद्ध होते हैं; परस्पर में फूट और कलह की वृद्धि होती है; और न मालूम कितने तरह-तरह के पाप, अन्याय और हत्याएँ तक होती हैं। इन सबका कारण क्या है? इनका कारण वह सम्पत्ति ही है, जो हममें से प्रत्येक के पास है। इसलिए भाइयो, हमको निजी सम्पत्ति के अधिकार से, और यदि हम अधिकार न त्याग सकें तो कम से कम उसकी ममता से बचे रहना चाहिए। × × × क्योंकि अगर हम केवल आवश्यक वस्तुओं के रखने का ही नियम बना लें तो हमारे पास की कितनी ही चीज़ें फ़ालतू सिद्ध होंगी। सोचो कि परमात्मा ने तुमको कितना दिया है और उसमें से तुमको कितने की आवश्यकता है। जो चीज़ें अनावश्यक बचें, वे दूसरों की आवश्यकता की पूर्ति के लिए हैं। तुम उतनी ही चीज़ पास रक्खो, जिससे परमात्मा प्रसन्न हो, न कि जिससे तुम्हारी तृष्णा की पूर्ति हो।"

कायापलट

इस प्रकार के साम्यवादी विचारक ईसाइयों में बहुत हुए हैं और अब भी ऐसे व्यक्तियों की कमी नहीं है। क्योंकि ईसा ने अपनी शिक्षा में साम्यवाद का सार भर दिया है और जो व्यक्ति उस पर सच्चे हृदय से विचार करता है, उसे किसी न किसी अंश में उसे स्वीकार करना ही पड़ता है। पर इससे यह न समझ लेना चाहिए कि जितने धर्माचार्य इन विचारों का समर्थन करते हैं, वे सब वास्तव में उनके अनुसार आचरण भी करते हैं अथवा सदैव उन पर दृढ़ रहते हैं। विशेषकर अधिकार और शक्ति-सम्पन्न धर्माचार्यों में से अधिकांश इन सिद्धान्तों के विपरीत चलते हैं। उनका ग़रीबों के प्रति प्रेम और निर्धनता की प्रशंसा केवल उपदेश के लिए होती है। ऊपर जिस ऑगस्टाइन का ज़िक्र किया गया है, उसके समय में उत्तरी अफ़्रीका के ज़मींदारों के

विरुद्ध उनके खेतों में मज़दूरी करने वालों ने आन्दोलन उठाया था। ये लोग ज़मीन पर समाज का सम्मिलित अधिकार स्थापित करने के लिए लड़ते थे, और यदि यह न हो सके तो वे कम से कम ज़मीन का समान रूप से बँटवारा किए जाने और सब लोगों को समान अधिकार और स्वतन्त्रता मिलने के पक्षपाती थे। इस आन्दोलन का नाम 'सर्कम सेलियन' था। इन लोगों के साथ 'डोनेटिस्ट' आन्दोलन वालों ने, जिनका उद्देश्य गिर्जाघरों के प्रबन्ध में इसी प्रकार का सुधार करना था, सहयोग किया। 'सर्कम सेलियन' आन्दोलन वाले शक्ति का प्रयोग भी करते थे। इन लोगों का विरोध राज्य, धर्माचार्यों और रोमन सत्ताधीशों ने मिल कर किया और अन्त में उनको हरा दिया। इस सम्बन्ध में ऑगस्टाइन ने 'डोनेटिस्ट' और 'सर्कम सेलियन' दलों की निन्दा करते हुए लिखा था कि "चूँकि इन लोगों ने धार्मिक तथा राजकीय सत्ता का विरोध किया है, इसलिए ये सम्पत्ति का अधिकार नहीं पा सकते। सम्पत्ति पर न्यायशीलों का ही अधिकार हो सकता है।"

ऑगस्टाइन जानता था कि ये श्रमजीवी आर्थिक समानता के लिए ही, जिसका प्रतिपादन बाइबिल में किया गया है, चेष्टा कर रहे हैं, उसे ग्रीक और रोम के साम्यवादी आन्दोलनों का भी भली-भाँति ज्ञान था, और वह जरूसलम की साम्यवादी समितियों के सम्बन्ध में भी अनजान न था। पर चूँकि वह एक बहुत बड़ी और शक्तिशालिनी संस्था का अध्यक्ष था और शासकवर्ग तथा धनिकवर्ग में उसका विशेष रूप से मान था, इसलिए उसने सिद्धान्त को ताक में रख कर उन्हीं का समर्थन किया। यही सिद्धान्त और व्यवहार अथवा आध्यात्मिक आदर्श और सांसारिक जीवन का अन्तर अधिकांश धर्मों की वास्तविकता को नष्ट करने वाला है। इससे उनका स्वाभाविक विकास रुक जाता है और साम्यवाद के सुन्दर सिद्धान्त पर पर्दा पड़ जाता है। यदि ऐसा न होता तो आज मनुष्यों में इतनी विभिन्नता और दलबन्दी न पाई जाती और न असमानता इतने भीषण तथा व्यापक रूप में दिखलाई देती।

ईसा की मृत्यु के पश्चात् तीन-चार सौ वर्ष तक ईसाइयों में आमतौर पर यह विश्वास जड़ जमाए रहा कि ईसा मसीह शीघ्र ही पुनर्जीवित होंगे और पृथ्वी पर धर्म-राज्य स्थापित करके हज़ार वर्ष तक शासन करेंगे। जैसा हम ऊपर वर्णन कर चुके हैं 'धर्म-राज्य' अथवा 'राम-राज्य' की कल्पना आरम्भिक साम्यवादी समितियों से उत्पन्न हुई थी। इसके पश्चात् जब रोम के प्रसिद्ध ख़ूनी सम्राट नीरो ने ईसाइयों पर घोर दमन-चक्र चलाया और उनकी हत्या का बाज़ार गर्म हो उठा तो धर्माचार्य जॉन ने अपने सहधर्मियों को उत्साहित करने और कष्टों का मुक़ाबला वीरतापूर्वक करने के उद्देश्य से भविष्यवाणी की कि रोम की पाशविक सत्ता का शीघ्र ही अन्त हो जायगा और शहीद लोग पुनर्जीवित होकर ईसा के साथ संसार पर शासन करेंगे। उस समय जगत में फिर से सतयुग का दृश्य दिखाई देगा और मनुष्यों में पूर्ण समानता स्थापित हो जायगी। सब लोग धर्माचरण करने वाले और निष्पाप होंगे। पृथ्वी पाप के भार से मुक्त होकर बिना चेष्टा किए ही आश्चर्यजनक परिमाण में फल-फूल और अन्य खाद्य पदार्थ उत्पन्न करने लगेगी तथा उस काल में कोई व्यक्ति भूखा और नङ्गा न रहेगा।

धर्म-राज्य की यह कल्पना सर्वसाधारण को ऐसी मधुर और सुखद जान पड़ी कि उनको इस पर दृढ़ विश्वास हो गया और वे भावी सुख की आशा से सब प्रकार के अन्याय-अत्याचार को प्रसन्नतापूर्वक सहन करने लगे। पर कुछ समय पश्चात् रोम के सम्राटों को ईसाई धर्म की शक्ति का पता लग गया और उन्होंने दमन को निरर्थक समझ कर उसे अन्य मज़हबों के समान अधिकार दे दिए। कुछ समय और बीतने पर रोम के सम्राट स्वयं ईसाई बन गए और इसे राज्य का धर्म बना दिया गया। इस परिवर्तन के फल-स्वरूप धर्म-राज्य की कल्पना निर्बल पड़ गई और धीरे-धीरे उस पर से लोगों का विश्वास हट गया। इसके साथ ही साम्यवाद का आदर्श भी लुप्त हो गया और ईसाई धर्माचार्य बाइबिल के उपदेशों की भिन्न प्रकार की व्याख्या करके निजी जायदाद और राजकीय शक्ति की प्रधानता का समर्थन करने लगे। ईसाई-धर्म ग़रीबों के उद्धार के आन्दोलन के बजाय शास्त्रीय वादाविवाद और आध्यात्मिक उत्कर्ष की चीज़ बन गया।

कहानी-कला

[श्री० रामनारायण 'यादवेन्दु', बी० ए०]

कथावस्तु

कहानी में जो घटना और कार्य उसके पात्रों से सम्बन्ध रखते हुए उसके विकास में सहायता प्रदान करते हैं, वही कथावस्तु या कथानक का स्थान ग्रहण कर लेते हैं। कहानी के समस्त विकास में निहित 'कार्य' की अविराम सरणि की संश्लिष्ट योजना का नाम कथावस्तु है। "कथानक कहानी का प्राण है और कहानी की महत्ता बहुत अंशों में इसी पर निर्भर है। कथानक का सम्बन्ध जीवन की गम्भीर से गम्भीर विवेचना से होता है। तात्पर्य यह है कि कथानक का सम्बन्ध जीवन के प्रत्येक व्यापार से होता है। लेखक जितना उच्च कोटि का होगा, उतना ही उसके कथानक का सम्बन्ध जीवन के उच्च व्यापारों और कठिन समस्याओं से होगा। जीवन के अनुभवों को लेकर उनकी युक्तिपूर्ण रचना का नाम ही कथानक रचना है।" *

साहस के उपाख्यान में संश्लिष्ट योजना नहीं होती, पर प्रत्येक कलापूर्ण कहानी में, जिसमें घटनाओं की अपेक्षा किसी उच्च उद्देश्य का भाव निहित होता है, संश्लिष्ट योजना का प्रयोग अत्यन्तावश्यक है। घटनाओं की योजना ऐसे ढङ्ग से की जानी चाहिए, जिससे लेखक का उद्देश्य उत्कृष्टता और प्रभावोत्पादकता से अभिव्यक्त हो सके। यदि विशद् भाव में कथानक का अर्थ लिया जाय, तो हम उसे 'योजना' कह सकते हैं। ऐसी स्थिति में 'योजना' प्रत्येक कहानी ही नहीं, प्रत्युत प्रत्येक साहित्यिक रचना के लिए अपेक्षित है। साहित्यिक रचना के लिए उपादान-योजना एक मौलिक आवश्यकता है। यदि 'कार्य' निरुद्देश्य है और घटनाएँ आकस्मिक हैं, तो कहानी-लेखक का कर्तव्य है कि वह उनका प्रयोग न करे। यदि उनका प्रयोग ही वाञ्छनीय है, तो उनका अपने उद्देश्य के अनुकूल सम्पादन करना चाहिए।

कथानक ही में तीव्र स्थिति (Climax) का सन्निवेश है, परन्तु यह आवश्यक नहीं कि उसमें आश्चर्य-तत्त्व का समावेश हो। यदि लेखक में इतना कौशल है कि वह पाठक को, कहानी के अन्त में, आश्चर्यान्वित कर सकता है, तो यह प्रयत्न स्तुत्य है। यदि सब कहानियाँ अपनी उत्कृष्टता और सफलता के लिए आश्चर्य-तत्व (Eliment of Surprise) पर निर्भर रहें, तो कहानी-साहित्य का अल्प समय में ही नाश हो जाय। कहने का तात्पर्य यही है कि सर्वोत्कृष्ट कहानी आश्चर्य-तत्व पर निर्भर नहीं होती। हाँ, यह ठीक है कि उसमें तीव्रतम स्थिति होती है, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि आश्चर्य द्वारा भावात्मक स्तब्धता की अनुभूति हो। कहानी में जिस स्थान पर रोचकता केन्द्रीभूत होकर चरमोत्कर्ष को पहुँच जाती है, वही तीव्रतम स्थिति कहलाती है।

कथानक की प्रमुख आवश्यकताएँ क्या हैं, यह एक विचारणीय समस्या है। एक लेखक का कथन है कि "कहानी की स्थितियों में, अत्यधिक रोचकता के साथ निर्वहण, नूतनता और रोचकता कथावस्तु की प्रमुख आवश्यकताएँ हैं।"

कथानक में नवीनता और रोचकता का सन्निवेश करने के लिए उसमें विश्व-व्यापी मानव-हृदय को स्पर्श करने वाली जीवनी-शक्ति का सञ्चार हो। जिस कथानक में मानव-हृदय-स्पर्शिता प्रचुर मात्रा में होगी, वह पाठक-हृदय

---

* 'सुधा' (लखनऊ) श्रावण सं० १९८८ वि० की संख्या में प्रकाशित मेरा लेख 'कहानी-लेखन-कला' पृष्ठ ७८।

का सहचर बन जायगा। पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त के 'मिलन-मुहूर्त्त' का अन्त कितना हृदय-स्पर्शी और उदात्त मनोभावों से सम्पन्न हुआ है :—

"वासवदत्ता ने चकित होकर पुकारा—कौन ?

उपगुप्त ने उत्तर दिया—मैं हूँ।

वासवदत्ता कण्ठ-स्वर कुछ पहचान गई। अपना भ्रम मिटाने को उसने पूछा—कौन, तुम उपगुप्त हो ?

उपगुप्त—हाँ, मैं उपगुप्त ही हूँ।

वासवदत्ता ने दीर्घ श्वास खींच कर कहा—लौट जाओ, तुम किस लिए आए हो ? क्या तुम मेरा उपहास करने आए हो ?

उपगुप्त—तुम मुझसे लौट जाने को कहती हो। मैं तुम्हारे ही कहने के अनुसार तुम्हारे पा आया हूँ। मेरे आने में विलम्ब नहीं हुआ है, अभी वर्ष होने में पूरे दो दिन शेष हैं।

वासवदत्ता ने निराशा के स्वर में कहा—हाय ! जब मेरी देह वसन्त की सुरभि से सौरभवती थी, तब तुम न आए। जब मेरी शोभा का चन्द्रमा पृथ्वी के ऊपर सुधा की वृष्टि कर रहा था, तब तुम न आए। जब घातक मेरे यौवन का अन्त करने के लिए प्रस्तर-खण्ड पर अपना शस्त्र तेज़ कर रहा था, तब भी तुम न आए। भिक्षु, क्या तुम इतने अबोध हो ? मेरे सौन्दर्य का दीपक बुझ गया है, मेरी शोभा का सूर्य अस्त हो गया है ! ऐसे समय तुम किस लिए आए हो ?

उपगुप्त—भगिनी ! मैं इन्द्रिय-सुख अथवा किसी स्वार्थ से प्रेरित होकर तुम्हारे पास नहीं आया हूँ। शारीरिक सौन्दर्य व्यर्थ है, तुम्हारा यह शरीर इसकी साक्षी देगा। मैं तुम्हारे पास आया हूँ। कहो, तुम्हें क्या कहना है ?

वासवदत्ता की आँखें खुल गईं। उसने कहा—मैं क्या कहूँ भिक्षु। तुम्हारे इस प्रश्न ने मेरे उत्तर को छीन लिया है ! मुझे ज्ञात हो रहा है, जैसे मैं एक स्वप्न, एक छाया और एक मरीचिका के पीछे दौड़ रही थी। मुझे कुछ नहीं कहना है। तुम मेरे समीप खड़े रहो। तुम्हारे स्पर्श से मेरी यातना कम हो रही है, तुम्हारे वचनों से मेरा सन्ताप दूर हो रहा है। भिक्षुश्रेष्ठ ! तुम कुछ कहो !

उपगुप्त—संसार के दुखों की जड़ तृष्णा है, तुम इसी तृष्णा की दासी होकर भटकती रहीं। तुमने काम के हाथ अपना धर्म बेच दिया, तुमने अर्थ के लिए अपने प्रेमी लक्षपति की हत्या की। आज इस दुख के समय तुम्हारे कोई काम नहीं आया।

वासवदत्ता—हाय ! भिक्षु, तुमने इससे पहले आकर मुझे ठोकर खाने से क्यों नहीं बचाया ? तुम आए, किन्तु बड़ी देर से आए।

उपगुप्त—कुछ विलम्ब नहीं हुआ है, अभी बहुत समय है। तुम इस समय वाह्य नेत्रों से हीन हो, किन्तु तुम्हारे नेत्र—अन्तर-नेत्र खुल गए हैं। उठो, भगवान बोधिसत्व का हाथ पकड़ो। वे तुम्हारे दुख दूर करेंगे। तुम्हें मुक्त करेंगे।

वासवदत्ता के मरु-संसार में आकाश-मार्ग से सुधा बरस गया। उसकी सात्विक प्रवृत्ति जाग उठी, उसे संसार की क्षणभङ्गुरता का बोध हुआ—बोध ही नहीं, अनुभव भी हुआ। उसने भिक्षु के चरणों पर अपना मस्तक रख कर कहा—मैं प्रस्तुत हूँ। मुझे ले जाओ। मेरा अञ्चल पकड़ कर मुझे शान्ति-राज्य में ले जाओ।

भिक्षु ने अपने पवित्र करों से उसका स्पर्श किया। दोनों सङ्घ की ओर चले। पाप-ताप से विदग्धा वासवदत्ता ने प्रायश्चित्त की सुरसरि में स्नान किया। प्रवज्या ग्रहण कर अपने शेष जीवन में शान्ति पाई।"

ऐसे उत्कृष्ट कथानकों में दो नियमों का पालन आवश्यक है। प्रथम घटनाओं का तारतम्य ऐसा हो कि वर्णन-प्रवाह में कोई शिथिलता न आने पावे। इसका निर्वाह अन्तिम लक्ष्य तक हो। द्वितीय, कथानक के अङ्ग माला के पुष्पों के समान गुथे होने चाहिए। उनमें विभिन्नता प्रतीत न हो।

कहानी-लेखन की निम्नलिखित पद्धतियाँ हैं :—

१—ऐतिहासिक पद्धति

इस पद्धति के अनुसार लेखक पात्रों को सामने लाकर उनसे कथोपकथन कराता है। आप एक दर्शक के रूप में अलग रह कर उनका वार्तालाप श्रवण करता है। इस पद्धति का व्यवहार अधिकतर कहानी-लेखक करते हैं। यथा :—

"जब मुझे सुधि आई तो मैंने अपने आपको एक होटल में पाया। मुझसे कुछ दूर सावित्री आरामकुर्सी

पर लेटी हुई थी और मदनलाल के साथ बात कर रही थी। इस समय उसके मुख-मण्डल पर आनन्द की चमक थी। मैं बावली सी उठ कर आगे बढ़ी और बोली—मैं आप दोनों से क्षमा माँगती हूँ।

सावित्री ने मुझे खींच कर गले से लगा लिया और मुस्करा कर बोली—बहिन, अब इस बात को जाने दो।

"परन्तु मुझे चैन नहीं आएगा। जब तक तुम्हारे होठों से न सुन लूँगी कि तुमने मुझे क्षमा कर दिया है।"

सावित्री ने उत्तर दिया—मेरा हृदय तुम्हारी ओर से निर्मल है।

मेरे हृदय से किसी ने बोझ हटा दिया, परन्तु फिर भी मैंने आँखें ऊपर न उठाईं और कहा—एक उपकार और करो तो बड़ी कृपा हो।

सावित्री ने मातृ-वात्सल्य के साथ अपना हाथ मेरे कन्धे पर रक्खा और पूछा—क्या है?

"इनसे भी कहो, मुझे क्षमा कर द। मैंने इनको बहुत कष्ट दिया है।"

मदनलाल इस समय तक इस प्रकार चुप थे, जैसे गूँगे हों। मेरी प्रार्थना सुन कर वे बोले, और चुपचाप अपनी घड़ी की चैन के साथ खेलते रहे। सावित्री ने कहा—सुनते हो, बहिन मेरीन क्या कह रही हैं?

"हाँ?"

"फिर क्षमा कर दो न।"

"इनका कोई दोष भी हो?"

मैंने बात काट कर कहा—यह बात मेरे सम्बन्ध में है और मैं इसे स्वयं स्वीकार करती हूँ। मैं तुम्हारी अपराधिन हूँ।

मदनलाल फिर भी चुप थे।

सावित्री ने कहा—चलो अब कह दो, बेचारी कितनी दुखित हो रही है।

मदनलाल बोले—जहाँ तक मैं समझता हूँ, इसमें मेरा ही अपराध था। यह कुँवारी थीं, अमेरिका की सभ्यता में पली थीं, नाटक कम्पनी में काम करती थीं। इनसे ऐसी बात हो जाना कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य तो यह है कि मेरी आँखों पर कैसे पट्टी बँध गई, जो मैं अपने देश, अपने धर्म, अपनी जाति, अपनी सभ्यता, अपनी रीति-नीति और अपनी पत्नी के साथ धोखा करने पर उद्यत हो गया। मुझे जब ही यह स्मरण होता है, कलेजे में भाले चुभते हैं और आँखें ऊपर नहीं उठतीं। इसी कारण मैंने प्रायश्चित्त करने के लिए साधु बनना स्वीकार किया। इसीलिए लाखों रुपए का स्वामी होते हुए भी मैंने एक ऑफ़िस में क्लर्की करना आरम्भ कर दिया था। मैं जानता था कि तुम पर क्या बीत रही होगी। परन्तु तुम यहाँ तक पहुँच आओगी, यह न समझता था। इस समय तक मुझे तुम्हारे प्रेम और श्रद्धा पर अभिमान था, अब तुम्हारी योग्यता और साहस पर भी मान हो गया है। परन्तु मेरी आँखों में लज्जा है, यह पता नहीं कभी दूर होगी या नहीं। शेष रही मेरीन की बात, उसके विषय में मैं सच्चे हृदय से कह रहा हूँ कि मेरे मन में किसी प्रकार का रोष नहीं। मैं इन्हें क्षमा करता हूँ।

सावित्री के नेत्रों में जल भर आया। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा—यह न कहो, तुम्हें लजाने की कोई आवश्यकता नहीं। परमात्मा ने मेरा लूटा हुआ सुख लौटा दिया है, मेरे लिए यही सब कुछ है।

परन्तु मदनलाल इस पर सन्तुष्ट न हुए। दृढ़ता से बोले—नहीं, तुम्हें भी मुझे क्षमा करना होगा, इसके बिना मेरे चित्त की चञ्चलता दूर न होगी।

सावित्री ने उत्तर दिया—यह आप क्या कर रहे हैं? भारतीय स्त्रियों के मुख से कभी ऐसे शब्द नहीं निकल सकते।

"परन्तु तुम्हें ऐसा कहना होगा।"

सावित्री का मुख-मण्डल लज्जा से तमतमाने लगा। वह भाग कर बग़ल के कमरे में जा छिपी। इस समय मेरा मन आनन्द से विह्वल हो गया था। वही सावित्री, जिसकी यशोदुन्दुभि अमेरिका के एक कोने से दूसरे कोने तक बज रही थी, इस समय पति के सम्मुख एक बच्चे के समान लजा रही है। मेरे हृदय में भारत के गौरव से सिर ऊँचा किया।"

'अमरीकन रमणी'—सुदर्शन

२—आत्म-कथा-पद्धति

इसके अनुसार कहानी-लेखक प्रथम पुरुष में लिखता है और लेखक स्वयं किसी पात्र से अपना सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। इस प्रकार जो कुछ कहा जाता

है, वह जीवन-चरित्र के रूप में कहा जाता है। लेखक स्वयं पात्र के रूप में हमारे सामने आता है। यथा :—

"मैं उन सौभाग्यवती स्त्रियों में से थी, जो अपने आप पर ईर्ष्या करती हैं। स्वास्थ्य, सौन्दर्य और सम्पत्ति ऐसी तीन वस्तुएँ हैं, जो संसार की बहुमूल्य वस्तुएँ समझी जाती हैं। परमेश्वर ने मुझे यह तीनों वस्तुएँ दी थीं, और इतना ही नहीं, मेरे नाम के डङ्के अमेरिका के एक सिरे से लेकर दूसरे सिरे तक बज रहे थे। मैं अमेरिका की सर्वोत्कृष्ट एक्ट्रेस थी। समाचार-पत्रों में मेरी प्रशंसा के पुल बाँधे जाते थे। लोग मेरा नाम सुन कर आनन्द में मतवाले हो जाते थे। यूनिवर्सल थियेट्रिकल कम्पनी के डायरेक्टर मेरे पार्ट पर लट्टू थे। मैं जब स्टेज पर जाती, तो लोग गुलदस्तों और फूलों के हारों से मुझे लाद देते थे, और उसके पश्चात् चित्रवत् मौन हो जाते थे! मैं जब बोलती, तो लोग अपने आपको भूल जाते थे। मेरा एक-एक कटाक्ष, मेरे पाँवों की एक-एक चलन्त, मेरी वक्तृता के एक-एक शब्द उपस्थित जनता के हृदयों में हलचल मचा देते थे। वे मेरी ओर इस प्रकार तृषित नेत्रों से देखते थे, जिस प्रकार चकोर का बच्चा चन्द्रमा को देखता है। लोगों के इस भाव को देख कर मेरा हृदय आनन्द से इस प्रकार हिलोरें लेने लगता, जैसे वायु में कमल-पत्र हिलता है।

जब पहले-पहल मैंने युनिवर्सल कम्पनी में नौकरी की, उस समय उसका कोई विशेष नाम न था, परन्तु मेरे साथ मिलने से उसके अन्दर नया जीवन आ गया और वह देश की बड़ी-बड़ी कम्पनियों में गिनी जाने लगी। इसके पश्चात् ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, मेरी कीर्त्ति और लोकप्रियता बढ़ती गई। यहाँ तक कि अमेरिका के प्रसिद्ध दैनिक समाचार-पत्र 'ऑबज़रवर' ने एक लम्बा लेख लिखा और मुझे नाटक के संसार का 'एक नया सितारा' लिखा। इतना ही नहीं, उसने मेरे कई फ़ोटो छापे, और मेरे आर्ट पर अत्यन्त साहसवर्द्धक रिमार्क दिए।

इस लेख का निकलना था कि मेरी कीर्त्ति को चार पर लग गए। युनिवर्सल कम्पनी अब अमेरिका की सबसे बड़ी कम्पनी थी। उसमें दर्शकों की भीड़ रहती थी। उसमें प्रायः लोगों को टिकिट न मिलने के कारण निराश होकर वापस लौटना पड़ता था। उस समय उनके मुख पर नैराश्य टपकता था। डायरेक्टर का दिल बढ़ा हुआ था, उसने टिकिट बढ़ा दिया, परन्तु तमाशाइयों में फिर भी कमी न हुई। हमारी आय दिन पर दिन बढ़ने लगी, यहाँ तक कि कम्पनी की ख्याति के लिए अमेरिका अपर्याप्त सिद्ध हुआ। एक दिन मैंने हँसते-हँसते कम्पनी के प्रोप्राइटर से कहा—क्यों न यूरोप में हो आएँ। वहाँ भी नाटकों के शौकीन थोड़े नहीं हैं।"

'अमरीकन रमणी'—सुदर्शन

३—पत्र-पद्धति

इस पद्धति के अनुसार लेखक कहानी की सब घटनाओं का उल्लेख करने के लिए पत्रों का आश्रय लेता है। लेखक पत्रों को एक शृङ्खला में बद्ध कर देता है, जिससे वे कथानक का रूप धारण कर लेते हैं। यथा :—

"प्रियवर पिता!

जब मेरा पत्र आपको मिलेगा, तब मैं इस संसार में न रहूँगी। मैं अच्छी तरह जानती हूँ कि मेरी मृत्यु से—इस प्रकार की मृत्यु से विशेषतः—आपको बहुत कष्ट होगा। परन्तु पिता! मैं क्या करती, मैं विवश थी। मैं उस गुलाम मोहन को बहुत प्यार करती थी। पिता, अगर मैं उसके बिना रह सकती तो आपको मेरी मृत्यु का कष्ट नहीं भोगना पड़ता। परन्तु पिता! मैं उसके प्रेम में पागल हो गई थी, मैं उसे बिना देखे एक क्षण भी नहीं रह सकती थी। पिता! मैं इस अन्तिम समय में आपको विश्वास दिलाना चाहती हूँ कि इसमें उस गुलाम का कुछ भी दोष नहीं है। मैं ही उससे प्रेम करने लगी, मैंने ही बार-बार उसके प्रेम को उत्तेजित किया। प्रेम में मैं ही सदा अग्रसर होती चली आई थी, परन्तु उसने मुझे अस्वीकार कर दिया। पिता! मैं तो उसके साथ भाग जाने को भी तैयार थी, परन्तु उसने ही ऐसा नहीं किया। इसी से निराश होकर मैं आत्मघात कर रही हूँ। पिता! अब मैं अन्त समय में आपसे प्रार्थना करती हूँ, हाथ जोड़ कर प्रार्थना करती हूँ कि आप कृपा करके मुझे तथा मोहन को हृदय से क्षमा कर दीजिएगा। विशेषकर मोहन को, क्योंकि उसका इसमें कोई दोष नहीं है।

आपकी अभागिनी पुत्री,

मिस जॉन"

'असमान समाज'—अवध उपाध्याय

४—कथोपकथन-पद्धति

इस पद्धति के अनुसार कहानी-लेखक कथानक-रचना के लिए कथोपकथन का आश्रय लेता है। लेखक अपनी ओर से ऐतिहासिक रूप में वर्णन न कर पात्रों को सामने लाकर उनसे परस्पर वार्तालाप कराता है। इस प्रणाली और ऐतिहासिक पद्धति में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर है। एक में आदि से अन्त तक कथोपकथन ही कथावस्तु की रचना करता है, दूसरी में कथोपकथन का प्रयोग किया जाता है, पर लेखक भी वर्णन करता है। इस प्रकार ऐतिहासिक पद्धति मिश्रण है। हम यहाँ दोनों के भेद को स्पष्ट करने के लिए दो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं :—

(अ) ऐतिहासिक पद्धति

"विधवा होने पर भी जमुना की माता जसोदा ने जमुना को ससुराल नहीं भेजा। अपने पास ही रक्खा। जसोदा के कोई नहीं था। पति का स्वर्गवास पहले ही हो चुका था। आज छः वर्ष हुए, लड़का भी मर गया। इधर जमुना भी विधवा हो गई, इस कारण उसने उसे अपने पास रख के घर की चहल-पहल बनाए रखने की चेष्टा की। शहर में जसोदा के कई मकान थे, उन्हीं के किराए से उसका जीवन निर्वाह होता था। किराया कम नहीं था—यथेष्ट था। सूखा भोजन न करके दोनों समय अच्छा भोजन करने के लिए काफ़ी था। घर में जसोदा अकेली थी। साथ थी, केवल एक यही विधवा जमुना। माता की छाती बच्ची के लिए अब भी वैसी ही दूध-भरी थी। जमुना की अवस्था १७ साल की है। पति का स्वर्गवास हुए तीन वर्ष हो गए। सारा सुख सूखा हो गया। हृदय के उल्लास, उद्गार सदा के लिए हृदय में दब गए।

परसों चन्द्रग्रहण लगने वाला है। काशी में चन्द्र-ग्रहण का बड़ा माहात्म्य है! दूर-दूर से लोग गङ्गा-स्नान के लिए आते हैं। लाखों यात्रियों की भीड़ होती है। जसोदा का मकान गङ्गा-तट पर था। × × ×"

'परदेशी'—विश्वम्भरनाथ जिज्जा

(ब) कथोपकथन-पद्धति

"क्या १५) ही रुपए? इसमें महीना कैसे कटेगा?"

"सो मैं क्या बताऊँ, यह महीना तो इसी तरह काटना होगा। स्वामी जी ने यही दिया है।"

"सब तनख़्वाह ख़र्च हो गई? दो हज़ार रुपए!"

"मैं क्या जानूँ, जो अपने शरीर और आत्मा के स्वामी हैं, उन्हें अधिकार है।"

"पर बच्चों की गुज़र कैसे होगी?"

"जैसे स्वामी जी चाहेंगे।"

"मेरी धोती फट गई है।"

"अगले महीने मँगा लेंगे।"

देवी चुप हो गईं। रायसाहब ने देखा, उनकी पत्नी के हृदय में दर्द हुआ है, पर पतिव्रता उसे प्रगट करना नहीं चाहती। उन्होंने कहा—

"प्रिये! क्या तुम्हें दुःख हुआ?"

"नहीं स्वामी!"

"तुम सुस्त क्यों हो गईं?"

"यह मेरी मूर्खता है! मैं अभ्यास करके योग्य बनूँगी।"

"प्रिये! दरिद्रावस्था क्या बुरी है?"

"मैंने इसकी सच्चाई पर कभी विचार नहीं किया।"

"वह दरिद्रावस्था, जो सन्मार्ग पर चलने से हो, जो दुर्भाग्य का चिह्न न हो, जो पवित्र त्याग और गुरु-भक्ति के कारण हो।"

"स्वामी, वह दरिद्रता किसी भी स्त्री का भूषण हो सकती है।"

"क्या हमने तन, मन, धन, सभी गुरु जी को नहीं दे दिया?"

"सभी दे दिया।"

"और क्या यह हमने असत्पात्र में दान किया है?"

"कदापि नहीं!"

"क्या हम ठगे गए हैं?"

"नहीं स्वामी!"

"क्या हम आनन्द के भागी नहीं?"

"हम बड़भागी हैं, हमने सद्गुरु पाया है।"

"सद्गुरु"—आचार्य चतुरसेन शास्त्री

'परदेशी' कहानी में कथोपकथन का बिल्कुल प्रयोग नहीं हुआ है। कहानीकार ने ऐतिहासिक रूप में घटना और मनोभावों का वर्णन किया है। सद्गुरु में 'कथोपकथन' का प्राचुर्य है। इस कहानी में कथोपकथन ने कथानक-निर्माण में योग दिया है।

श्रीयुत प्रो० रामकुमार जी वर्मा ने अपने 'कहानी' शीर्षक निबन्ध में कहानी की उपर्युक्त पद्धतियों की विशिष्टताओं पर बड़ी उत्तमता से प्रकाश डाला है। आप लिखते हैं :—

"कहानी लिखने का साधारण ढङ्ग (ऐतिहासिक पद्धति) लेखन-शक्ति को बहुत स्वच्छन्दता दे देता है। उसमें विचार बहुत विशद रूप से प्रकाशित किए जा सकते हैं और घटनाओं का वर्णन बड़े स्वतन्त्र रूप से हो सकता है। कहानियों में जीवनी और पत्रों का ढङ्ग रोचकता बढ़ा कर पाठकों की सहानुभूति अपनी ओर कर लेती है। ऐसी रचना पाठकों के हृदय को अपने आप आकर पकड़ लेती है और पाठकों का मन बड़ी तेज़ी के साथ पात्रों और घटनाओं की ओर आकर्षित हो जाता है। किन्तु अन्तिम दोनों प्रकार के ढङ्गों में कुछ दोष अवश्य हैं। जीवनी के समान कहानियों में यह दोष आ सकता है कि सारी कहानी का ज्ञान एक मनुष्य में, जो 'मैं' रूप में लिखता है, न हो सके। एक पात्र, जिसके साथ कहानी-लेखक अपने को मिला देता है, कहानी के सभी तत्वों और अङ्गों पर समान रूप से प्रकाश डालने में असमर्थ हो जाता है। पत्र-रूप में कहानियों का यह दोष हो सकता है कि वे घटनाओं के रूप में बहुत शिथिलता डाल देती हैं। कथानक जिस वेग से बढ़ना चाहता है, उस वेग से वह इसलिए नहीं बढ़ पाता, क्योंकि उसे पूरी स्वतन्त्रता नहीं मिलती। जिस तरह तूफ़ान की लहर ज्वार के उतार में दब जाती है, उसी प्रकार घटनाओं का वेग पत्र-रूप में बढ़ने नहीं पाता। पत्र में तो जैसे कोई व्यक्ति किसी दूसरे व्यक्ति को लिख रहा है, यही पाया जा सकता है। वास्तविक घटनाओं का उतार-चढ़ाव आँखों के आगे नहीं आता, किन्तु पत्र-लेखक की लेखनी की नोक से टकरा कर गिर पड़ता है। पत्र-कहानी की कहानी में जीवन नहीं रहता, वह प्राणहीन होकर लेखनी के पीछे घसिटती चलती है।"*

कथानक-रचना के लिए लेखक को एक समस्या की आवश्यकता होती है। पर उसका समाधान प्रत्येक कहानी में आवश्यक नहीं है। सब घटनाओं को यथाक्रम इस प्रकार से शृङ्खलाबद्ध करना चाहिए, जिससे एक घटना दूसरी घटना के लिए मार्ग-दर्शिका का काम दे। कला-मर्मज्ञों की सम्मति है कि समस्या का समाधान या सङ्कट पर विजय-प्राप्ति कहानी के लिए परम आवश्यक है। समस्या का समाधान क्या वस्तु है, यह निम्नलिखित उदाहरण से स्पष्ट हो जायगा।

एक पुरुष, जो अपने जीवन में सदाचारी एवं धार्मिक रहा था, परिस्थिति के आलबाल में पड़ कर दिवालिया बन जाता है। वह चोरी करने में कोई बुराई नहीं समझता है। पहले अपने चचा की वस्तुएँ चुराता है; उन वस्तुओं को एक दिन, रात्रि में, दूकानदार के पास बेचने ले जाता है। दूकान पर जाकर उसकी मनोवृत्तियाँ और भी मलीन हो जाती हैं। एक अपराध दूसरे अपराध के लिए उत्तेजना देता है। उसके मन में दूकानदार को देख कर यह विचार उत्पन्न होता है कि यदि मैं उसकी हत्या कर दूँ तो मुझे अल्पकाल में, अल्प प्रयास से, पुष्कल धन मिल जायगा और उससे मैं अपनी आवश्यकताओं की भली-भाँति पूर्ति कर सकूँगा। वह ठीक ऐसा ही करता है—उसका विचार संसार की मूर्तिमान घटना बन जाता है। कुछ क्षणों में दूकानदार का शव भूमि पर पड़ा दिखलाई पड़ता है। अब घातक की अवस्था बड़ी दुविधामय हो जाती है। उसके मन में देवासुर-संग्राम होने लगता है। दैवी वृत्तियाँ उसके कार्य से घृणा प्रकट करती हैं और इस गुरुतर अपराध के अनुताप-स्वरूप आत्म-समर्पण का प्रस्ताव करती हैं। उधर आसुरी वृत्तियाँ उसके कार्य को सहानुभूति की दृष्टि से देखती हैं और उसे इस हत्या के लिए अन्य हत्याएँ करने की उत्तेजना देती हैं। वास्तव में घातक की यह दशा सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। यही ऐसी घटना है, जो मनुष्य को उत्थान या पतन की ओर ले जाती है। यह दशा घातक के लिए परिवर्तन-स्थल (Turning point) है। कहानी-लेखक के लिए यह दशा अपनी कला का कौशल प्रदर्शित करने के लिए है। 'कला के लिए कला' वाद का समर्थक अपनी कला का चमत्कार दिखलाने के लिए घातक को पतन की ओर ले जाने में तनिक भी आगा-पीछा न करेगा। परन्तु 'साहित्य में सदाचार' का पोषक कलाविद् ऐसी दशा में घातक के लिए उत्थान का मार्ग दर्शाने का प्रयास करेगा। वह सत्य के द्वारा आनन्द की सृष्टि करेगा।

* 'साहित्य-समालोचना' (साहित्य-मन्दिर दारागञ्ज, प्रयाग) पृ० ५४-५५

कलाकार के लिए यह एक समस्या है और इसका युक्तिपूर्ण 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' से समन्वित समाधान ही लेखक की कला है। हम इसके कुछ समाधान विषय के स्पष्टीकरण के लिए प्रस्तुत करते हैं :—

१—घातक के कानों में किसी के आने की आहट सुनाई पड़ती है ; वह एकदम सतर्क होकर भागने की चेष्टा करता है। दूकान से बाहर निकलते ही आगन्तुक (दूकानदार का पुत्र) उसे पकड़ कर पुलिस के हवाले कर देता है। अन्तिम फल प्राणदण्ड मिलता है।

२—घातक आगन्तुक व्यक्ति के पद-रव को सुन कर सचेत हो जाता है और अपने शस्त्र को आक्रमण करने के लिए सँभालता है। आगन्तुक के पदार्पण करने पर वह उसकी हत्या कर देता है। अब वह पुष्कल धन लेकर अपना मार्ग ग्रहण करता है।

३—जब आगन्तुक पदार्पण करता है, तो घातक की सात्विक वृत्तियाँ सजग हो जाती हैं ; वे मलिन आकांक्षाओं और विचारों को विनष्ट कर देती हैं। उसके मुख पर एक अनूठी मुस्कान दीख पड़ती है। उसका चेहरा प्रसन्न और नेत्रों से आत्मार्पण की भावना स्पष्ट भासित होती है। घातक इस समय अनुताप की वेदना से पीड़ित है। वह, यह कहते हुए कि हे भद्र पुरुष ! आपके पिता की हत्या का अपराधी मैं हूँ ; मुझे आप पुलिस के सुपुर्द कर दीजिए; आत्म-समर्पण करता है।

इस समस्या के ये तीन समाधान प्रस्तुत किए गए हैं; सम्भव है और भी समाधान हों। परन्तु हमारे उद्देश्य के स्पष्टीकरण के लिए इतना ही यथेष्ट है। हमारी राय में प्रथम दो समाधान निकृष्ट हैं ; अन्तिम ही सर्वोत्कृष्ट है। पहले दो समाधानों में आसुरी मनोवृत्तियों का नृत्य है, जो पतन का सूचक है। पर अन्तिम समाधान में सात्विक वृत्तियों का हृदय-स्पर्शी अभिनय है, जो मानव-हृदय को उत्थान की ओर ले जाने वाला है। इसमें आनन्द है और है वास्तविकता। एक ओर आदर्शवाद का पालन किया गया है, तो दूसरी ओर वास्तविकता का भी निर्वाह मिलता है। कलाकार के लिए भी इस समाधान में आनन्द और सौन्दर्य का उत्कृष्ट सामञ्जस्य है। शील-सौन्दर्य का जितना प्रभविष्णुता-गर्भित उत्कर्ष इसमें मिलता है, वह अन्य समाधानों में सम्भव नहीं है। इसीलिए यह तीसरा समाधान ही युक्तिसङ्गत और 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' से ओत-प्रोत है।

यहाँ तक हमने यह बताने की चेष्टा की है कि 'कथावस्तु' की उत्पत्ति का कारण एक मौलिक भाव होता है। परन्तु इस प्रकार की समस्याओं द्वारा भी 'कथावस्तु' रचना बड़ी सुन्दरता से हो सकती है। किसी समस्या के समाधान से कथावस्तु का विकास बड़ी उत्तमता से होता है। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि समाधान में अलौकिकता रहे। ऐसी अलौकिकता, जो अन्त में पाठकों को आश्चर्य-चकित कर सके। सारांश यह है कि समाधान ऐसे हों, जो इस जगत से तो सम्बन्ध रक्खें, परन्तु पाठकों की आशा और अनुमान के प्रतिकूल हों।

अब विचार यह करना है कि कहानी का आरम्भ किस प्रकार किया जाय। कहानी में भूमिका या प्रस्तावना के लिए स्थान नहीं होता, क्योंकि भूमिका कहानी के उद्देश्य के प्रतिकूल है। कहानी आरम्भ करने के विषय में कोई निर्दिष्ट नियम नहीं बनाए जा सकते। क्योंकि कहानी का आरम्भ लेखक के मनोभाव, शैली और कहानी की प्रकृति एवं परिस्थिति पर निर्भर है। यदि कहानी का आरम्भ पात्रों के द्वारा किया जाय, तो यह अभिप्रेत नहीं है कि पात्र का पूर्ण इतिहास लिख दिया जाय। कहानी का आरम्भ भिन्न-भिन्न प्रकार से किया जाता है। कभी कथोपकथन से कहानी शुरू कर दी जाती है, कभी दृश्य उपस्थित करके उसका आरम्भ किया जाता है। किसी घटना के वर्णन द्वारा, स्थिति के परिचय द्वारा एवं सिद्धान्त-वाक्य के साथ कहानी का आरम्भ होता है। श्रीयुत जयशङ्कर 'प्रसाद' ने 'प्रतिध्वनि' का आरम्भ इस वाक्य से किया है—"मनुष्य की चिता जल जाती है और बुझ भी जाती है, परन्तु उसकी छाती की जलन, द्वेष की ज्वाला, सम्भव है, उसके बाद भी धक्-धक् करती हुई जला करे।" जैसा कि ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, आरम्भ में किसी पात्र का परिचय बड़े कौशल से दिया जाना चाहिए। विस्तृत वर्णन कला के लिए दूषण है। श्री० प्रो० कैलाशनाथ भटनागर, एम० ए० की 'हेर-फेर' कहानी में पात्र-परिचय बड़ी सुन्दरता से दिया गया है :—

"सेठ कर्मचन्द कलकत्ते में एक प्रसिद्ध व्यापारी हैं। जाति के कुलीन ब्राह्मण हैं। इनके पुरुषार्थ से काम ख़ूब चल निकला है। लाखों का लेन-देन रहता है। शहर की भीड़-भाड़ से इन्हें घृणा है। शहर से बाहर एक विशाल भवन बना रक्खा है। उसी में बाग़-बग़ीचे, कोष-स्थान, अस्तबल आदि बना रक्खे हैं। सारे दिन अपने काम की धुन में लगे रहते हैं।"

इसमें कर्मचन्द की स्थिति, रुचि, स्वभाव, कर्मनिष्ठा, प्रकृति-प्रेम और पुरुषार्थ का जैसा उत्तम परिचय दिया गया है, वह कहानी की मर्यादा के अनुकूल ही हुआ है। परन्तु लेखक को कहानी के प्रारम्भ का विज्ञापन देने की आवश्यकता नहीं है। श्रीयुत ऋषभचरण जैन ने अपनी 'स्वर्ग की देवी' का आरम्भ जिस ढङ्ग से किया है, वह बड़ा कृत्रिम और अवाञ्छनीय है। यथा :—

"बंसीलाल-जैसी अनेक मिसालों के कारण मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि सार्वजनिक संस्थाओं का पदाधिकारी होना नैतिक चरित्र की उच्चता का सुबूत नहीं। मतलब यह है कि बंसीलाल नगर कॉङ्ग्रेस-कमिटी के प्रधान थे, और उनके जीवन की एक बहुत भयानक घटना का उल्लेख इस कहानी में होगा।"

इसके पश्चात् × × × ऐसे चिह्न लगा कर कहानी शुरू की गई है। 'मैं', जो इस विज्ञापन के प्रकाशक हैं, कहानी का पात्र नहीं है, यह बिलकुल स्पष्ट है। ऐसी स्थिति में यह "मैं" लेखक के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। लेखक को अपनी कहानी का इस प्रकार विज्ञापन देना उसके कौशल और चातुर्य को प्रकट नहीं करता।

कहानी का आरम्भ चाहे जिस प्रकार किया जाय, परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि वह अप्रासङ्गिक और अस्वाभाविक न हो। कहानी के प्रथम शब्द, प्रथम वाक्य और प्रथम पद कहानी की भावना का प्रकाशक होना चाहिए। कहने का निष्कर्ष यह है कि कहानी के प्रारम्भिक शब्दों में समस्त कहानी का भाव निहित होना चाहिए। श्री० प्रेमचन्द जी की 'अग्नि-समाधि' कहानी के प्रारम्भिक शब्द कितने अर्थ-गर्भित एवं भाव-सम्पन्न हैं। इसके साथ ही साथ यह ध्यान रखना चाहिए कि कहानी का आरम्भ उसकी तीव्रतम स्थिति से अधिक दूर न हो। प्रारम्भ कहानी के अत्यन्त मर्मस्पर्शी स्थल के निकट ही होना चाहिए। जहाँ इस नियम का पालन नहीं किया जाता, वहाँ पाठकों की रोचकता कम हो जाती है।

एक ओर जहाँ कहानी के मर्मस्पर्शी स्थल का ध्यान रक्खा जाय, वहाँ दूसरी ओर पाठकों के मनोभाव का भी ध्यान रखना चाहिए। श्री० गुलाबरत्न वाजपेयी की 'सौन्दर्य-पिपासा' कहानी में आरम्भ बड़ा सुन्दर और उत्कृष्ट हुआ है। उसमें पाठकों की रोचकता की वृद्धि करने के लिए लेखक ने बड़े कौशल से काम लिया है। देखिए—

"उदयसिंह राजगद्दी पर बैठेंगे। माधवपुर ख़ूब सजाया गया है। चारों ओर आनन्द की लहरें, नृत्य, सङ्गीत की सुरा ढल रही है।

नगर भर में घोषणा कर दी गई है—कल दोपहर से लेकर सन्ध्या तक महाराज कुमार पुरस्कार बाँटेंगे। जिसकी जो इच्छा हो, माँग ले। सभी की अभिलाषा पूरी हो जायगी।

दूसरे दिन समय के पहले ही महल के सामने स्त्री-पुरुषों की भीड़ लग गई। लोगों ने मुँह माँगी मुराद पाई। जय-जयकार से आकाश गूँज उठा।

सन्ध्या होने में अभी कुछ देर थी। महाराज कुमार थक गए। उन्होंने राजमहल में जाने की इच्छा प्रकट की। इसी समय—

आनन्दमयी भीड़ को चीरती हुई एक रमणी उनके सामने आकर खड़ी हो गई। उसका सम्पूर्ण शरीर काली चादर से ढका था।

"उदयसिंह !"—उसने कोमल स्वर में पुकारा।

सुधा-सी बरस पड़ी।

महाराज कुमार चौंक पड़े !

"मैं भी कुछ चाहती हूँ !"—उस रमणी ने कहा—"अभी सन्ध्या नहीं हुई है, आशा है मेरी प्रार्थना व्यर्थ नहीं जायगी।"

उदयसिंह मुस्कराने लगे—तुम क्या चाहती हो ?

"तुम्हें !"—रमणी ने चाह-भरे शब्दों में कहा।

"हमें ?" उदयसिंह आश्चर्य-चकित नयनों से उस रमणी की ओर देखने लगे। कुछ भी समझ में नहीं आया। वह सिर से पैर तक काली चादर से अपने को ढके थी। यदि महाराज कुमार कवित्व या मनोविज्ञान के ज्ञाता होते, तो वह अवश्य समझ जाते—इस समय रमणी मुस्करा रही है!

"सन्ध्या नहीं हुई, यह ठीक है।"—उदयसिंह ने कुछ सोच कर कहा—"मैंने कभी स्वयं दान की घोषणा नहीं की। मुझे छोड़ कर जो चाहे तुम ले सकती हो।"

रमणी खिलखिलाकर हँस पड़ी—"तुम भूलते हो।"

"क्या कहा?"—उदयसिंह की आँखों से चिनगारियाँ बरसने लगीं। क्रोध-कम्पित स्वर में बोले—"मूर्ख रमणी! चली जाओ यहाँ से, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ।"

"क्षमा?" रमणी और भी ज़ोर से हँस पड़ी।

"हाँ, क्षमा।" उदयसिंह ने कहा—"मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। यदि कोई दूसरा दिन होता, तो मैं तुम्हें जीते जी समुद्र में फेंकवा देता।"

रमणी ने मुँह पर से नक़ाब उलट दी—ओह! अपूर्व सुन्दरी है वह। महाराज कुमार उस रूप-सौन्दर्य पर मुग्ध हो गए। "कौन?" उत्तेजित होकर उन्होंने पूछा।

"एक सामान्या भिखारिणी।" रमणी क्रमशः अपने पैर पीछे हटाने लगी। महाराज आश्चर्य-सागर में डूबने-उतराने लगे।

वह उनकी आँखों से ओझल हो गई।

—'सौन्दर्य-पिपासा'

इतना विवेचन करने के बाद यह उल्लेख करने की आवश्यकता नहीं रह जाती कि कहानी का आदि, मध्य और अन्त धारावाहिक वर्णन द्वारा एक श्रृङ्खला में बद्ध होना चाहिए। इसके लिए परिष्कृत शैली विशेष सहायक हो सकती है। वर्णन जल की विमल धारा के समान होना चाहिए। उसका प्रवाह नियमित विधि के साथ एक निर्दिष्ट प्रभाव की ओर होना चाहिए। कहानी में वर्णन की मन्द या तीव्र गति उसकी प्रकृति पर निर्भर होती है। परन्तु यह ध्रुव नियम है कि प्रारम्भ सदैव मन्द गति से होना चाहिए। तीव्र गति की योजना तीव्रतम स्थिति के निकट होनी चाहिए। चरित्र-प्रधान कहानी में वर्णन की गति मन्द होती है। परन्तु घटना-प्रधान कहानी में, विशेषतः जटिल कहानी (Complication Story) में, तीव्र गति का प्रयोग अभिप्रेत है।

घटनाओं को श्रृङ्खलाबद्ध करने के लिए आवश्यक है कि कहानी में पात्रों और घटनाओं की संख्या कम से कम रक्खी जाय। लेखक को इस विषय में पूर्ण स्वतन्त्रता है। अपने कथानक को सुन्दर और उत्कृष्ट बनाने के लिए प्रयत्नशील होना चाहिए। घटना-प्रधान कहानी में समस्त घटनाओं को एक सूत्र में पिरो कर उसे एक अविराम घटना का रूप दे देना चाहिए। कहानी के मध्य में, घटनाओं में सामञ्जस्य लाने के विचार से, × × × इस प्रकार की तारिकाओं का प्रयोग लेखक के कौशल को प्रकट नहीं करता। यदि इनके बिना काम चल जावे तो बड़ा ही उत्तम है। कहानी में आश्चर्य और रोचकता का प्रयोग किया जाय; परन्तु इस प्रयोग में कृत्रिमता की दुर्गन्ध न आने पावे। इनका सन्निवेश स्वाभाविक रूप से हो जाना चाहिए। लेखक को चाहिए कि इन तत्वों के लाने में वह प्रयत्नशील न बने और न केवल इन्हीं का सन्निवेश करना अपना कर्त्तव्य बनावे। कहानी में प्रभावोत्पादक तीव्रतम स्थिति का प्रयोग कैसे करना चाहिए?

कथानक की दृष्टि से प्रभावोत्पादक तीव्रतम स्थिति की कुञ्जी क्या है? एक शब्द में इसका उत्तर है—आश्चर्य। कहानी में आश्चर्य-तत्व का समावेश करने के लिए निम्न-लिखित ढङ्ग सबसे अधिक प्रभावोत्पादक हैं—

१—पात्र से सर्वदा वही कार्य कराने चाहिए, जिनकी उससे आशा की जा सकती है, अथवा जिनके लिए वह सर्वथा योग्य है। परन्तु कार्यों में नवीनता और विचित्रता का ऐसा मिश्रण होना चाहिए कि जिससे उसके कार्य अपने ढङ्ग के प्रतीत हों। उनमें व्यक्तित्व हो, किसी के अनुकरण की गन्ध न आवे।

२—सङ्कट-समय में पात्र से सदैव ऐसा कार्य कराना चाहिए, जो उसकी और प्रत्येक पाठक की आशा या अनुमान के प्रतिकूल हो।*

तीव्रतम स्थिति के उपरान्त कहानी एक प्रकार से, समाप्त हो जाती है। परन्तु इसके पश्चात् भी पाठकों में कहानी का परिणाम जानने की उत्सुकता बनी रहती है, इसलिए उपसंहार रूप में कुछ लिखना पड़ता है। जब लेखक कहानी के परिणाम की खोज का भार पाठकों पर छोड़ देता है, तब कहानी का अन्त तीव्रतम स्थिति के साथ ही हो जाता है। परन्तु ऐसी भी कहानियाँ होती हैं, जिनमें उपसंहार रूप में कुछ लिखना आवश्यक

* देखिए 'सुधा' श्रावण १९८८ वि० में प्रकाशित मेरा लेख 'कहानी-लेखन-कला' पृ० ८२।

हो जाता है। इस विषय में प्रसिद्ध कहानी-लेखक मुन्शी कन्हैयालाल जी, एम० ए० ने 'कहानी कैसे लिखनी चाहिए' नामक अपनी पुस्तक में जो विचार व्यक्त किए हैं, वे मनन करने योग्य हैं :—

"कहानियाँ कई प्रकार से समाप्त की जा सकती हैं। आश्चर्यजनक कहानियों में पाठकों की दुविधा मिटाने के लिए समाप्ति भी अकस्मात् हो जानी चाहिए। इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि कहानी का अन्त चाहे जैसा आश्चर्यजनक और अकस्मात् हो, पर वह हो सम्भव। सामाजिक कहानियाँ तथा गल्पें सुखान्त हो सकती हैं, दार्शनिक तौर पर समाप्त हो सकती हैं, नवीन ढङ्ग से शिक्षापूर्ण हो सकती हैं या ऐसे रोचक ढङ्ग से समाप्त की जा सकती हैं कि पाठक का मन बाद में भी प्रफुल्लित रहे।

❁ ❁ ❁

यद्यपि परिणाम पहले से ही निश्चित कर लिया जाता है, किन्तु आरम्भ में पाठक से जितना अधिक छिपाया जाय, उतनी ही कहानी की उत्तमता बढ़ती है। कहानी की समस्याओं को पाठकों के सामने निपुणता से हल कर देने में ही लेखक की योग्यता समझी जाती है, और कहानी का सफल या असफल होना भी इसी पर निर्भर है।"

कहानी में, नाटक की भाँति, समयान्वय, स्थानान्वय एवं कार्यान्वय (Unities of time, place and action) का निर्वाह किया जाता है। कहानी में समयान्वय (Unity of time) के लिए कोई निर्दिष्ट नियम नहीं है। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि यथार्थ वर्णन में कम से कम समय लगे। कार्य के विषय में हमारा यह कथन नहीं है कि उसमें (कहानी में) व्यवधानों का प्रयोग न किया जाय। परन्तु कहानी के अन्तर्गत व्यवधान न्यून रक्खे जायँ। कहानी में स्थानान्वय का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक है। क्योंकि दृश्य-परिवर्तन के कारण कथावस्तु में अवाञ्छनीय जटिलता आ जाती है। सारांश यह है कि कथानक के विविध अङ्गों में सामञ्जस्य लाने के लिए कार्यान्वय का पालन पूर्णरीत्या किया जाय। इसके अभाव में कहानी का सारा सौन्दर्य नष्ट हो जायगा।

अन्त में, हमें यह स्वीकार है कि यदि उत्कृष्ट कथावस्तु की रचना में ये नियम बाधा उपस्थित करें, तो लेखक को पूर्ण स्वतन्त्रता है कि इन नियमों की उपेक्षा कर उसे अधिक रोचक और उत्कृष्ट बनावें।

卐 卐 卐

गीत

[श्री० योगेन्द्र झा]

मेरे प्राणों की वीणा पर गा दो कोमल सुन्दर-सा स्वर।

शीतल तरुतल, छाया कोमल
थर-थर नाचें सरसिज चल-दल
चञ्चल पल्लव, बूँदें ढलमल
ढालें आसव रह-रह भर-भर।

सरस-सुमन से सुषमा लेकर;
मदिर-प्रवाल तरी पर चढ़ कर
गुम्फित झंकृत-स्वर को ढक कर,
विजन-विपिन हो मुखरित मरमर।

कलरव-मुखरित हो गिरि-गह्वर,
विवश विश्व हो विह्वल सुखकर
स्पन्दित-कम्पित, पुलकित क्षण भर,
रजत ढालता हो शशिकर-कर!

सुन्दरी जासूस

[श्री० शिवनारायण टण्डन]
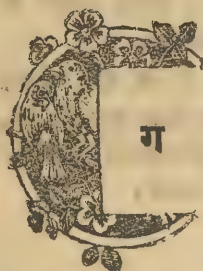
गत यूरोपीय महायुद्ध के समय माताहारी का नाम जासूसी दुनिया में बहुत मशहूर हो रहा था। उसके नाम से बड़े-बड़े राष्ट्र काँपते थे। जर्मन जासूसी-विभाग में उसका यथेष्ट मान था। उसने ऐसे-ऐसे काम किए थे, ऐसे-ऐसे भेद खोले थे कि जिसके कारण मित्र-राष्ट्रों को अपरिमित नुक़सान उठाना पड़ा था। जिस जोखम के काम को जर्मन जासूसी विभाग का बड़े से बड़ा होशियार आदमी न कर पाता, वह माताहारी के ज़िम्मे कर दिया जाता। माताहारी में कार्य-कुशलता और बुद्धिमत्ता के साथ अपार सौन्दर्य भी था।

कहते हैं, वैसी हसीन औरत सारे यूरोप में नहीं थी। वह बड़े-बड़े साम्राज्यों की राजधानियों में बड़ी शान से रहती, पानी की तरह रुपए बहाती, क़ीमती पोशाक पहनती और अपने रूप के बाज़ार में बड़े-बड़े अमीर-उमराओं, सिपह-सालारों और मनचले युवकों को बरबस घसीट लाती। पेरिस में उसके रूप की काफ़ी शुहरत थी। उस रूप की बदौलत वह बड़े गुप्त समाचार संग्रह कर लिया करती। कितनों ने उसकी मुहब्बत में पड़ कर अपने हाथों फाँसी लगाई और कितनों ने देश के नाम पर बेइज़्ज़ती और बेहुर्मती उठाई। उस वाराङ्गना ने अपने रूप के तरकश से समय-समय पर ऐसे अमोघ बाण छोड़े कि बड़ी-बड़ी शक्तियाँ तक घायल होकर अपङ्ग हो गईं। माताहारी के कारण कुछ नहीं तो क़रीब ७० हज़ार सिपाहियों की जानें मिट्टी में मिल गईं। फ्रान्स, इङ्गलैण्ड और इटली के बड़े-बड़े जासूस उसे अपने जाल में फँसाने गए, पर स्वयं ही उसके चङ्गुल में फँस गए।

२

नादा मेरिया उस सुन्दरी का नाम था! उसके लाल होठों में जैसा रस था, उसकी हरिणी सी बड़ी-बड़ी आँखों में वैसा ही मद था। मैं भी उस समय यौवन के राग में रञ्जित था। अवस्था तीस साल की थी, पर जँचता पचीस साल का था। अङ्ग-प्रत्यङ्ग सुडौल, सुन्दर और आकर्षक थे। सुन्दरियों के झुण्ड के झुण्ड मेरे चारों ओर मँडराया करते थे! रूपवती युवतियाँ मुझसे बात करने को उत्सुक रहती थीं। बाल-रूमों में परियाँ और अप्सराएँ मेरे साथ नाचने को उत्सुक रहती थीं। थोड़ी देर नाच लेने के बाद जब उन्हें अपने बाहुपाश में फाँस कर मैं चाँदनी रात में बाहर निकलता, तब उनका जी बाग़-बाग़ हो उठता, उनकी आँखों से अ सि और आसक्ति का फ़व्वारा छूटने लगता। मैं उस फ़व्वारे में बार-बार नहाता, और योंही अर्ध रात्रि के बाद तक प्रेम का

आदान-प्रदान हुआ करता। बहुधा सोचा करता कि हूरों के इस बिहिश्त से बढ़ कर भला कौन सा स्वर्ग होगा!

मैं रबर का व्यापारी हूँ। यदि आप रबर 'प्लाण्टरों' के नाम से परिचित हैं, तो समझ लीजिए कि पूर्वीय देशों में मेरा रबर का बहुत बड़ा 'प्लाण्टेशन' है। मैं स्कैण्डीनेविया का रहने वाला हूँ। अपना नाम मुझे याद नहीं, याद हो भी तो बताऊँगा नहीं, और आपको उससे कुछ सरोकार भी नहीं। आपका मतलब तो घटनाओं की जानकारी से है। वह सब विस्तार रूप से सुन लीजिए।

सन् १९१३ में कार्य-भार अपने सहकारियों को सौंप कर मैंने कुछ महीनों की छुट्टी ली। पेरिस से बढ़ कर दुनिया में छुट्टी मनाने को और कौन सी जगह होगी? बस वहीं—उसी परिस्तान में मेरी सवारी पहुँच गई।

शराब, सुन्दरी और सुरीली तानें मेरी चिर सङ्गिनियाँ थीं। नवयुवती सुन्दरियाँ तो मेरी सबसे ज़्यादा प्यार की चीज़ थीं। उन रूप की पुतलियों के साथ यौवन के खेल खेलने में मुझे बड़ी मस्ती, बड़ी ख़ुशी हासिल होती थी।

एक दिन रेस्टोराँ (होटल) में मैं अकेला बैठा काफ़ी पी रहा था। दो सलोने युवकों के मुखों से नादा मेरिया का नाम बार-बार सुनाई दिया। सुबह का वक़्त था, रेस्टोराँ में चारों ओर छबीलों और छबीलियों का ठाट जमा हुआ था। वे मेरिया के नाच और उसकी पतली कमर की ज्यों-ज्यों तारीफ़ करने लगे, मेरा मन उनकी बातें सुनने को उत्सुक होने लगा।

मैंने जो कुछ सुना, उससे पता चला कि वे दोनों युवक उसके रूप के दीवाने थे। उसकी ख़ूबसूरती, उसकी मोहिनी मूर्ति, उसके रेशमी बाल, उसकी चमकती हुई पेशानी और दाँतों की पंक्तियाँ, उसकी मदभरी आँखें, उसकी सुराहीदार गर्दन और उसके यौवन, सभी की वे जी खोल कर प्रशंसा कर रहे थे! मेरिया की रुपहली, सुनहली सितारों से सजी हुई पोशाक ने उनके दिलों को मोल ले लिया था।

उनकी बातें सुन-सुन कर मेरे नेत्र भी उस रूप की छटा देखने के लिए व्याकुल हो उठे!

उसी रात को पेरिस के एक प्रसिद्ध होटल में नादा मेरिया का नाच होने वाला था। अतएव मैंने भी उसे देखने का पक्का इरादा कर लिया।

नादा की इतनी प्रशंसा सुनने के बाद उसे देखने पर कहीं निराश न होना पड़े, इसके लिए मैं पूरी तरह तैयार होकर गया था! बहुत सी बातें दूर से सुनने में जितनी अच्छी लगती हैं; पास से देखने पर वे उतनी ही फीकी जँचने लगती हैं। लोग किसी के प्रेम में पड़ जाने पर उसकी तारीफ़ में ज़मीन-आसमान के कुलाबे मिला देते हैं। पर नहीं, होटल में पहुँचने पर मैंने जो कुछ देखा—वह अद्भुत तथा अनुपम था। उस ग़ज़ब के रूप का वास्तविक वर्णन कोई सुलेखक और कोई बड़े से बड़ा कवि भी नहीं कर सकता। मैंने जो कुछ नादा के बारे में रेस्टोराँ में सुना था, वह अक्षरशः सत्य था।

होटल के 'हॉल' में बड़ी सजावट थी। चमकते हुए पत्थरों की दीवारों में हीरे-जवाहरात जड़े थे, सुनहरी नङ्गी मूर्तियों से कोने-कोने सजे थे, फ़ारस के गुलगुले और क़ीमती ग़लीचों से हॉल-फ़र्श मढ़ा था। चारों ओर लाखों बत्तियों के झाड़ झलमल-झलमल कर रहे थे। ख़ुशबूदार पौधों और लवेण्डरों की गन्ध से कमरा महक रहा था। ख़ुशनुमा शराब की बोतलों के कार्क खोले जा रहे थे। ऐसा ऐश्वर्य और ऐशो-इशरत का सामान बड़े-बड़े महाराजों के महलों में भी देखने को नसीब न होगा, जितना वहाँ था।

लजीली-सजीली मेरिया रूप की रानी के समान, कमरे के बीच में खड़ी थी। आँखें चार होते ही मुस्करा दी और मेरे रोम-रोम पुलकित हो उठे—जैसे सारी देह में बिजली दौड़ गई।

रूप की उपमा चन्द्रमा से दी जाती है, पर मेरिया के मुखड़े पर सौ चन्द्रमा निछावर किए जा सकते थे! दूध सा उज्ज्वल रङ्ग, फूल की पँखड़ी सी कोमल त्वचा, सेब से रङ्ग के मुख-मण्डल पर भौंरे सी काली-काली अलकों का नज़्ज़ारा कलेजे को चाक-चाक किए देता था, उसकी मदभरी निगाहों में बड़ा नशा था, उसकी सलोनी मुस्कान में तबाह कर देने वाला जादू था। मैं तन-मन से उस पर फ़िदा हो गया।

उसकी पोशाक, आह! क्या पूछते हो, ऐसे हमरङ्ग के महीन रेशम की थी कि अङ्ग-अङ्ग की लुनाई झलक रही थी। कानों में हीरे के करणफूल, हाथों में

गजमुक्ताओं के बाजूबन्द, और गले में बेशक़ीमती गुलूबन्द ऐसे ख़ूबसूरत लगते थे कि कभी किसी मेनका पर भी न छजे होंगे। वे सारे सुन्दर और मूल्यवान सामान मेरिया की देह पर सज कर और भी अनमोल हो रहे थे।

और उसका नज़ाकत के साथ लचक-लचक कर नाचना मजमे में क़हर ढा रहा था। लोग उस स्वर्गीय दृश्य को देख कर मुग्ध थे। × × × बार-बार 'वन्स मोर !' 'वन्स मोर !' के ताँते लग रहे थे ! मैं भी अतृप्त, कम्पित और चकित होकर मेरिया को एकटक निहार रहा था। छमछम करती हुई, वह बाला जब एक ओर से दूसरी ओर निकल जाती, तो दर्शकों में एक तहलक़ा सा मच जाता था, एक मस्ती छा जाती थी, मानो सभी उसके अनुपम सौन्दर्य की मादकता में डूब जाते। सब दिलों में चाह थी, सबकी अभिलाषा थी—

अरे बहा दे अविरल धारा,
बूँद-बूँद का कौन सहारा।
मन भर जाय हिया उतरावे,
डूबे जग सारा का सारा।

आख़िर दिल की मुराद पूरी हुई। मेरे हुस्न ने मेरी बात रख ली। यों तो वहाँ बड़े-बड़े धनीमानी डटे थे, पर मेरिया ने मुझ नाचीज़ की क़द्र की। पास आई, बैठी, बोली। उसकी आवाज़ क्या थी, बाँसुरी की तान थी। मैंने पूरी कोशिश से उससे मुरौवत और मुहब्बत बढ़ाई। कुछ दिनों तक उसके पास रहने का सौभाग्य भी प्राप्त किया। बाद में कार्यवश मुझे एशिया चला आना पड़ा। सोचा कि बस मेरिया से यही आख़िरी मुलाक़ात होगी। इसके कुछ दिन बाद ही जर्मन-युद्ध छिड़ गया। मित्र-राष्ट्रों को सङ्कट में पड़ा देख, युद्ध में कुछ सेवा करने की इच्छा हुई। मैंने अपना सारा कारोबार बेच डाला और अपनी सारी शक्ति अङ्गरेज़ी जासूस-विभाग को सौंप दी।

३

जब मैं अपना काम पूरा करके रूस से लौटा, तो मेरे चीफ़ ने मुझे जासूसी विभाग के सबसे बड़े अफ़सर के सामने पेश किया। उन्होंने मेरी सफलता पर मुझे बधाई दी। यह वह व्यक्ति था, जिसके पास युद्ध का छोटे से छोटा और बड़े से बड़ा सारा भेद मौजूद था। मैं कुछ देर के लिए सकपका गया। उसने कहना शुरू किया :—

"मेरी इच्छा तुमको एक ज़रूरी काम सौंपने की है, जो शायद तुम्हें न भी पसन्द आवे। पर मुझे आशा है, कि कर्तव्य समझ कर तुम उसे अपने हाथों में ले लोगे। सुनो, तटस्थ देशों में, सम्भवतः इस समय स्पेन में उसका अड्डा है ! वह एक स्त्री जासूस है, उसकी अपूर्व सुन्दरता और होशियारी ने मित्र-राष्ट्रों को परेशान कर रक्खा है। हम सब उसके मारे आज़िज़ आ गए हैं, जिसे उसके पीछे लगाते हैं, वही उसके जाल में फँस कर लौट कर नहीं आता। मैं चाहता हूँ कि तुम जाओ, उसको खोजो और उसे अपने प्रेम-जाल में फँसा लो। तुम जितने ख़ूबसूरत और समझदार हो, उसके देखते हुए मैं यह असम्भव नहीं समझता कि तुम असफल रहोगे। आख़िर वह स्त्री है, तुम्हारे जैसे कामदेव की बंसी में उसका फँस जाना क्या कठिन है ? मैं चाहता हूँ कि जिस मोहन अस्त्र के प्रयोग से उसने सैकड़ों को चौपट किया है, उसी हथियार से तुम उसको शिकस्त दो। गत दो वर्षों में उस सुन्दरी ने हमारे मित्र फ़्रान्स को अपार हानि पहुँचाई है, मैं चाहता हूँ कि तुम उसे और ज़्यादा नुक़सान पहुँचाने का मौक़ा न दो। बोलो, क्या तुम इस काम को कर सकते हो ?"

मैंने सर हिला कर स्वीकृति दे दी। क्या करता, कर्तव्य के नाते हुक्म की पाबन्दी करनी ही पड़ेगी।

जनरल ने ख़ुश होकर शाबासी दी, फिर कहा—देखो, इस बात को भूल न जाना कि वह महिला अनन्य सुन्दरी और अपूर्व गुण वाली है। मैंने तुमको इसलिए इस काम पर नियुक्त किया है कि तुम्हें इन सब बातों का ख़ासा तजरबा है। तुम्हारी भूतकाल की कार्यवाही इस बात को बतला रही है कि तुमने अपने यौवन-काल में मन के उथल-पुथल का ख़ूब अनुभव कर लिया है। अब तुम्हारे मन में आसक्ति नहीं रहनी चाहिए, तुम्हें उसके लासे में नहीं फँसना चाहिए। मैं समझता हूँ कि वह भेष बदलती रहती है, नाम भी बदलती रहती है, पर उसका नाम नादा मेरिया है। बाक़ी सारी बातें और उसका फ़ोटो तुम्हें इस बड़े लिफ़ाफ़े के अन्दर मिलेगा।

जनरल ने मेरे हाथों में एक बड़ा सा सील-मुहर किया हुआ लिफ़ाफ़ा रख दिया, उसे लेकर मैंने सलाम

किया और अपने कमरे में चला आया। यदि इस मेरिया को मैं अपने जाल में फाँस लाया तो फ़ौरन उसे मौत की सज़ा का हुक्म सुनाया जायगा, यह सोच कर मेरा दिल काँप गया। यह वही मेरिया थी, जिसके रूप पर मैं पागल हो चुका था। पर क्या करता, कर्तव्य के आगे सर झुकाना ही पड़ेगा।

आख़िर, दूसरे दिन मैं हेड क्वार्टर से चल पड़ा और सीधे स्पेन की राजधानी मैड्रिड पहुँचा। वहाँ मैंने मेरिया को खोज निकाला! मेरिया भेष बदले हुए थी, मैं भी भेष बदले हुए था; पर उसकी सी सुन्दरी को ढूँढ़ निकालना कुछ मुश्किल नहीं था। मुझे कुछ दिनों तक उसके पास रह चुकने के कारण उसकी एक आदत का पता था। वह सिगरेट पीती जाती थी और पहली उँगली से उसकी राख एक ख़ास तर्ज़ से हटाती जाती थी। अतएव उसे पहचानने में मुझे विशेष देर न लगी। वह एक बहुत बड़े ठाट-बाट वाले शाही होटल में ठहरी थी। मैंने भी उसी होटल में पहुँच कर उसी के कमरों के पास में एक कमरा भाड़े पर ले लिया। मेरिया ने अपना नाम बदल कर मिसेज़ वान हिडसन रख छोड़ा था। होटल के ख़ानसामाओं और नौकरों को दो-चार दिन में ख़ूब इनाम-इकराम देकर जब मैंने उन्हें अपने वश में कर लिया, तब मैंने उनसे बतला दिया कि मैं मिसेज़ वान को तहेदिल से चाहता हूँ। बस दूसरे दिन से मेरी डिनर टेबिल मिसेज़ के बराबर ही लगने लगी। पहले ही दिन आँखें चार होते ही मेरिया मुझे पहचान गई कि यह मेरे रूप का प्रेमी यहाँ आन पहुँचा है। वह मुस्कराई। फिर तो हम दोनों की मुहब्बत बढ़ने लगी। मैंने यह बात उस पर कभी नहीं ज़ाहिर होने दी कि मैं उसे पहचानता हूँ और इसी भ्रम में वह भी अन्त तक रही। मैं उसे मोटर पर सैर कराने ले जाने लगा। थिएटर में, डिनर के समय, घोड़दौड़ में—सभी जगह साथ ही साथ रहने लगा। मेरिया को मेरे साथ रहना पसन्द ही था। मैं उसकी ख़ातिर से पानी की तरह पैसे बहाता था; उसका एक अधेला कभी ख़र्च नहीं होने देता था। वह मुझे अपनी रूप-शिखा का पतङ्ग समझ कर प्यार की दृष्टि से देखती थी, और प्यार करने का मौक़ा भी देती थी। पर प्रश्न प्यार और मुहब्बत का नहीं था, कर्त्तव्य अहर्निशि मेरी आँखों के सामने खड़ा रहता था कि किस प्रयत्न और किस तिकड़म से मैं सुन्दरी मेरिया को स्पेन से बाहर मित्र-राष्ट्रों के देश में ले जा सकूँगा। इस समस्या को एक दिन मेरिया ने स्वयं ही सुलझा दिया।

४

स्पेन की राजधानी मैड्रिड संसार के वैभवशाली नगरों में से एक है। मैड्रिड के जिस होटल में हम लोग ठहरे हुए थे, वह भी बड़ा सुन्दर और शानदार है। ठीक राजधानी के अनुरूप ही मैजिस्टिक होटल की इमारत भी है। जहाँ देश-विदेशों के सुन्दर धनी स्त्री-पुरुषों के आते-जाते रहने के कारण सदा देवराज की सभा सी लगी रहती है!

वे भी कैसे सोने के दिन थे, जब हम दोनों हाथ में हाथ डाले, पार्कों, लॉनों और बग़ीचों में टहला करते थे। कभी लताओं के झुरमुट में जाकर विश्राम ले लेते, कभी पहाड़ियों के अञ्चल में जाकर अपने जीवन को कृतार्थ करते। न कोई देखने वाला था, न कोई सुनने वाला। ख़र्च बेरोक-टोक होता था। सचमुच हम दोनों के लिए उन दिनों सारा संसार आनन्द में डूबा हुआ था।

पर कर्तव्य भी भूत बन कर पीछे पड़ा था। जब युद्ध के मैदान में चलती हुई तोपों और गिरती हुई लाशों का ध्यान आता और यह ख़याल आता कि इस भीषण देवासुर-संग्राम में मोहनी मेरिया का क़ातिल हाथ भी काम कर रहा है, तो दिल पर ऐसी चोट लगती, जिससे सँभलना मुश्किल हो जाता। मैं बराबर प्रेम के सागर में बहते हुए या बहने का ढङ्ग बनाए हुए भी, उस नारी को मैड्रिड से बाहर ले जाने की कोशिश में था।

मेरिया मुझ पर विश्वास करने लगी थी। अपने आशिक़ को चाहते हैं सभी, उसने चाहा तो क्या बुराई की। एक दिन शाम के समय अठखेलियाँ करते हुए वह बोली—क्या तुम मुझे हॉलैण्ड का पासपोर्ट दिला दोगे प्यारे! हॉलैण्ड में मेरी लड़की है, कितने दिनों से उससे मिली नहीं हूँ, उसके पास कुछ दिन ठहरूँगी। इसका प्रबन्ध कर दो तो बड़ी अहसानमन्द होऊँ।

मैं समझ गया कि हॉलैण्ड जाने से उसको क्या मतलब है। हॉलैण्ड उन दिनों षड्यन्त्रों का अड्डा था।

मेरिया को भी वहाँ ज़रूर ही किसी आवश्यक जासूसी काम से जाना था। वह जाने के लिए जिस तरह छटपटा रही थी, उससे पता चलता था कि बात कोई सङ्गीन थी। मैंने पासपोर्ट के लिए कोशिश करने का वादा कर लिया।

पासपोर्ट मिलना कौन कठिन बात थी? मेरी सरकारी 'पोज़ीशन' ने मामला सरलतापूर्वक हल कर दिया।

अब मुझे मौक़ा मिला। मैंने अपना पार्ट खेला। उससे कहा कि पासपोर्ट मिलने में बड़ी कठिनाइयाँ हैं। हाँ, यदि तुम मेरे साथ मेरी बीबी बन कर चलो, तो वे दिक़्क़तें कुछ अंशों में दूर हो सकती हैं।

वह ज़रा सा मुस्कराई, बिल्कुल बिजली सी मुस्कान थी, ज़रा सा शरमाई और शरमा कर गुलाब की कली की तरह खिल गई। मैंने सब समझ लिया कि उसको इसमें भी कोई आपत्ति न थी। बात बन गई। वह मेरी प्रेमिका की तरह तो रहती ही थी। अब ब्याही पत्नी की तरह रहने लगी। मैंने उससे बतला दिया कि सीधे रास्ते से युद्ध के कारण यात्रा न हो सकेगी। हम लोगों को इङ्गलैण्ड होकर जाना पड़ेगा। मेरिया मुझ पर हर तरह से भरोसा करने लगी थी, जहाँ जाता वहाँ जाने को तैयार थी।

कमरी भींग कर भारी हो गई थी। यद्यपि मेरिया मुझे पति का जैसा प्यार नहीं करती थी, तो भी वह प्रेमोन्मत्त ज़रूर थी। उसी उन्मत्तावस्था ने उसकी समझ और उसके दिल पर मोहनी डाल रक्खी थी।

जब चलने के दिन क़रीब आए, तब वह बड़े हर्ष और फ़ख़ से सुहागरात मनाने वाली यात्रा की याद करने लगी और जब-जब मुझे वह अपनी स्वाभाविक चुलबुलाहट से उन आने वाली रातों की ख़ुशियाँ सुनाती, तब मेरा जी पानी-पानी हो जाता। सोचता, हा भगवान! जिस रति सी बाला के साथ इतना आनन्द किया है, उसके साथ क्योंकर दग़ा कर सकूँगा।

वह मेरे प्रति बहुत कृतज्ञ थी, पासपोर्ट का इन्तज़ाम कर देने के लिए मेरी बहुत ही एहसानमन्द थी।

एक दिन मेरिया ने मौत की गाड़ी (Train of Death) पर चढ़ कर मुझ क़ातिल प्रेमी के साथ जीवन की आख़िरी यात्रा शुरू की। इन दिनों वह अपने दिल की बहुत सी बातें साफ़-साफ़ कह डालती थी। वह दरअसल इस यात्रा को अपनी 'सुहागरात की यात्रा' (Honey-moon Trip) समझ रही थी।

एक दिन हम दोनों जहाज़ के डेक पर खड़े थे। चाँदनी रात थी। समुद्र की लहरें ऊँची-ऊँची उठ कर कभी चन्द्रमा और कभी चन्द्रमा से भी प्यारे मेरिया के मुखड़े को चूमने का उपक्रम कर रही थीं। उस रात, उस सुहावनी बेला में, उसका यौवन और रूप अपार समुद्र-राशि की तरह उमड़ रहा था। उसने मुग्ध दृष्टि से एक बार मेरी ओर देख कर मेरे गले में अपनी गोरी-गोरी बाँहें डाल कर, मेरे गालों को चूम लिया। अपूर्व रूप ने मुझे उन्मत्त बना दिया था। मेरे कान में कू करके बड़े मीठे ललित शब्दों में उसने कहा—प्राणप्रिय, इतने दिनों तुम्हारे साथ रह कर जो आनन्द लूटा है, वह कभी नहीं भूल सकता। मैड्रिड के उस होटल का, उन पार्कों का, और उन थियेटरों का चप्पा-चप्पा ज़िन्दगी भर याद रहेगा।

मैं नहीं जानता कि मैंने क्या जवाब दिया। मुझे याद नहीं कि मैं क्या बोला। शायद मुस्कराहट के सिवा ख़ामोशी ही अधिक अख़्तयार किए था।

"तुम उदास क्यों दीखते हो मेरे प्यारे! शायद समुद्र की सर्द हवा से सर्दिया गए हो। चलो, मेरे साथ कैबिन में चलो।"—इतना कह कर, मेरी अँगुली पकड़ कर वह बड़े प्यार से मुझे शयनागार में ले गई। उसकी बड़ी-बड़ी आँखों से मुहब्बत की मदिरा छलक रही थी।

मेरिया, जिसके नाम की पेरिस में शुहरत थी, जिसकी ख़ूबसूरती के सामने दुनिया की सारी सुन्दरियाँ शरमाती थीं, मेरे गले में हाथ डाले बैठी थी। मेरी कितनी बड़ी ख़ुशक़िस्मती थी कि वह नादा, जिससे बोलने के लिए, जिसे अपने पास बिठाने के लिए बड़े-बड़े अमीर और धनकुबेर तक तरसते थे, वह मेरे गले का हार हो रही थी। प्यार के दिन कैसे होते हैं, उसके वास्तविक अर्थ हमने उन्हीं दिनों समझे थे!

मैं नहीं कह सकता कि ज्यों-ज्यों जहाज़ आगे बढ़ता गया, त्यों-त्यों मेरिया का रुख़ मेरी तरफ़ कितना प्रिय होता गया। उसका बर्ताव अत्यन्त सरल और निष्कपट था; बालकों सा कोमल था। थोड़े में इतना

क्यों न कह दूँ कि उसने अपने को सर्वथा मेरे हाथों में सौंप दिया था। पाठक, उस समय की मेरी स्थिति का यदि अन्दाज़ा कर सकें तो उनका जी सिहर उठेगा।

उसने सुहागरात की तैयारी में बेशक़ीमती फ़्राक और साड़ियाँ ख़रीदी थीं, जिन्हें वह रोज़ बड़े चाव से मेरे ख़ातिर बदलती रहती। जहाज़ भर की निगाहें मेरी मेरिया पर लगी रहती थीं। लेकिन—लेकिन मेरी आँखें तो इङ्गलैण्ड के समुद्र-तट की तलाश में थीं। कर्तव्य विवश कर रहा था। नहीं तो नादा को अहर्निशि देखते रहने से बढ़ कर सुख शायद मुझे स्वर्ग में भी नहीं प्राप्त होता। बिलकुल दिल और दिमाग़ का तमाशा चल रहा था। मुझे सोते और जागते मेरिया का ही ध्यान रहता था।

बार-बार विचार होता कि चलो हटो, इस दुनिया से किनारा कस लो। ऐसी अद्भुत स्त्री को इसके दुश्मनों के चङ्गुल में मत फँसाओ। चाहे देश के दुश्मन और नमकहराम भले ही क़रार दिए जाओ, पर इस मोहिनी को ज़रूर बचाओ। ऐसे ही ऐसे अजीबो-ग़रीब विचार दिल में कश्मकश पैदा किया करते थे। कई बार सोचा कि क्यों न समुद्र के अथाह नीले तल में पैठ कर सब झगड़ा ही निबटा दूँ! हाय! मेरिया को कैसे धोखा दूँ।

कई दिनों के बाद, मुझमें पूरा विश्वास करके वह मुझे अपनी जीवन-कथा सुनाने लगी। इस ख़ुलासा तरीक़े से उसने मुझे कभी भी अपनी पूर्व-काल की हरकतें न बतलाई थीं। उसकी मरज़ी थी कि इङ्गलैण्ड पहुँचने पर भी हम लोगों का सुखमय सम्बन्ध न विच्छेद हो और जीवन की धारा बेरोक-टोक प्रेम के अनन्त सरोवर की ओर बहती रहे।

एक दिन दोपहर के समय निहायत बढ़िया पोशाक पहने हुए और शैम्पेन की कप की लाली गालों पर धारण किए हुए, आँखों में आँखें डाल कर वह बोली—मेरे प्यारे, मुझे और तुम्हें इस युद्ध से क्या सरोकार। इन बड़े-बड़ों की लड़ाई में जो कुछ धन-दौलत इकट्ठी हो सके, हम लोगों को कर लेनी चाहिए। एक की बात खोज कर दूसरे को बतला देना और उससे इनाम की बड़ी-बड़ी रक़में लेना, भला इसमें क्या हर्ज है। हम दोनों को क्यों न इस शीघ्र ही धनवान बना देने वाले व्यापार में लग जाना चाहिए?

मैंने कहा—"ठीक तो है, इसमें कौन सी बुराई है।" फिर तो वह एकदम खुल पड़ी और उसने बड़े तपाक से अपने काले कारनामे बयान किए कि किस तरह उसने फ़्रान्सीसी और अङ्गरेज़ी सेना के अफ़सरों को अपने रूप के जाल में फँसा कर उनके बड़े-बड़े भेद जाने और उन्हें जर्मन-सरकार के हाथों बेच कर बेशक़ीमती इनाम हासिल किए। मेरिया ने बतलाया कि उसके कितने ही बरसाती प्रेमी फाँसी लगा कर और सङ्खिया खाकर मरने को मजबूर हुए। उसके मुख से इन शब्दों के निकलते समय मैंने देखा कि उसके होठ निर्दयता की हँसी हँस रहे थे। उसके मन के भाव कितने मलीन और कितने क्रूर थे। यह औरत कैसी ज़हर की बुझी हुई है, जो इतनी क्रूरता से की हुई प्रेमियों की हत्या के वृत्तान्त भी इसको विचलित नहीं कर सकते! मुझे विश्वास हो गया कि पैसे के लिए यह औरत सब कुछ कर सकती है। न इसके दिल है, न इसके दर्द है, न इसके माया है, न इसके ममता है। ईश्वर ने इसे इतना सलोना, इतना सुहावना चेहरा देकर इतना कलुषित दिल क्यों दिया है। कहते हैं कि प्राणी का चरित्र उसके मुखड़े का प्रतिबिम्ब है, पर सुन्दरी मेरिया का चरित्र तो इसके सर्वथा प्रतिकूल है।

उसने कहा कि एक बीस साल का अतीव सुन्दर छोकड़ा पारसाल मुझे पेरिस में मिला था। उसका पिता सेना का उच्च अधिकारी था। वह भी पिता के साथ फ़ौज में काम करता था। उसके द्वारा मुझे बड़ी-बड़ी पेचीदा बातें मालूम पड़ीं। उस समय मैंने पेरिस में एक प्रेम का घोंसला बनाया और हफ़्तों तक उस नन्हें से प्यारे पक्षी को पाला। बड़ी आसानी से मैं जो कुछ चाहती थी, सब मालूम पड़ गया। बाद में मैं वहाँ से कूच कर बर्लिन पहुँची और उन ज़रूरी समाचारों को जर्मन-सरकार के हाथ बेच बहुत रुपया पाया। उस समाचार से फ़्रान्स की सेना का बड़ा भारी अनहित हुआ, हज़ारों फ़्रान्सीसी सिपाही जर्मन बरकन्दाज़ों द्वारा दूसरी ही रात को, जब वे अचेतन अवस्था में पड़े थे, अचानक उड़ा दिए गए! वह नौजवान ज़हर खाकर मर गया, उसी शरम के मारे उसके पिता ने भी फाँसी लगा कर जहन्नुम का रास्ता लिया। उस नौजवान की माँ पागल हो गई। दो महीनों के बाद सुना, शहर के पागल-

ख़ाने में उसकी दुर्दशा के साथ मृत्यु हो गई × × × नादा यह सब कह-कह कर हँस रही थी।

ओफ़! साँपिन तूने घर के घर ख़ाक में मिला दिए; जीते-जागते, फलने-फूलने वाले फूल अकाल ही में मसल डाले।

ये सब काम इसने अपनी मीठी ज़बान और उन गोरे हाथों से किए, जो देखने में इतने सुन्दर-सुडौल और ऐसे पापहीन लगते हैं। इन दास्तानों ने मेरे पिघलते हुए दिल को कड़ा कर दिया। मैं बिल्कुल फ़ौलाद बन कर अपने काम को पूरा करने, इस ख़ूबसूरत, पर ख़तरनाक औरत को जाल में फाँसने के लिए जी-जान से कटिबद्ध हो गया। मैं उससे अब भी वैसे ही मिलता था, वैसे ही प्यार से बोलता था, वैसे ही चूमता था और वैसे ही कमर में हाथ डाल कर चलता था, पर उसके रूप का नशा मेरे ऊपर से उतर चुका था, मैं अन्दर ही अन्दर इस मनोहारिणी मेनका से घृणा करता था!

५

जहाज़ दूसरे दिन इङ्गलैण्ड पहुँचने वाला था! बिस्के की खाड़ी को हम लोग पार कर चुके थे। इस समुद्र में बड़े-बड़े तूफ़ान आए। कई बार सोचने का समय आया कि चलो, जहाज़ डूबते ही दुनिया का झञ्झट दूर हो जायगा। पर जहाज़ सारे आक्रमणों से बच कर सफलतापूर्वक निकल गया। मानो मेरिया का आख़िरी हिसाब-किताब मित्र-राष्ट्रों की अदालत में होना ज़रूरी था।

मैं तैयार होने लगा। मैंने जहाज़ पर की आख़िरी जाँच-पड़ताल और देखभाल शुरू की। जिस जाल में इस ख़तरनाक सुन्दरी को फँसाने का मन्सूबा बाँध रक्खा था, उसके सारे कल-पुर्ज़े दुरुस्त हैं या नहीं, यह मुआयना करना बहुत ज़रूरी था।

इसी ख़याल से मैंने प्रोत्साहन के साथ उसका परिचय जहाज़ के एक सुन्दर युवक के साथ करा दिया, जो, जैसा कि मैं जानता था, और नादा भी जानती थी, इङ्गलैण्ड के जासूसी-विभाग में नौकर था। उस दिन सायङ्काल ही से मैंने तबियत ख़राब होने का बहाना किया और यह कहते हुए कि मेरे सर में बड़ा दर्द है, मुझे दो-तीन घण्टे तक शान्ति से पड़ा रहने दिया जाय, मैं सोने वाले कमरे में चला गया।

वह छोकड़ा और मेरिया साथ ही साथ रहे। मुझे यह देख कर बड़ा आश्चर्य हुआ कि ऐसी होशियार औरत ने कुछ ही घण्टों के मेल-मिलाप में अपने को उस लौंडे के हाथ में सौंप दिया, यह जानते हुए भी कि मैं, उसका प्रेमी, उसी जहाज़ पर हूँ। बात यह थी कि वह मुझे थोड़ा बेवक़ूफ़ समझती थी और उसने क्षण भर के लिए भी यह कभी न सोचा कि मैं कौन था, कहाँ से और किस लिए उसके पास आकर अपना सब कुछ लुटा रहा था।

मेरी आँखों ने छिपे-छिपे देखा कि मेरिया उस छरहरे मनोहर नौजवान के साथ डेक के एक कोने में गई। प्रेमालाप के बाद उनकी जोड़ी युवक के कमरे में गई, जहाँ युवक ने मेरिया की शोभा पर मोहित हो सब कुछ निसार कर दिया! मैं अपने सोने के कमरे में चला गया।

कुछ मिनट तक इन्तज़ार कर लेने पर कि कोई आता तो नहीं है, मैंने अन्दर से ताला बन्द कर दिया और अपना काम शुरू किया।

बहुत सी मेल की चाभियाँ गुप्त रूप से मैंने अपने पास एक गुच्छे में पिरो रक्खी थीं, जिनके ज़रिए से मैंने नादा का सन्दूक़ खोल डाला और उसकी प्रत्येक चीज़ की जाँच-पड़ताल कर ली।

पहली चीज़ जो मुझे मिली और जिसने मुझे आश्चर्य में डाल दिया, मेरिया की लड़की की बहुत ही ख़ूबसूरत तस्वीर थी। लड़की कम से कम सोलह-सत्रह साल की अपूर्व लावण्यवती थी। उसी दिन मैंने समझा कि मेरिया की अवस्था मेरे अन्दाज़ से कहीं ज़्यादा है, पर वह बेहद कमासन जँचती थी। स्वास्थ्य और सौन्दर्य के साथ इतने दुराचार और अत्याचार करते रहने पर भी वह कितनी छोटी और कितनी हसीन लगती थी—यह कौतूहल की बात थी।

जो काग़ज़ात और मिस्लें, चिट्ठियाँ और उनके जवाब मैंने पाए, उनसे मेरा ध्यान बहुत मज़बूत हो गया कि नादा मेरिया उससे कहीं बढ़ कर चालाक, ख़तरनाक और हिंसक स्त्री थी, जैसा कि मैंने सोचा था। उन काग़ज़ातों ने मेरे रहे-सहे कोमल विचारों को भी हवा कर दिया।

सन्दूक़ के आख़िरी ख़ाने में एक छोटा सा, बढ़िया अटैची केस रक्खा हुआ था। उसमें बड़ी विचित्र-विचित्र

वस्तुओं का संग्रह था। पोटैशियम साइनाइड, क्लोरोफ़ार्म, कोकीन, ज़हरीला पाउडर और एक सबसे भयङ्कर भरा हुआ पिस्तौल था।

बिना क्षण भर का विलम्ब किए मैंने पोटैशियम साइनाइड और कोकीन आदि ज़हरों को फेंक कर उनके स्थान पर सादा पाउडर रख दिया। फिर पिस्तौल के टोंटे से गोलियाँ निकाल, बारूद झाड़, ज्यों का त्यों उन्हें लगा दिया।

इस आख़िरी बचत की सूरत से प्यारी मेरिया को महरूम करते समय मुझे अफ़सोस ही हुआ। अच्छा होता कि वह अपने ही हाथों गोली मार कर मर जाती, बनिस्बत इसके कि उसे फ़ौजी सिपाहियों की दुनली का शिकार होना पड़ता। आख़िर इतने दिन तक साथ रहने से उसके सङ्ग इतना सुख उठाने से, मेरिया के सम्बन्ध में मृदु भावों का सञ्चरित हो जाना क्या असम्भव था। पर क्या करता, कर्तव्य का पालन तो करना ही था।

जब नादा कैबिन में वापस आई, मैं सारे सामानों को ज्यों का त्यों रख आराम से बिस्तर पर लेट चुका था। दरवाज़े का ताला भी खोल दिया था। मेरिया मेरे पास आकर बैठ गई और सर पर हाथ फेरते हुए तबियत का हाल पूछने लगी। "चन्द घण्टे आराम करने से, प्यारी मेरिया! सर का दर्द बहुत कुछ ठीक है।" सुन्दरी को सन्तोष हो गया।

वह झुकी, झुक कर उसने एक चुम्मी ली। रेशमी पोशाक उतारी, टोपी खूँटी पर टाँगी और आकर मेरी बाईं ओर बड़े प्यार से लेट रही। मेरिया के साथ वह आख़िरी रात थी! रस और राग, आसक्ति और अनुराग, अभिलाषा और प्यार की वह अन्तिम घड़ियाँ थीं। मुझे अपार मानसिक वेदना हो रही थी और उस वक्त मुझे बहुत ख़ुशी हुई, जब उगते हुए सूर्य की लाली मेरे कमरे में आई। नादा अब भी सो रही थी। रात की थकान की ख़ुमारी उतार रही थी। उसे पता नहीं था कि अब अन्त इतना समीप है; वह प्रकृति का खिलौना एक बालक की तरह गहरी निद्रा में पड़ी सुषुप्ति का आनन्द ले रही थी।

फ़ालमाउथ के बन्दरगाह पर हमारा जहाज़ ठहरा। यह पोर्ट छोटा सा, संसार वालों का अपरिचित स्थान है, पर यहाँ जहाज़ के लङ्गर डालने का अच्छा सुभीता है। वह उठ बैठी और मेरे साथ ही साथ जहाज़ की सीढ़ियों पर से उतरी। उसे क्या पता कि उसके पकड़े जाने की पूरी स्कीम पहले ही से तैयार थी। मैंने साङ्केतिक शब्दों द्वारा पहले ही से अपने अधिकारियों को सूचना दे दी थी।

कस्टम पर पहले मेरे असबाब की तलाशी हुई। मैं बाहर चला गया, तब मेरिया की बारी आई! मैं पूर्व प्रबन्ध के अनुसार बाहर इन्तज़ार कर रहा था। मेरिया अन्दर ही कस्टम हाउस के कमरे में रोक ली गई थी! मेरे लिए एक-एक घड़ी फाँसी की सज़ा पाए हुए क़ैदी की तरह बीत रही थी!

आख़िर मेरी बुलाहट हुई। बड़ी चेष्टा से मैंने शक्ति एकत्रित की और अन्दर छोटे कमरे में प्रवेश करते ही देखा कि सुन्दरी नादा क्रोधित और क्षुब्ध, कमरे के बीचो-बीच में खड़ी है। कमरे के दोनों दरवाज़ों पर सन्तरी लोग बन्दूकें भरे सतर्क भाव से खड़े थे। मेज़ पर सी० आई० डी० विभाग का एक बड़ा अधिकारी पूर्व निश्चित प्रबन्ध के अनुसार डटा था, जो मेरिया से बार-बार प्रश्नोत्तर कर रहा था!

मुझे देखते ही उसने अपनी दृष्टि मेरी ओर फेरी और सवालों की झड़ी लगा दी। मैंने ज़बानी, नादा की मौत का फ़रमान पढ़ना शुरू किया! एक-एक करके उसके सारे राज़ों और सारे दुर्दान्त कर्मों को खोल दिया!

मेरिया के आश्चर्य का क्या ठिकाना था। पहले तो वह बच्चों की तरह ताज्जुब करके मुझे सर से पैर तक देखती रही। पर ज्योंही मेरी सारी करतूत उसकी समझ में आई, आश्चर्य की भावभङ्गी उड़ गई, चेहरे का रङ्ग बदल गया और दोनों आँखें जलते हुए कोयलों के समान चमकने लगीं!

उसने हाथ जेब में डाला, मुझे पहले ही से इस बात का शक था! और दूसरे ही क्षण अपने भरे हुए ऑटोमैटिक पिस्तौल को मेरी छाती पर तान कर छोड़ दिया। बारूद तो मैंने पहले से जहाज़ पर ही निकाल दी थी, गोली "हिस" की आवाज़ करके टोंटी से गिर पड़ी। × × उस समय मैंने देखा कि मेरिया के पैरों तले से मानो ज़मीन निकल गई।

तब साँपिन की तरह फुफकार मार कर उसने पिस्तौल ही मेरे सर पर खींच कर दे मारी। मैंने उस

क़ीमती, प्राणनाशक वस्तु को शीघ्र ही उठा कर जेब में कर लिया! दूसरे ही क्षण प्रहरियों ने बन्दिनी मेरिया को अपने घेरे में कर जेलख़ाने का रास्ता लिया × × × जिस दृष्टि से उसने चलने के समय मेरी ओर ताका था, उसे मरने के दिन तक न भूलूँगा।

बिलकुल असम्भव है कि मैं निर्जीव क़लम और स्याही से उस समय के मानसिक भावों का यहाँ पर सही-सही चित्र खींच सकूँ। जिस समय सुन्दरी नादा को वे लोग पकड़े लिए जा रहे थे—उसी अनुपम ललना को, जिसके साथ में मैंने जीवन के सबसे बढ़िया दिन स्नेह और प्यार से बिताए थे—मेरा दिल फट रहा था, अन्तस्तल में उथल-पुथल मची हुई थी। पर हो ही क्या सकता था। मुझे गुप्त-विभाग के एक कर्मचारी गुप्तचर के नाते जो कुछ करना चाहिए था, मैंने किया—और सफलतापूर्वक किया। अतएव कर्तव्य को ईमानदारी से पूरा कर देने का बड़ा भारी बल था, जो टूटे हुए कलेजे को जीवित रक्खे हुए था।

उस अफ़सर ने मेरी सफलता पर मुझे बधाई दी। लेकिन उसे मेरी स्थिति देख कर कुछ शङ्का और चिन्ता हो रही थी। मैंने उसकी बधाइयों का जवाब कुछ न दिया। मेरा तो सारा उत्साह और उन्माद उतर चुका था और मेरा दिल किसी से भी इस काम के लिए वाह-वाही नहीं सुनना चाहता था।

अधिकारी ने मुझे, मेरे हेड क्वारटर का एक बन्द लिफ़ाफ़ा दिया। मेरे सब से बड़े अफ़सर ने—जिसने मुझे इतने बड़े काम का भार सौंपा था—तुरन्त ही अपने पास बुलाया था।

❀ ❀ ❀

लावण्यमयी, शोभामयी, सौन्दर्यमयी नादा मेरिया को अङ्गरेज़ सरकार ने फ़्रान्सीसी गवर्नमेण्ट के हवाले कर दिया। फ़्रेञ्च सरकार ने मेरा और मेरी गवर्नमेण्ट का बड़ा एहसान माना। कुछ दिनों बाद सुना कि मेरिया का मुक़द्दमा समाप्त हो गया और उसे उसके कोटि-कोटि अपराधों के उपलक्ष में फाँसी दे दी गई। फिर तो केवल एक ही बार मेरिया की स्मृति की ख़बर मिली थी, और वह भी तब, जब उसकी विश्व-मोहिनी लड़की ने मेरिया की क़ब्र का फ़ोटो स्वयं अपने हाथों से खींच, अपने हस्ताक्षरों सहित मेरे पास भेजा था। उस पर लिखा था—

दो ही हिचकी में हुआ, बीमारे ग़म का फ़ैसला,
एक हिचकी मौत की थी, एक तुम्हारी याद की!

⁂ ⁂ ⁂

जीवन के पल

[श्री० नरेन्द्र]

बीत रहे पल-पल जीवन के!
कभी अँधेरी, कभी उजाली,
प्रात और सन्ध्या की लाली,
रँगतीं सूने पल जीवन के!
क्षणिक कल्पना, नश्वर आशा,
फूलों की मुसकाती भाषा,
बहलातीं कुछ पल जीवन के!

प्रमुदित वात जगाती स्मृतियाँ,
निद्रा दुलराती मधु-स्मृतियाँ,
चलते योंही पल जीवन के!
कल थी कल, है आज आज फिर,
कल होगी कल, कहाँ आज फिर,
कल-कल बहते पल जीवन के!
बीत रहे पल-पल जीवन के!

साकार कल्पना

रजनी की सभीत नीरवता में है इस निर्झर का प्यार !
आह ! कल्पना में भी यदि तुम, एक बार होते साकार !!

—कुमार

FINE ART PRINTING COTTAGE
ALLAHABAD

भारतीय स्त्रियों की वीरता

[श्री० सुरेन्द्र शर्मा]

वीरता, मानवीयता का एक प्रधान गुण है, संसार की सभी जीवित जातियाँ इस गुण की क़दर करती हैं। वीरों की सब जगह पूजा होती है। संसार की वीर जातियों के इतिहास में आर्य जाति की वीरता प्रसिद्ध है। आरम्भ ही से आर्य लोगों में वीरता का अनुपम गुण चला आया है। अन्य लोकोपयोगी कामों के साथ ही, आवश्यकता पड़ने पर, आततायियों से युद्ध करना, उनका संहार करके आत्म-रक्षा करना, हिन्दू धर्म-शास्त्र में पुनीत कर्तव्य माना गया है। इसी कारण कुरुक्षेत्र के संग्राम में, मोहवश अकर्मण्यता का भाव जगने पर, भगवान कृष्ण को अर्जुन से कहना पड़ा था—

हतो वा प्राप्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्।
तस्मादुत्तिष्ठ कौन्तेय युद्धाय कृत निश्चयः।

कर्तव्य-पालन के लिए रण-भूमि में प्राण त्याग करने से स्वर्ग मिलता है—यह भाव शताब्दियों तक हिन्दू-जाति का जीवन-मन्त्र रहा है। जिन लोगों की धमनियों में गरम खून था, जिनकी नसों में जातीय जीवन की ज्योति जगमगा रही थी, वे योद्धा धर्म के लिए, जातीय मान-रक्षा के लिए हँसते-हँसते मर मिटते थे, अथवा मर्यादा पुरुषोत्तम रामचन्द्र की तरह युद्ध के अन्त में देश भर में विजय-दुन्दुभी बजा देते थे। क्यों? दुष्टों का संहार करके स्वधर्म और स्वत्त्वों की रक्षा के लिए। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हिन्दू-जाति की वीरता की यह भावना विश्व के रङ्ग-मञ्च पर कैसे अनूठे खेल दिखा चुकी है।

वीरता का दुर्लभ गुण, पुरुषों के समान ही हिन्दू-रमणियों में भी पाया जाता था। भारतीय इतिहास में अनेक ऐसे उदाहरण ज्वलन्त नक्षत्र की भाँति चमकते हुए दिखाई पड़ते हैं, जिनमें इस देश की स्त्रियों ने समर में खुल कर अपने दुश्मनों से लोहा लिया और उनके दाँत खट्टे किए। सचमुच भारतीय देवियाँ समय-समय पर वीर-रमणी और वीर-प्रसूता के पवित्र नाम को सार्थक करती रही हैं। वीरबाला, दुर्गावती, पद्मावती और 'भारतीय नारीत्व की अन्तिम ज्योति' रणचण्डी लक्ष्मी-बाई को कौन भूल सकता है? आज इस लेख में हम एक ऐसी ही वीराङ्गना के पुण्य चरित्र की चर्चा करने बैठे हैं, जिसके पद-पद्मों की चरण-रज से इस देश का दिव्य धरा-धाम पवित्र हो चुका है।

बसन्तबाला

जैसलमेर के एक राजा की लड़की का नाम था बसन्तबाला। रूप-गुण दोनों ही में वह अनुपम थी। आरम्भ ही से उसकी प्रतिभा चमकने लगी थी। बचपन में सोते समय रात को सेविकाएँ उसे राजपूत वीरों की कहानियाँ सुनाया करती थीं। कहानियाँ सुन कर, बसन्त-बाला की प्रवृत्ति वीरतापूर्ण बन गई। वह बड़ी धर्मात्मा, सुशील और बुद्धिमती थी। उसका स्वभाव हठी था। ख़तरे के वक़् पीछे हटना या डरना तो वह जानती ही न थी। उसके चरित्र पर उसकी पूजनीया माँ के अनुपम गुणों की अटल छाप थी। माँ इस बात का सदा ध्यान रखती थी कि कोई बात पुत्री की इच्छा के प्रतिकूल न हो। पुत्री भी माँ की आज्ञा का पालन करना अपना परम पवित्र कर्त्तव्य समझती थी।

देश में सम्राट अकबर के शासन की धूम थी। उसकी कूटनीति राजपूतों के दिल और दिमाग़ पर असर कर चुकी थी। राजनैतिक दृष्टि से सचमुच अकबर एक सफल सम्राट था, किन्तु नैतिक दृष्टि से देखने पर, आज भी हमें उसके दिवालिया होने में तनिक भी सन्देह नहीं है। दिल्ली में नौरोज़ के दिनों में मीना बाज़ार लगवाना अकबर के दिमाग़ की उपज थी। इस विलक्षण सूझ को उसने अपनी विलासिता का साधन बना रक्खा था। कहते हैं कि भद्र पुरुषों को विवश होकर अपनी स्त्रियों

को मीना बाज़ार में भेजना पड़ता था। भले-भले घरों की रानियों और बेगमों को वहाँ जाने के लिए फ़ुसलाया जाता था। उन्हें तरह-तरह के प्रलोभन दिए जाते थे। राजपूतों की—ख़ासकर उन राजाओं की रानियाँ वहाँ जाने के लिए तैयार की जाती थीं, जो अकबर के अधीन हो चुके थे।

जब नौरोज़ और मीना बाज़ार की चर्चा बसन्तबाला के कान में पड़ती, तब उसका .ख़ून उबल उठता था। राजपूतों के पतन पर उसे बड़ा रोष होता था। एक दिन अपनी एक सहेली के सामने उसने प्रतिज्ञा करते हुए बड़े गर्व से कहा—आजकल राजपूत पतित हो गए हैं। मैं ऐसे राजपूत से अपना विवाह करूँगी, जो अपनी पत्नी की मान-मर्यादा सम्राट अकबर की आज्ञा से कहीं बढ़ कर समझे।

जोधपुर का राजा अभयसिंह बड़ा वीर था। बसन्तबाला की प्रतिज्ञा की चर्चा उसके कान में पहुँची। उसने ऐसी निर्भीक युवती के साथ विवाह करने की इच्छा प्रकट की। बसन्तबाला ने ब्याह की दो शर्तें लिख भेजीं। पहली शर्त यह कि अभयसिंह उसे मीना बाज़ार में नहीं भेजे, और दूसरी यह कि, कलाजी नाम के एक बहादुर और बुद्धिमान राजपूत को जोधपुर में रहने की इजाज़त दे दे। दोनों शर्तें स्वीकार कर लेने पर अभयसिंह का ब्याह बसन्तबाला के साथ हो गया।

कलाजी बड़ा वीर और रण-कुशल योद्धा था। अभयसिंह ने उसे बड़े आदर के साथ जोधपुर में रक्खा। थोड़े ही दिनों में दोनों में बड़ी गहरी मित्रता हो गई। विवाह के बाद चार महीने भी सुख से न बीतने पाए थे कि अभयसिंह दिल्ली बुलाया गया।

अभयसिंह कलाजी को साथ लेकर दिल्ली आ गया। इधर अकबर को यह पता चल ही गया था कि अभयसिंह का विवाह भाटिया जाति की एक बहुत ही सुन्दर स्त्री से हुआ है, और उसे यह जान-बूझ कर यहाँ नहीं लाया। उसने अभयसिंह से कहा कि जब शाही बेगमें मीना बाज़ार में जाती हैं, तब तुम्हें अपनी स्त्री को वहाँ भेजने में क्या एतराज़ है, तुम अपनी रानी को बुलवा लो।

अभयसिंह ने जोधपुर की गद्दी बड़े छल से प्राप्त की थी। अकबर की बात सुन कर वह डर गया और अपनी रानी को बुलाने के लिए पत्र लिख दिया। इस सम्बन्ध में उसने कलाजी से कोई राय नहीं ली। बसन्तबाला राजा का पत्र पाकर आग-बबूला हो गई। पति-परायणा वीराङ्गना थी। उसे आशङ्का थी कि यदि अकबर के इच्छानुसार वह दिल्ली न पहुँची, तो उसका पति और कलाजी गिरफ़्तार कर लिए जायँगे।

संयोग से रानी बसन्तबाला दिल्ली में उस वक़्त पहुँची, जब कि नौरोज़ का मेला समाप्त होने को था। बीसियों रानियाँ मेले में जाती थीं, किन्तु अभयसिंह की रानी नहीं। इससे अकबर बहुत क्रुद्ध गया था। अभयसिंह की अनुपस्थिति में बदला लेने के अभिप्राय से उसने रानी बसन्तबाला को उसके शाही महल के फाटक पर पहुँचने पर कालू ख़ाँ नाम के कच्छी नवाब के महल में भिजवा दिया। द्वार पर शाही पहरा बिठा दिया गया। कालू ख़ाँ यह जान कर बड़ा ख़ुश हुआ कि जोधपुर की रानी उसे इनाम में मिली है।

रानी को इस षड्यन्त्र का तनिक भी पता नहीं था। वह बड़ी बुद्धिमान थी। उसने उद्योग करके सारा हाल जान लिया और अपनी एक दासी से कहा कि कलाजी को मेरे आने की ख़बर दे दे। दासी बड़ी विश्वस्त और स्वामि-भक्त थी। घूँघट काढ़े हुए वह बाहर चली आई। द्वार पर सिपाहियों के पूछ-ताछ करने पर उसने कह दिया कि मैं रानी के लिए बाहर से कुछ सामान लेने जाती हूँ।

पता लगा कर बाँदी कलाजी के मकान पर पहुँची। रानी के क़ैद होने की ख़बर पाकर कलाजी को बड़ा दुःख हुआ। उसने कहा कि यदि दिल्ली आने से पहले मुझे यह ख़बर मिल जाती तो आज यह आफ़त सिर पर न आती। बाँदी ने रानी का समाचार उसी के शब्दों में कलाजी के आगे रख दिया—"जो होना था वह हो चुका। बीती हुई बात पर शोक करना व्यर्थ है। यदि तुम सचमुच मेरे भाई हो, और तुम्हें अपनी बहिन की मान-मर्यादा का ज़रा भी ध्यान है, तो मुझे इस सङ्कट से बचा लो, अन्यथा मैं नवाब को मार कर स्वयं भी मर मिटूँगी।"

'बहिन' का नाम सुनते ही कलाजी का जी भर आया। उसने बाँदी के कपड़े स्वयं पहन लिए और उसे अपने मर्दाने कपड़े पहना दिए और कह दिया कि तू यहाँ रानी की प्रतीक्षा कर, रानी यही कपड़े पहन कर तेरे पास चली आवेगी।

बाँदी के वेष में कलाजी नवाब के महल में जा पहुँचा। सिपाहियों ने उसे नहीं रोका। रानी के पास

जाकर उसने कहा—बहिन, यह कपड़े पहन कर तू यहाँ से निकल जा। मेरे मकान पर तुझे बाँदी मिलेगी। वहाँ घोड़े कसे हुए तैयार हैं। मैं भी जल्द ही आ जाऊँगा।

रानी बड़ी बुद्धिमती थी। उसने कपड़े बदल कर अपने हाथ-पाँव और मुँह पर रँग लगा लिया। फाटक पर सिपाही के पूछने पर कह दिया कि मैं पान लेने जा रही हूँ। आगे बढ़ने पर दासी मिल गई। उसने रानी को कलाजी के मकान पर पहुँचा दिया। नवाब के महल में कलाजी ने एक दूसरी बाँदी के कपड़े पहन लिए और उसे समझा दिया कि जब काल्हू ख़ाँ आवे, तब उसे शराब पिला कर उसके पेट में कटार भोंक देना, और सवेरा होने पर कह देना कि नवाब को मार कर रानी भाग गई।

बाँदी को समझा-बुझा कर ज़नाने भेष में कलाजी बाहर आया। सिपाही ने पूछा—"अब तू कहाँ चली?" उसने उत्तर दिया—"मैं शराब लेने जाती हूँ।" सिपाही चुप हो गया और कलाजी ख़ुशी-ख़ुशी अपने मकान पर चला आया। वहाँ बसन्तबाला और एक दासी मर्दानी पोशाक में तैयार बैठी थीं। कलाजी ने अपने कपड़े पहन लिए और उसी समय तीनों प्राणी घोड़ों पर सवार होकर सूबियाना के क़िले में जा पहुँचे। सूबियाना का क़िला उन दिनों बहुत सुदृढ़ था। शत्रुओं को उस पर चढ़ाई करने का साहस तक न होता था।

कलाजी को आशङ्का थी कि अकबर पीछा करेगा। इसलिए उसने लड़ाई के लिए राजपूतों का जत्था बनाया। लड़ाई का सब सामान तैयार किया गया। अकबर की बेईमानी और दग़ाबाज़ी की बातें सुन कर राजपूतों को बड़ा क्रोध आया। वे बसन्तबाला की रक्षा के लिए सर हथेली पर लेकर तैयार हो गए।

बसन्तबाला अपनी मान-मर्यादा के लिए प्राणों की बाज़ी लगा कर मारवाड़ चली आई। उधर काल्हू ख़ाँ अपने महल में आया। दासी ने उसे बेहद शराब पिला दी। उसी दशा में उसने उसके पेट में तेज़ कटार भोंक कर उसका काम तमाम कर दिया। अपने प्रिय सरदार काल्हू ख़ाँ के मारे जाने की ख़बर सुन कर अकबर आपे से बाहर हो गया। कलाजी का मकान घेर लिया गया। अन्य राजपूत सरदारों की भी तलाशी ली गई, परन्तु रानी बसन्तबाला का पता न चला। बादशाह के दिमाग़ का पारा बेहद चढ़ गया। इस अवसर पर अनेक राजपूतों से बादशाह की अनबन हो गई और वे शाही सेना से लड़ कर मारे गए। अन्त में अकबर ने बाइस हज़ार आदमियों की सेना को मारवाड़ पर चढ़ाई करने का हुक्म दिया। शाही पलटन ने मारवाड़ में आकर बड़ी लूट-मार मचाई।

जिस क़िले में बसन्तबाला रहती थी, उस पर धावा किया गया। रानी स्वयं बड़ी वीर और बहादुर थी। वह जिरह-बख़्तर पहन कर शाही सेना के मुक़ाबिले मैदान में यह कहते हुए निकल पड़ी—

सिर काटे सिर जात है, सिर काटे सिर होय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारी होय॥
रण में जूझे शूरमा, सन्मुख खावे तीर।
भर-भर मारे शत्रु को, साले सकल शरीर॥

बसन्तबाला रण-भूमि में आते ही तीर-कमान से शाही सैनिकों के कलेजे बेधने लगी। तीखे तीर लगते ही सिपाही ज़मीन पर लोटने लगे। बात की बात में वीराङ्गना ने अकबर के बीसियों सिपाही धराशायी कर दिए। क़िले में राजपूत बहुत थोड़े थे। परन्तु वे ऐसी वीरता से लड़े कि अधिक समय तक युद्ध में शाही सेना के पैर जमे न रह सके। बहुत से सिपाही मैदान छोड़ कर भाग गए। उस समर की विजय-माल वीर क्षत्राणी बसन्तबाला के गले में पड़ी। हारे हुए सैनिकों को बादशाह ने दिल्ली बुला लिया और क़सम खा ली कि जब तक सूबियाना का क़िला फ़तह न हो तब तक सुख की नींद सोना हराम है।

कुछ ही दिन बाद अकबर ने दिल्ली से बहुत बड़ी फ़ौज सोयाना (सूबियाना) भेज दी। शाही फ़ौज ने चारों ओर से क़िला घेर लिया। राजपूतों ने तीन दिन तक घमासान लड़ाई लड़ी और अन्त में शाही सेना को तितर-बितर कर दिया। अकबर स्वयं लड़ाई में आया। जब उसने देखा कि राजपूत लड़ाई में अपना सानी नहीं रखते, और यह क़िला सहज ही में फ़तह नहीं किया जा सकता, तब वह बहुत परेशान हुआ और खाना-पीना छोड़ कर बैठ गया। उसने प्रण कर लिया कि जब तक सोयाना का क़िला फ़तह न होगा, तब तक खाना नहीं खाऊँगा। शाही सेना के सैकड़ों आदमी मर चुके थे, और वह बिलकुल तितर-बितर हो चुकी

थी। इस दशा में सरदारों ने बादशाह की प्रतिज्ञा रखने के लिए मिट्टी का एक छोटा सा नक़ली क़िला बनवा लिया और उसका नाम सोयाना रख लिया। दूसरे दिन सोयाना का नक़ली क़िला तोड़ने की तैयारी की गई। राजपूतों और बसन्तबाला के कानों में भी यह ख़बर पहुँच गई। उन्हें अपनी वीरता पर गर्व था। रात ही में अपने सोयाना दुर्ग के गौरव की रक्षा के लिए एक हज़ार योद्धा वहाँ इकट्ठे हो गए। शाही सेना ने मिट्टी के क़िले पर धावा किया, और राजपूतों ने उसका मुँह तोड़ उत्तर दिया। दोनों ओर से मिट्टी के क़िले पर खुल कर लड़ाई हुई। राजपूतों की मार से शाही सेना के छक्के छूट गए। बादशाही फ़ौज में मारवाड़ के जो राजा शामिल थे, वे भी सोयाना के सम्मान का विचार कर बिगड़ खड़े हुए। अकबर ने बहुत हाथ-पैर पीटे, पर सोयाना का मिट्टी का नक़ली क़िला भी फ़तह नहीं हो सका। अन्त में हार कर उसे बसन्तबाला के दुर्दमनीय साहस और अपूर्व रण-कौशल की प्रशंसा करनी पड़ी। एक राजपूत स्त्री से हार मानने में उसे शर्म लगती थी, इसलिए उसने जोधपुर के राजा को सन्धि के लिए बुलाया। बसन्तबाला और कलाजी ने अकबर की किसी शर्त को नहीं माना। जिस समय अभयसिंह अकबर का भेजा हुआ सन्धि का पैग़ाम लेकर बसन्तबाला के पास पहुँचा, उस समय उस वीर क्षत्राणी ने कहा—

"यह सर ईश्वर अथवा आपके सिवा किसी और के सामने झुकने वाला नहीं है। शरीर क्षणभङ्गुर है, इसका कोई ठिकाना नहीं, मुझे मरने-जीने की तनिक भी परवाह नहीं है, पर अकबर ऐसे दुष्ट बादशाह की अधीनता स्वीकार नहीं करूँगी। मैंने जो विजय प्राप्त की है, उसे सन्धि की शर्तों से बर्बाद नहीं करूँगी। सन्धि की बातें सुनने के लिए भी मेरे कान तैयार नहीं हैं। इस रण-यज्ञ में प्राणाहुति देकर मैं क्षत्राणी के पवित्र नाम को सार्थक करूँगी।"

इतना कह कर रानी ने हाथ जोड़ कर अभयसिंह को प्रणाम किया और उसे अपने सामने से चले जाने का इशारा किया। उसके रक्त-वर्ण नेत्रों से आग की चिनगारियाँ निकल रही थीं। अभयसिंह के चले जाने पर बसन्तबाला ने कलाजी को बुला कर उससे कहा—

"राजपूत अपने धर्म से पतित हो गए हैं। कमीने बादशाह ने एक स्त्री पर चढ़ाई करके अपने मुँह पर व्यर्थ के लिए कलङ्क-कालिमा लगा ली है, और अब, जयपुर और जोधपुर के राजे सन्धि कराने आए हैं! तुम वीर राजपूतों को मेरा सन्देश भेज दो कि तुरन्त ही आकर समर-भूमि में अकबर को उसकी काली करतूतों का मज़ा चखा दें। अब सन्धि नहीं, संग्राम होगा। तुम भी केसरिया बाना धारण करके रणक्षेत्र में अक्षय कीर्त्ति प्राप्त करो।"

बसन्तबाला का रण-निमन्त्रण पाकर वीरता के नाम पर मर मिटने वाले राजपूत बात की बात में इकट्ठे हो गए। सबके शरीर पर केसरिया पोशाक सुशोभित हो रही थी। रानी ने अपने हाथ से अपने मुख्य-मुख्य सरदारों को पान का बीड़ा दिया। रण में जाते समय योद्धाओं को पान देना, बड़ा सम्मानसूचक समझा जाता था।

अरुणोदय हो रहा था। सूबियाना (मारवाड़) दुर्ग के आस-पास केसरिया वस्त्र धारण किए राजपूतों का दल सागर की भाँति उमड़ रहा था। रण-भेरी बज उठी। देखते-देखते कई सहस्र राजपूत शाही फ़ौज पर भूखे सिंहों के समान दौड़ पड़े। रानी स्वयं अपना तीर-कमान लेकर रण में जूझने के लिए आ गई। कई घण्टे तक दोनों सेनाओं में तुमुल युद्ध होता रहा। अन्त में शाही सेना के पैर उखड़ गए। अकबर रानी के तीर से घायल हुआ। वह रण छोड़ कर भागना ही चाहता था कि बसन्तबाला ने ललकार कहा—"दुष्ट मैदान छोड़ कर भागने में शर्म नहीं आती? संख्या में हम थोड़े हैं, किन्तु अपनी आन पर जान देकर दिखा देना चाहते हैं कि राजपूतनी का अपमान करना टेढ़ी खीर है, सिंहनी को छेड़ने के लिए गज भर का कलेजा चाहिए।"

इस घमासान युद्ध का परिणाम भी वही हुआ, जो प्रायः ऐसी लड़ाइयों का हुआ करता है। राजपूत शाही सेना के मुक़ाबले बहुत थोड़े थे, किन्तु लड़े बड़ी बहादुरी से। उन्होंने अपनी तलवारों से शाही सिपाहियों को गाजर-मूली की तरह काट कर पृथ्वी पाट दी और स्वयं भी रणक्षेत्र में वीर-गति प्राप्त की! वीर-गति को प्राप्त हुए लोगों में रानी बसन्तबाला और कलाजी का भी शव पड़ा हुआ था!

(शेष मैटर ३१८ पृष्ठ के पहले कॉलम के नीचे देखिए)

फ़ीजी के भारतीयों में शिक्षा-प्रचार

['चाँद' के विशेष प्रतिनिधि द्वारा]

एक समय था जब कि फ़ीजी द्वीप के शिक्षा के क्षेत्र में अन्धकार ही अन्धकार दृष्टि-गोचर होता था। क्योंकि जो लोग पहले-पहल इन उपनिवेशों में आते थे, वे अधिकांशतः अशिक्षित होते थे। उनके दिलों में एक तो योंही अपनी सन्तानों को शिक्षा देने की ओर ध्यान न था, दूसरे, इसके लिए यहाँ कुछ साधन भी न थे। वे धर्म की उन्नति अपना पेट पालने और धन कमाने में ही समझे थे। जो थोड़े से शिक्षित-पण्डित थे, उनका क्षेत्र भी चेले बनाने और कथा आदि बाँचने तक ही परिमित था। इसी को वे अपना प्रचार समझते थे। भारतीय बालकों के लिए पाठशालाएँ स्थापित करने का कुछ भी यत्न नहीं किया जाता था। शायद उनको इस बात का भय था कि अगर सभी भारतीय नवयुवक शिक्षित हो जायँगे, तो उनको (पण्डितों को) कौन पूछेगा, जो उनकी मान-मर्यादा है, वह कितनी रह जायगी ? इसीलिए इस सम्बन्ध में मौनवृत्ति का अवलम्बन करना ही उन्होंने ठीक समझा। इसी कारण से आज जहाँ कि 'काई-बीती' (यहाँ के आदि-निवासी) ९० प्रतिशत शिक्षित हैं, वहाँ भारतीय केवल ४५ प्रतिशत।

फ़ीजी में सब से प्रथम भारतीय बालकों की शिक्षा के लिए सन् १८९७ में 'कैथोलिक मिशन' ने एक विशाल शिक्षा-भवन तैयार कराया और उसका नाम मारिस्ट ब्रदर्स कॉस्मोपोलिटन स्कूल (Marist Brothers Cosmopolitan School) रक्खा। इस स्कूल के स्थापित करने का कुछ यत्न भारतीयों ने भी किया, पर अपना अधिकांश समय मिशन के सर्वेसर्वा ब्रदर क्लोडियस ने ही दिया। वे भारतीयों के सच्चे मित्र थे। उन्होंने अपना जीवन भारतीय बालकों की शिक्षा के लिए अर्पित कर दिया था। जब तक उनमें चलने-फिरने की शक्ति थी, तब तक उन्हें पढ़ाते रहे। 'कैथोलिक मिशन' ने इस स्कूल को स्थापित कर भारतीयों का बड़ा उपकार किया। उपर्युक्त मिशन के भारतीय सदैव उनके कृतज्ञ रहेंगे, और ब्रदर क्लोडियस के यावज्जीवन ऋणी रहेंगे। भारतीयों ने एक भवन भी उनकी यादगार के लिए तैयार कराने का निश्चय किया है, इसके लिए धन भी एकत्रित किया जा रहा है। आज अधिकांश शिक्षित नवयुवक इसी स्कूल से शिक्षा प्राप्त किए हुए मिलेंगे। सन् १८९९ में स्वर्गीय माननीय पण्डित बद्री महाराज जी ने अपने निजी ख़र्च से भारतीय बालकों के लिए एक स्कूल बाईरूकू में बनवाया। आप फ़ीजी के प्रथम भारतीय थे, जिन्होंने शिक्षा की ओर ध्यान दिया, और कई वर्षों तक उसे अपने ख़र्च से चलाते रहे। पण्डित जी ने ही भारतीयों का ध्यान शिक्षा की ओर आकर्षित किया था। जब आप फ़ीजी की व्यवस्थापिका-सभा के सदस्य थे, तब भी आप सदैव फ़ीजी-सरकार का ध्यान भारतीय बालकों की शिक्षा की ओर आकर्षित करते रहते थे। पण्डित जी का स्कूल आज भी ज्यों का त्यों चल रहा है। वर्तमान समय में सरकार भी उसे सहायता दे रही है।

बाद में 'मेथोडिस्ट मिशन' ने फ़ीजी में सबसे प्रथम, सन् १८३५ में, शिक्षा-सम्बन्धी कार्य आरम्भ किया। यद्यपि आरम्भ में उसका क्षेत्र आदि-निवासियों तक ही परिमित था, परन्तु आगे चल कर उन्होंने भारतीय बालकों की शिक्षा की ओर भी ध्यान दिया और प्रत्येक मुख्य स्थान पर, जहाँ भारतीय अधिक संख्या में निवास करते थे, स्कूल स्थापित किए। यद्यपि इन स्कूलों में ईसाई मज़हब की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था, फिर भी मिशन ने भारतीयों का बड़ा उपकार किया और अब भी कर रहा है। जिन पादरियों ने भारतीयों की शिक्षा में अपना अमूल्य समय व्यतीत किया, उनमें से रेवरेण्ड बेर्टन

तथा मिस डेडली का नाम विशेष उल्लेखनीय है। 'मेथोडिस्ट मिशन' का मुख्य केन्द्र रेवा है। इस स्थान पर भारतीयों की एक बड़ी बस्ती है। यहीं पर मिशन का अनाथालय और बालक तथा बालिकाओं का स्कूल भी स्थापित है। टीचर्स ट्रेनिङ्ग स्कूल भी काईबीती तथा भारतीय बालकों के लिए खुला हुआ है, जिसमें भारतीय तथा काईबीती शिक्षक तैयार किए जाते हैं। विशेषकर मिशन ने अनाथालय स्थापित करके भारतीयों का जो उपकार किया है, वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। अन्यथा आज कितने बालक और बालिकाएँ अन्धकार में जीवन बितातीं। उक्त अनाथालय में से निकले हुए आज कई बालक अच्छे पदों पर काम कर रहे हैं। सरकार भी इन संस्थाओं के सञ्चालन में पर्याप्त आर्थिक सहायता देती है। मेथोडिस्ट मिशन ने कुछ नवयुवकों को उच्च विद्या प्राप्त करने के लिए भारत भेजा था। वे सब के सब वर्तमान समय में फ़ीजी के स्कूलों में अध्यापक का कार्य कर रहे हैं। इन मिशन-स्कूलों में अङ्गरेज़ी भाषा तथा ईसाई धर्म की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान दिया जाता था। फलतः अधिकांश नवयुवकों का झुकाव ईसाई धर्म की ओर ही जाता था। उस समय हिन्दू-धर्म के प्रचारक यहाँ थे भी नहीं। इसी कारण से आज ईसाइयों में भारतीय नवयुवकों की संख्या अधिक है। परन्तु यह होते हुए भी भारतीय युवक मिशन की शिक्षा-सेवा को कभी नहीं भुला सकते हैं। वे मिशन के सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

लगभग इसी समय सेविन्थ डे मिशन (Seventh day Mission) ने भी भारतीय बालकों की शिक्षा का एक-दो स्थानों में प्रबन्ध किया। जिसमें मिसेज़ मार्यस नाम की एक महिला ने अपना सर्वस्व निछावर कर दिया। आपके ही भगीरथ प्रयत्न का फल है कि आज सेविन्थ डे मिशन का यह कार्य फलता-फूलता दिखाई दे रहा है। इस मिशन का (भारतीय विभाग का) प्राण आप ही थीं। इस समय मिसेज़ मार्यस अपने जीवन का अन्तिम भाग ऑस्ट्रेलिया महाद्वीप में बिता रही हैं।

उपर्युक्त स्कूलों के स्थापित होने के बाद भी यहाँ कोई ऐसा स्कूल नहीं था, जहाँ कि भारतीय बालक अङ्गरेज़ी के साथ-साथ अपनी मातृ-भाषा की भी शिक्षा प्राप्त कर सकते और भारतीय सभ्यता की महत्ता को समझ सकते। उस समय हिन्दी की किसी को परवाह ही नहीं थी। नवयुवकों के दिलों में बस अङ्गरेज़ी का ही ख़याल था। उस समय न हिन्दी का प्रचार ही था, न हिन्दी के पुजारी थे। बस, हिन्दी भाषा का ज्ञान शून्य मात्र था। वह भारतवर्ष का साहित्य, वह हिन्दी-साहित्य जो आजकल उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है। जिस हिन्दी-साहित्य द्वारा भारत गूँज रहा है, वह साहित्य इस फ़ीजी द्वीप में, जो हज़ारों मील भारतवर्ष से दूर पर है, जहाँ कि उसी भारत के लाल हज़ारों की संख्या में निवास कर रहे हैं, लुप्त था। वह काल मानों हिन्दी-साहित्य के अत्यन्ताभाव का काल था। किन्तु परमात्मा की अपार कृपा है कि इसी बीच (सन् १९०४) में आर्य-समाज की स्थापना हुई और सन् १९१० से उसने शिक्षा का प्रचार करना भी आरम्भ किया। समाज के स्कूल में मुख्यतः हिन्दी की शिक्षा दी जाती थी। बालकों को दिन में और पुरुषों को रात्रि में शिक्षा देने की व्यवस्था

(३१६वें पृष्ठ का शेषांश)

इस प्रकार की वीरता और दुर्दमनीय साहस राजपूतों की भाटी जाति के लिए बिलकुल स्वाभाविक था। इस जाति की प्राचीन स्त्रियों के अद्भुत शौर्य और आत्म-त्याग के गीत आज भी राजपूताने में घर-घर गाए जाते हैं। बसन्तबाला ऐसी अगणित देवियाँ इस देश के इतिहास में अपनी उज्ज्वल कृतियों से अमर हो चुकी हैं। वे जीवन और मृत्यु के वास्तविक रहस्य को समझती थीं। इसी कारण अपनी मान-मर्यादा के लिए शत्रुओं के दाँत खट्टे करके हँसते-हँसते समर में सो जाती थीं। उनकी सन्तति भी वीर और कर्तव्य-परायण होती थी। देश के दुर्भाग्य से, वीरता की वह अनूठी भावना, जो सहस्रों देवियों के रोम-रोम में व्याप्त थी, और जिसने शताब्दियों तक यहाँ की सन्तति को सम्मान के साथ ऊँचा सर उठा कर दुनिया में जीवित रक्खा, धीरे-धीरे बिलकुल लोप हो गई। आज तो उन सब बातों की एक धुधली सी स्मृति शेष रह गई है। अतीत की उसी धुँधली स्मृति की प्रकाश-रेखा के सहारे आज मृतप्राय हिन्दू जाति अपने आत्मोद्धार का मार्ग ढूँढ़ रही है। अन्त में परिणाम क्या होगा, यह तो आने वाला समय बतावेगा।

❀ ❀ ❀

की गई। इस स्कूल में अध्यापक का कार्य आर्य-समाज के पुराने कार्यकर्ता पण्डित शिवदत्त जी शर्मा करते थे। उसी साल आर्य-समाज ने लिखा-पढ़ी करके सरकार से भी भारतीय बालकों की शिक्षा की ओर ध्यान देने की प्रार्थना की। साथ ही आर्य-समाज ने अपने शिक्षा सम्बन्धी कार्य को विस्तृत करने का भी आयोजन किया और कन्याओं की शिक्षा के लिए भी उसी स्कूल में अलग एक स्थान नियत किया। साथ ही आर्य-समाज को शिक्षा के प्रचारकों की परम आवश्यकता प्रतीत हुई और सन् १९१३ में, भारत से स्वर्गीय स्वामी राममनोहरानन्द जी बुलवाए गए। स्वामी जी ने फ़ीजी में पदार्पण करते ही अपना कार्य आरम्भ कर दिया। आपने फ़ीजी के प्रत्येक गाँव में दौरा किया। स्थान-स्थान पर जाकर शिक्षा का प्रचार करना आरम्भ किया। आपके प्रचार का फल यह हुआ कि जो लोग बेख़बर सो रहे थे, वे जग गए। स्वामी जी ने सन् १९१९ में एक गुरुकुल की स्थापना की, जहाँ बालकों को संस्कृत, हिन्दी तथा अङ्गरेज़ी की शिक्षा दी जाने लगी। थोड़े समय में बालकों की संख्या भी बहुत बढ़ गई। वर्तमान समय में अधिक स्कूलों के स्थापित हो जाने पर भी, अधिक संख्या में बालक गुरुकुल में ही शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं। इस समय स्वामी जी नहीं हैं, पर उक्त गुरुकुल उनके चिर-स्थायी स्मारक के रूप में अपना कार्य कर रहा है।

इसी समय में प्रवासी भारतीयों के बन्धु और भारतभक्त साधु सी० एफ़० एन्ड्रयूज़ का फ़ीजी में शुभागमन हुआ। आपने इस द्वीप में कुछ दिन रह कर भारतीयों की दशा का निरीक्षण किया और बालकों तथा बालिकाओं की शिक्षा के लिए प्रचार-कार्य भी किया। आपकी यादगार में नादी ज़िला की जनता ने एक स्कूल भी स्थापित किया, जो कि 'एन्ड्रयूज़ स्कूल' के नाम से प्रसिद्ध है। इस स्कूल में आज प्रायः १५० बालक और बालिकाएँ शिक्षा प्राप्त कर रही हैं। इसके मुख्य अध्यापक श्री० दुःखहरण जी हैं।

सन् १९२० में साधुवर वशिष्ठ मुनि जी ने फ़ीजी में पदार्पण किया। जिस समय आप यहाँ आए, उस समय फ़ीजी की स्थिति बड़ी शोचनीय थी। साधु जी ने स्थान-स्थान पर जाकर शिक्षा का प्रचार किया और चन्दा एकत्र करके दो स्थानों पर स्कूल भी स्थापित किए। उस समय अधिकांश भारतीय साधु जी के उपदेशों का पालन करने लग गए थे। यदि साधु जी चाहते तो वे और भी स्कूल बनवा सकते थे, किन्तु उनका अधिकांश समय धार्मिक आन्दोलन में ही व्यतीत होने लगा। स्कूल तो स्थापित हो गए, पर आप उनके सञ्चालन का कोई उत्तम प्रबन्ध न कर सके।

अस्तु, उपर्युक्त कतिपय स्कूलों के स्थापित हो जाने पर भी इस द्वीप में भारतीय बालकों की शिक्षा के लिए यथेष्ट स्कूलों की कमी बनी ही रह गई। क्योंकि शिक्षार्थियों की संख्या बड़ी थी और स्कूलों की बहुत थोड़ी। साथ ही न ऐसे स्कूल ही थे जहाँ भारतीय बालकों को भारतीय सभ्यता की शिक्षा दी जा सकती और न उस प्रकार के अध्यापक ही थे। चूँकि उपरोक्त स्कूलों में सब के सब अध्यापक इसी द्वीप के नवयुवक थे, इसलिए आर्य-प्रतिनिधि-सभा, फ़ीजी ने सन् १९२५ में, भारत से पण्डित गोपेन्द्रनारायण जी पथिक को बुलवाया। पथिक जी गुरुकुल वृन्दावन में कई वर्षों से कार्य कर रहे थे, उन्हें गुरुकुल ही शिक्षा-प्रणाली का अच्छा अनुभव था। आपने गुरुकुल नसोबा में शिक्षा देना आरम्भ कर दिया। जिस समय आपने अध्यापन कार्य का श्रीगणेश किया, उसी समय सर्वत्र गुरुकुल का नाम गूँज उठा। फिर भी पथिक जी से शिक्षा की जो अवनति इस द्वीप में हो रही थी, नहीं देखी जा सकी। इससे आपको बड़ा दुःख हुआ। क्योंकि जो नवयुवक यहाँ के पढ़े हुए थे, वे पश्चिमी सभ्यता की ओर अधिक झुके हुए थे। इसलिए आपने यहाँ से विद्यार्थियों को भारत भेजने का प्रबन्ध किया, जिससे कि वे वहाँ पर उच्च शिक्षा प्राप्त कर सकें। पथिक जी के ही परिश्रम से आज लगभग ४० बालक और बालिकाएँ डी० ए० वी० कॉलेज, गुरुकुल वृन्दावन तथा कन्या-महाविद्यालय, जालन्धर में विद्या प्राप्त कर रही हैं। इस सम्बन्ध में प्रवासी भाइयों के सच्चे सेवक और देशभक्त पूज्य स्वामी भवानीदयाल जी संन्यासी ने "हिन्दुस्तान में प्रवासी विद्यार्थी" शीर्षक एक लेख में विद्यार्थियों की अवस्था पर प्रकाश डालते हुए लिखा था कि "उपनिवेशों में काम करने के लिए प्रवासी बालकों को ही तैयार करना चाहिए और इस दिशा में फ़ीजी सबसे आगे बढ़ गया है।" पण्डित गोपेन्द्रनारायण जी ने गुरुकुल के विद्यार्थियों में एक नया जीवन पैदा कर

दिया। जनता आपके कार्यों पर मुग्ध हो गई। आपने जिस उत्साह तथा प्रेम से शिक्षा का प्रचार किया है, वह उल्लेखनीय है। जैसे-जैसे आर्य-समाज का शिक्षा-सम्बन्धी कार्य बढ़ने लगा, वैसे ही वैसे उसे अध्यापकों की आवश्यकता का भी अनुभव होने लगा। इसलिए श्रीमती आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने भारत से सन् १९२७ में प्रचारक पण्डित श्रीकृष्ण जी शर्मा, ठाकुर सरदारसिंह और उनकी धर्मपत्नी श्रीमती दयावती देवी, पं० अमीचन्द्र जी विद्यालङ्कार और ठाकुर कुन्दनसिंह जी कुश को स्कूलों में अध्यापक का कार्य करने के लिए बुलवाया। पं० श्रीकृष्ण जी शर्मा ने तीन साल तक धार्मिक प्रचार के साथ-साथ शिक्षा का भी काफ़ी प्रचार किया। आपके यत्न से कई स्कूल, जो कि बन्द पड़े थे, चलने लगे। आपने आर्य-प्रतिनिधि-सभा की ओर से प्रयत्न करके अनाथ बालकों के लिए एक अनाथालय भी स्थापित किया। आपके प्रचार से फ़ीजी के भारतीय नवयुवकों में एक नवीन जागृति पैदा हो गई थी।

श्री० ठाकुर सरदारसिंह जी कुछ काल तक सूवा के एक स्कूल में मुख्य अध्यापक का कार्य करते थे। आपने स्कूल को बड़े उत्साह से चलाया। आपका शिक्षा सम्बन्धी भाषण बड़ा प्रभावशाली हुआ करता था। बालकों की संख्या यहाँ तक बढ़ गई कि स्कूल में जगह न रह गई। परन्तु उसी बीच में आर्य-प्रतिनिधि-सभा ने कन्याओं की शिक्षा के लिए एक विद्यालय स्थापित करने के लिए ठाकुर जी को लौतोका बुलवा लिया। आप तथा आपकी धर्मपत्नी जी ने वहाँ पर अथक परिश्रम करके एक कन्या-विद्यालय की स्थापना कराई। आरम्भ से ही इस विद्यालय में कन्याओं की ख़ूब उपस्थिति रही। ठाकुर जी तथा आपकी धर्मपत्नी स्वयम् अध्यापक का कार्य करती हैं। यह फ़ीजी का प्रथम विद्यालय है, जहाँ कि कन्याओं को हिन्दी, अङ्गरेज़ी, सिलाई और स्वास्थ्य-रक्षा आदि की शिक्षाएँ दी जाती हैं। इस विद्यालय ने फ़ीजी में एक नए युग का प्रारम्भ कर दिया है। तभी से कन्याओं की शिक्षा की ओर अधिक ध्यान भी दिया जाने लगा। श्रीमती दयावती देवी ने विद्यालय द्वारा भारतीय कन्याओं में एक नया जीवन ला दिया है। साथ-साथ आप गर्ल्स गाइड की भी शिक्षा देती हैं। इनकी देख-रेख में विद्यालय की गर्ल्स गाइड ट्रूप ने अच्छी उन्नति की है। इस विद्यालय की उच्च सरकारी कर्मचारी तक भी अत्यन्त प्रशंसा करते हैं। एक बार फ़ीजी के शिक्षा-विभाग के डायरेक्टर ने कहा था कि "भारतीय कन्याओं की शिक्षा के लिए यह आदर्श संस्था है। यह स्कूल एक तरह का मॉडल स्कूल है।"

पं० अमीचन्द्र जी विद्यालङ्कार भी एक शिक्षा-प्रेमी सज्जन हैं। आपने पं० गोपेन्द्रनारायण के भारत लौट जाने के बाद, गुरुकुल में मुख्य अधिष्ठाता का कार्य बड़ी लगन तथा उत्साह के साथ किया। नए-नए तरीक़े द्वारा शिक्षा देना आरम्भ किया। आप बड़े उच्च विचार के सज्जन हैं, तथा आप में अभिमान की मात्रा कम है। पण्डित जी कुछ काल तक फ़ीजी अध्यापक-सभा के प्रधान पद को भी सुशोभित कर चुके हैं। आर्य-समाज सूवा ने अपने विशाल मन्दिर में एक कन्या-पाठशाला स्थापित किया। पण्डित जी गुरुकुल से आकर पाठशाला का कार्य करने लगे। इस पाठशाला के स्थापित हो जाने से सूवा प्रान्त की भारतीय कन्याओं को बड़ा लाभ हुआ है। यद्यपि फ़ीजी में अब भी वही रोना रोया जाता है कि कन्याओं के शिक्षा दिलाने की क्या आवश्यकता है, पर आर्य-समाज के प्रचार से क्रमशः यह ख़याल दूर होता जा रहा है। इस पाठशाला में पण्डित जी की धर्मपत्नी श्रीमती सर्ववती देवी भी अध्यापिका हैं। पण्डित जी ने इस पाठशाला को समुन्नत बनाने में जो परिश्रम किया है और कर रहे हैं, वह विशेष उल्लेखनीय है। आप शिक्षा के बड़े प्रेमी हैं। चाहे जब आपसे मिलने जाइए, पुस्तक या क़लम अवश्य ही हाथ में देखेंगे। पाठशाला के अतिरिक्त कन्या-महाविद्यालय बनवाने के लिए भी आप यत्न कर रहे हैं। इस विद्यालय के बन जाने पर एक बड़ी भारी कमी की पूर्ति हो जायगी। चन्दे के लिए तो आप न मालूम कहाँ तक पैदल ही दौरा करते हैं। पण्डित जी के कार्य की लोग मुक्तकण्ठ से प्रशंसा करते हैं। फ़ीजी-प्रवासी भारतीयों के लिए बड़े गौरव की बात है कि पण्डित अमीचन्द्र जैसे शिक्षा-प्रेमी सज्जन आज यहाँ विराजमान हैं।

ठाकुर कुन्दनसिंह जी कुश सन् १९२८ में आर्य-प्रतिनिधि-सभा के आमन्त्रण पर, सनातनधर्म-महामण्डल के प्रचार-कार्य के लिए फ़ीजी पधारे। इस समय

पं० अमीचन्द जी विद्यालङ्कार और आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सर्ववती देवी ।

झण्डा-अभिवादन
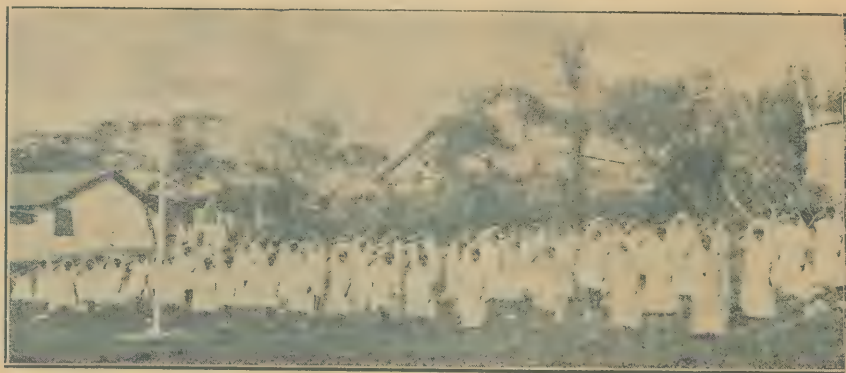
आर्य-कन्या-पाठशाला, सूवा (फ़ीजी) की कन्याएँ ओ३म् झण्डे का अभिवादन कर रही हैं। यह महोत्सव यहाँ प्रतिवर्ष होता है और इस अवसर पर आर्य-धर्म के प्रचार के साथ ही शिक्षा-प्रचार सम्बन्धी व्याख्यान आदि हुआ करते हैं।

विसेसी कन्या-विद्यालय, फ़ीजी की कुछ छात्राएँ। बीच में श्रीमती दयावती देवी जी विराजमान हैं।

स्व० प्रतिभाकुमारी (पापा), यह प्रतिभामयी बालिका शाहपुरा आर्य-समाज के महोपदेशक पण्डित भगवानस्वरूप जी, काव्यतीर्थ की पुत्री थी। गत ४ सितम्बर सन् १९३२ ई० को केवल सात वर्ष की उम्र में इसका देहान्त हो गया !

लघुकौमुदी के कई सूत्रों के अतिरिक्त अग्निहोत्र के कई मन्त्र भी इसे कण्ठस्थ थे और उनका उच्चारण बहुत शुद्ध कर लेती थी। इसकी माता ने इस बालिका की स्मृति में 'प्रतिभाकुमारी-पदक' देने का विचार किया है।

कुँवर लालसिंह वनिता-हस्पताल भण्डारा, के शिलारोपण-समारोह का एक दृश्य। यह हस्पताल विशेष रूप से महिलाओं के लिए बनेगा। हाल ही में इसका शिलारोपण-समारोह भण्डारा के डिप्टी कमिश्नर ख़ान बहादुर के० ई० जे० सज्जला की धर्मपत्नी श्रीमती सज्जला द्वारा सम्पन्न हुआ है।

आर्य-कन्या-पाठशाला, सूवा (फ़ीजी) की कन्याएँ। बीच में प्रधान अध्यापक जी तथा अन्य अध्यापिकाएँ बैठी हैं।

पं० श्रीकृष्ण जी शर्मा 'आर्य-मिशनरी'। आपने तीन साल तक फ़ीजी में वैदिक-धर्म का प्रचार किया है।

श्रीमती दयावती देवी। आप फ़ीजी के प्रसिद्ध भारतीय आर्य-समाज के मुख्य कार्यकर्त्ता ठाकुर सरदारसिंह जी की धर्मपत्नी और गर्ल्स गाइड की केप्टेन हैं।

श्री० ठाकुर सरदारसिंह जी स्काउट यूनिफ़ार्म में। आपके ही परिश्रम से विसेसी कन्या-विद्यालय की स्थापना हुई है।

पण्डित गोपेन्द्रनारायण जी 'पथिक'। आप आर्य-समाज गुरुकुल, फ़ीजी के मुख्याधिष्ठाता हैं। आपके ही उद्योग से ४० फ़ीजी-प्रवासी भारतीय बालक-बालिकाएँ भारत में शिक्षा प्राप्त कर रही हैं।

श्री० चौधरी कन्हौंसिंह जी। आप फ़ीजी के प्रमुख कार्य-कर्त्ता तथा दानवीर हैं। फ़ीजी-प्रवासी भारतीय बालकों की शिक्षा के सम्बन्ध में आपका कार्य प्रशंसनीय है।

विसेसी (फ़ीजी) कन्या-विद्यालय का एक भाग। इसका सञ्चालन आर्य-प्रतिनिधि-सभा, फ़ीजी द्वारा होता है।

आप सनातनधर्म-मण्डल स्कूल में मुख्य अध्यापक का कार्य कर रहे हैं। यह स्कूल रेवा ज़िला में है, जब से कुश जी का वहाँ पर आगमन हुआ है, तब से रेवा में शिक्षा के क्षेत्र का कार्य प्रति दिन बढ़ रहा है। आपके तथा दानवीर चौधरी कन्हीसिंह जी के घोर प्रयत्न से गत साल, दिसम्बर १९३१ में, आर्य-समाज का एक विशाल स्कूल स्थापित हुआ। यह स्कूल फ़ीजी के भारतीयों का सब से बड़ा स्कूल कहा जा सकता है। इसी तरह आज प्रत्येक मुख्य स्थान पर आर्य-समाज द्वारा बालकों तथा बालिकाओं के लिए विद्यालय स्थापित हैं, और जिन स्थानों में अभी तक भारतीय बालकों की शिक्षा के लिए प्रबन्ध नहीं है, वहाँ स्कूल बनवाने के लिए आर्य-समाज यत्न कर रहा है। आर्य-समाज की इस महती कृपा के लिए फ़ीजी-प्रवासी सदैव कृतज्ञ रहेंगे।

फ़ीजी-सरकार भी भारतीयों की शिक्षा के लिए अब अधिक ध्यान दे रही है। सन् १९२७ में सरकार ने तीन भारतीय बालकों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए न्यूज़ीलैण्ड भेजा था। वर्तमान समय में पाँच स्कूल सरकार द्वारा चल रहे हैं, और एक टीचर्स ट्रेनिङ्ग इन्स्टीट्यूट की भी स्थापना हुई है। सन् १९३० में सरकार ने मि० ए० डब्लू० मेकमिलन को, जो कि लगभग पन्द्रह साल तक भारत में रह चुके हैं, भारतीय स्कूलों के निरीक्षक के पद पर नियुक्त किया है। जब से सरकार ने भारतीय बालकों के लिए स्कूल बनवाना आरम्भ किया है, तब से भारतीय सरकार को इस कार्य के लिए धन्यवाद दे रहे हैं। सरकार ने हाल ही में शिक्षा-कर का भी प्रस्ताव पास किया है, जो कि सन्तोषजनक है और भारतीयों ने बड़े हर्ष के साथ उसे

जागरण

७ नवम्बर, १९३२

मालिका तथा मृदुदल—दोनों के रचयिता श्री० जनार्दन झा 'द्विज'। दोनों ही के प्रकाशक 'चाँद' कार्यालय, प्रयाग। मूल्य क्रम से ४) और २॥)। छपाई अच्छी, सजिल्द।

दोनों ही पुस्तकें 'द्विज' जी की प्रकाशित कहानियों के संग्रह हैं। 'द्विज' जी यों बड़े ही ख़ुश-मिज़ाज आदमी हैं, हँसना भी जानते हैं और हँसाना भी; लेकिन क़लम हाथ में लेते ही वह ज़रूरत से ज़्यादा गम्भीर बन जाते हैं। उनकी अधिकतर कहानियाँ जलने वाले दिल की चिनगारियाँ हैं, जिनके एक-एक शब्द में क्रान्ति भरी हुई है। वह कवि हैं और कवि का कोमल हृदय अपने चारों तरफ़ रुदन और विलाप सुन कर शान्त नहीं बैठ सकता। यह विराग तो दार्शनिकों के बखरे पड़ता है। हिन्दू-समाज में मर्यादा के नाम पर कैसे-कैसे अन्याय किए जाते हैं, मान-रक्षा के नाम पर सत्य और प्रेम का कैसे गला घोंटा जाता है, क्षुद्र स्वार्थ के लिए कैसे ज़िन्दगी-भर के अरमानों का ख़ून किया जाता है, निस्सहाय अबलाओं पर अपने घर वालों ही द्वारा कैसे-कैसे षड्यन्त्र रचे जाते हैं, और वही समाज, जो इन पशुओं को आसानी से क्षमा कर देता है, अबलाओं को कैसे नरक में भेज कर ही शान्त होता है, इन कहानियों के यही विषय हैं; पर भाषा में इतना प्रवाह, भावों में इतना माधुर्य और चित्रण में इतनी स्वाभाविकता है, कि मन कहीं नहीं ऊबता। उनके पात्र साधारण प्राणी हैं। उनकी बीती भी वही है, जो हम आए-दिन देखा करते हैं। इसलिए हमें उनके मनोभावों के समझने में कठिनाई नहीं पड़ती। 'द्विज' जी कहीं-कहीं कटु हो गए हैं; पर उनकी कटुता खिन्न नहीं करती, हमें लज्जित करती है। एक कहानी में पुत्र के मुख से पिता के प्रति जो गुस्ताख़ी-भरे शब्द निकले हैं, वह न निकलते तो अच्छा होता। जब आप एक आदर्श चरित्र की सृष्टि कर रहे हैं, तो यही उचित है कि पिता की स्वार्थपरता पर भी पुत्र विनय को हाथ से न छोड़े। सम्भव है, कुछ लोगों को यह स्थल कहानी की जान प्रतीत हो। कुछ भी हो, 'द्विज' जी कहानी-कला में कुशल हैं।

—प्रेमचन्द

देना स्वीकार कर लिया है। पर अभी तक टैक्स लेना आरम्भ नहीं किया गया है।

सनातनधर्म-सभा के भी एक-दो स्थानों में स्कूल बने हुए हैं, जो अधिकतर बन्द ही रहते थे। पर हर्ष की बात है कि वे भी अब सब के सब चल रहे हैं। सनातन धर्मानुयायियों की यहाँ पर दो सभाएँ हैं। एक 'सनातन-धर्म-महामण्डल' और दूसरी 'सनातनधर्म-सभा।' सनातनधर्म-महामण्डल वाले सहयोग से काम लेते हैं और उनकी देख-रेख में एक स्कूल भी बहुत दिनों से चल रहा है। इसी तरह सनातनधर्म-सभा का भी एक स्कूल बा ज़िले में स्थापित है। सनातनधर्म-सभा ने सूवा में एक ऋषिकुल स्कूल की भी स्थापना की है। उसमें अन्य स्कूलों की तरह अङ्गरेज़ी आदि की पढ़ाई होती है।

मुस्लिम जनता ने भी शिक्षा के क्षेत्र में काफ़ी भाग लिया है। अपने बालकों के लिए स्थान-स्थान पर स्थापित मस्जिदों में स्कूल खोल दिए हैं। जिनमें धार्मिक शिक्षा के साथ-साथ उर्दू तथा अङ्गरेज़ी की शिक्षा दी जाती है। इसका सञ्चालन फ़ीजी की मुस्लिम लीग द्वारा होता है। गत साल लीग ने भी भारत से अपने एक स्कूल के लिए, एक मास्टर को बुलवाया है।

इसी तरह मद्रासियों ने भी बड़े उत्साह से शिक्षा-प्रचार में भाग लिया है। उनकी शिक्षा के लिए प्रत्येक स्थान पर सङ्गम स्कूल खुले हुए हैं, जिनका सञ्चालन 'मद्रास महासङ्गम' द्वारा होता है।

'फ़ीजी-समाचार' नाम के फ़ीजी के एकमात्र भारतीय पत्र ने भारतीयों के शिक्षा-प्रचार में जो हाथ बटाया है, वह सराहनीय है। 'फ़ीजी-समाचार' समय-समय पर जनता का ध्यान शिक्षा की ओर खींचता रहा है, और खींचता है। कुछ समय से प्रति सप्ताह बालकों के लिए उपयोगी लेख तथा कविताएँ प्रकाशित होती हैं। उसकी इस सेवा के लिए 'फ़ीजी-समाचार' के सुयोग्य प्रकाशक श्री० बाबू रामसिंह जी के भारतीय सदैव कृतज्ञ रहेंगे। परमात्मा करे, समाचार दिनोंदिन उन्नति करता रहे।

फ़ीजी-सरकार भी जनवरी १९३१ से भारतीय स्कूलों के लिए शिक्षा-विभाग की ओर से 'स्कूल जर्नल' नाम से एक त्रैमासिक पत्र अङ्गरेज़ी और हिन्दी में प्रकाशित कर रही है। जिसमें शिक्षा-सम्बन्धी उपयोगी लेख छपा करते हैं।

भारतीय सुधार-सभा और भारतीय मित्र-मण्डली ने भी शिक्षा-प्रचार में यथायोग्य भाग लिया है। डॉक्टर सगायम ने भारतीयों की शिक्षा में अधिक भाग लिया है। आप नादी ज़िला में प्रशंसनीय कार्य कर रहे हैं। आपकी धर्मपत्नी भी शिक्षा की बड़ी प्रेमी हैं।

सन् १९३० में फ़ीजी की भारतीय ईसाई जनता ने अपनी अलग संस्था स्थापित की है। जिसका नाम क्रिश्चियन एसोसिएशन ऑफ़ फ़ीजी रक्खा गया है। यह संस्था भी शिक्षा-प्रचार में बड़े उत्साह के साथ भाग ले रही है। हाल ही में लेवूका (फ़ीजी की पुरानी राजधानी) में भारतीय बालकों के लिए एक स्कूल स्थापित हुआ है। इसके लिए ईसाई जनता धन्यवाद की पात्री है। लेवूका स्कूल में श्री० रामनारायण देवकी जी अध्यापक का कार्य करते हैं।

यहाँ पर स्वर्गीय साधु बसावनदास जी का नाम भी नहीं भुलाया जा सकता। आपने शिक्षा के लिए अपना सर्वस्व निछावर कर दिया, तथा अपना जीवन भी शिक्षा के प्रचार में अर्पण कर दिया। स्थान-स्थान पर जाकर बालकों को शिक्षा देने के लिए प्रचार किया और प्रचार करते ही इस लोक से चल बसे!

आज श्रीमान पण्डित जे० पी० महाराज जी प्रधान आर्य-समाज, श्रीयुत चौधरी कन्ही सिंह जी, श्री० पण्डित विष्णुदेव जी भूतपूर्व सदस्य व्यवस्थापिका सभा, श्री० हीरालाल जी सेठ, प्रधान भारतीय मित्र-मण्डली, पण्डित राघवानन्द जी भूतपूर्व प्रधान-मन्त्री आर्य-प्रतिनिधि-सभा, ठाकुरदीन सिंह जी तथा मिस्टर एम० एन० नायडू आदि सज्जनों ने जिस उत्साह, जिस लगन और जिस त्याग के साथ शिक्षा में भाग लिया है, वह समस्त भारतीयों के लिए गौरव की बात है। परमात्मा उपर्युक्त सज्जनों को बल प्रदान करे कि वे इसी उत्साह से शिक्षा के प्रचार में लगे रहें, ताकि वह दिन शीघ्र आए कि फ़ीजी के समस्त बालक और समस्त बालिकाएँ शिक्षित दिखाई देने लगें।

वर्तमान मुस्लिम-जगत

[डॉ० मथुरालाल शर्मा, एम० ए०, डी० लिट्०]

(गताङ्क से आगे)

वफ़्द की स्थापना

नवम्बर सन् १९१८ में "वफ़्द" अर्थात् राष्ट्रीय प्रतिनिधि मण्डल की स्थापना हुई। ज़ाग़लूल पाशा इसका प्रधान नियत हुआ और मिश्र का ध्येय अङ्गरेज़ जनता के सामने प्रकट करने की इच्छा से उसने इङ्गलैण्ड जाने का विचार किया। इसलिए एक सूची तैयार की गई और जो लोग ज़ाग़लूल को अपना प्रतिनिधि मानते थे, उनके हस्ताक्षर करवाने जारी किए गए। लाखों आदमियों ने इस पर हस्ताक्षर किए और ज़ाग़लूल को अपना प्रतिनिधि मानने में हर्ष प्रकट किया। यह बात अङ्गरेज़ी प्रभुओं को पसन्द नहीं आई और हस्ताक्षर-सूचियों को ज़ब्त कर लिया गया। ज़ाग़लूल पाशा और उसके साथियों को इङ्गलैण्ड जाने की आज्ञा नहीं मिली। केवल रशीदी पाशा को, जो मन्त्रि-मण्डल में था, जाने की इजाज़त दी गई। परन्तु उसने इस व्यवहार से असन्तुष्ट होकर अपने पद से इस्तीफ़ा दे दिया।

ज़ाग़लूल पाशा

ज़ाग़लूल से अङ्गरेज़ हाई-कमिश्नर ने कहा कि वह अपनी माँगें लिख कर पेश कर सकता है, परन्तु वह अङ्गरेज़ी सरकार की नीति के प्रतिकूल नहीं होनी चाहिए। ज़ाग़लूल ने उत्तर दिया कि उसको या प्रतिनिधि-मण्डल के दूसरे सदस्य को यह अधिकार नहीं है कि लोकमत के विरुद्ध वह कोई माँग पेश करे। उसने हाई-कमिश्नर को अङ्गरेज़ी सरकार की उन प्रतिज्ञाओं का स्मरण दिलाया, जो महासमर के समय सीरिया और ईराक़ से की गई थीं। इन देशों से कहा गया था कि शान्ति स्थापित होते ही उनको स्वराज्य मिल जावेगा। महासमर का उद्देश्य भी यही है। परन्तु ज़ाग़लूल पाशा की एक भी बात नहीं सुनी गई और न उसको इङ्गलैण्ड जाने की आज्ञा मिली। मिश्र में स्वाधीनता-प्राप्ति की अभिलाषा बढ़ने लगी और ज़ाग़लूल क़ौम के हृदय का हार बन गया। जनवरी सन् १९१९ को ज़ाग़लूल पाशा एक दावत में शामिल था। इसमें और भी अनेक देश-भक्त नेता और बड़े-बड़े सरदार आए हुए थे। वहाँ सबके सामने उसने अपनी स्वातन्त्र्य योजना प्रकट की। फिर प्रतिनिधि-मण्डल ने सुलतान को एक अर्ज़ी दी, जिसमें कहा गया कि मिश्र स्वतन्त्र है और अङ्गरेज़ी संरक्षता का अन्त हो गया है। इस पर ज़ाग़लूल और उसके साथियों को मिश्र के प्रधान सेना-नायक अङ्गरेज़ ने चेतावनी दी कि ऐसी कार्रवाई फ़ौरन बन्द हो जानी चाहिए। दूसरे दिन स्वातन्त्र्य योजना और ज़ाग़लूल की प्रधान सेना-नायक से भेंट का हाल प्रकाशित कर दिया गया। इस पर ज़ाग़लूल और उसके दो साथियों को गिरफ़्तार करके माल्टा द्वीप में भेज दिया। मिश्र में स्वातन्त्र्य संग्राम का शङ्ख बज गया।

गिरफ़्तारी और देशव्यापी आन्दोलन

इस समय मिश्र में फ़ौजी शासन था। क़ौमी पत्र सब बन्द थे और सभाएँ करने की मनाही थी। न शस्त्र रखने की इजाज़त थी न ज़ुबान हिलाने की। फिर भी ज़ाग़लूल की गिरफ़्तारी से देश भर में हलचल मच गई। अल-अज़र विश्वविद्यालय के विद्यार्थी तथा अन्य कई कॉलिज और स्कूलों के विद्यार्थियों ने हड़तालें कीं और जुलूस निकाले। सैकड़ों विद्यार्थियों को गिरफ़्तार किया गया। दूसरे दिन और भी ज़ोर से असन्तोष प्रकट किया गया। कई नरम नीति वाले पत्रों के दफ़्तरों पर भी धावा किया गया। कितने ही आदमियों को किञ्चित् सन्देह पर गिरफ़्तार किया गया और सेना बुलाई गई, जिसके परिणाम-स्वरूप कितने ही आदमी मारे गए। इससे भी असन्तोष नहीं दबने पाया। वक़ील,

विद्यार्थी, ट्राम वाले आदि लोगों ने हड़ताल कर दी और ज़ाग़लूल पाशा का मकान इस आन्दोलन का केन्द्र बन गया। उसकी धर्मपत्नी ने अपनी वक्तृता में कहा कि "यह मेरा घर नहीं है, यह क़ौम का घर है।" ज़ाग़लूल पाशा का मकान मिश्र का "आनन्द-भवन" बन गया। सम्पूर्ण देश में उपद्रव फैल गए। कृषकों ने रेल और तार नष्ट कर डाले और कई दिन तक कैरो एक प्रकार का टापू बन गया। कई नगरों में पञ्चायती राज्य स्थापित कर लिया गया।

एलनवी का शासन

लोकमत की इस प्रबल बाढ़ की भी अङ्गरेज़ों ने कुछ परवाह नहीं की। २४ मार्च, सन् १९१९ को हाउस ऑफ़ लॉर्ड्स में भाषण देते हुए लॉर्ड कर्ज़न ने कहा कि "सय्यद ज़ाग़लूल पाशा और उसके साथी स्वयंभू नेता हैं। उनके साथ मिश्री जनता नहीं है।" शान्ति स्थापित करने के लिए लॉर्ड एलनवी को मिश्र भेजा गया। असन्तोष अधिकाधिक प्रबल होता गया। शासकों का दमन भी उसी प्रकार बढ़ता रहा। गिरफ़्तारियाँ, गोलियाँ और फाँसी साधारण घटनाएँ मानी जाने लगीं। वकील, राज-कर्मचारी, विद्यार्थी आदि ने हड़तालें कर दीं। उपद्रवों में मारे हुए लोगों के ज़नाज़े निकाले गए, जिनमें हज़ारों-लाखों पुरुष सम्मिलित हुए। जनता के असन्तोष के कारण शासन-सञ्चालन कठिन हो गया। यह सब देख कर लॉर्ड एलनवी ने ज़ाग़लूल पाशा को छोड़ दिया। वह अपने साथियों के साथ पैरिस चला गया और वहाँ से मिश्र को सहायता देने लगा। हड़ताल करने वाले कर्मचारियों ने मन्त्रि-मण्डल के सामने अपनी तीन माँगें पेश कीं—(१) वफ़्द को स्वीकार किया जावे, (२) अङ्गरेज़ी संरक्षता न मानी जावे (३) अङ्गरेज़ी सैनिक अफ़सरों की जगह मिश्री अफ़सर नियत किए जावें। मन्त्रि-मण्डल केवल नाम का मन्त्रि-मण्डल था। वह शङ्ख के समान अङ्गरेज़ों की फूँक से बजा करता था। इसलिए वह इन माँगों को कैसे स्वीकार कर सकता था। लेकिन लोकमत को प्रबल देख कर उसका साहस भङ्ग हो गया और उसने पद से इस्तीफ़ा दे दिया। आन्दोलन की प्रबलता और शासन की निर्बलता प्रकट हो गई।

जाग्रति का स्वरूप

इस समय मिश्र में अपूर्व एकता और स्वातन्त्र्या-भिलाषा दिखाई देने लगी। ज़ाग़लूल पाशा अपने आपको कृषक-सन्तान कहता था। उसकी शिक्षा और योग्यता एक उच्च नागरिक के समान थी। इसलिए क्या कृषक, क्या सरदार, सब उसको अपना नेता मानते थे। स्वतन्त्रता-प्राप्ति की अभिलाषा किसानों में भी उतनी ही प्रबल थी, जितनी शिक्षित नागरिकों में। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कोप्ट और मुसलमान पारस्परिक धार्मिक भेदों को भुला कर साथ-साथ काम करते थे। कई कोप्ट प्रतिनिधि-मण्डल में सम्मिलित थे और कितने ही ज़ाग़लूल के गहरे मित्र थे। मुल्ला और पादरी हाथ से हाथ मिलाए हुए नगरों में घूमते हुए दिखाई देते थे। आन्दोलन के झण्डों पर ईसाई-क्रॉस और मुसलमानों के चाँद दोनों के चित्र होते थे। मिश्री महिलाएँ भी इस आन्दोलन में ख़ूब सम्मिलित हुईं। उन्होंने भी जुलूस निकाले, जिन राज-कर्मचारियों ने स्वतः हड़ताल नहीं की उनके घरों पर धरना दिया। कॉलेज की लड़कियों ने लड़कों के साथ-साथ काम किया और पुरुषों के समान शासकों के अत्याचारों तथा यन्त्रणाओं को सहा।

इस जाग्रति के कारण थे यूरोप की उन्नति और मिश्र की अधोगति थी। यूरोप की राजनैतिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक उन्नति के सम्पर्क के कारण मिश्र में भी उन्नत बनने की अभिलाषा जाग्रत हो उठी थी, परन्तु अङ्गरेज़ लोग न उनको उन्नति करने देते थे और न स्वतन्त्र बनने देते थे। अङ्गरेज़ों के चालीस वर्ष के शासन में मिश्र कोई उन्नति नहीं कर सका था। जिधर देखो उधर गन्दगी और कीड़े-मच्छर दिखाई देते थे। बच्चों की मौतें बहुत होती थीं, बीमारियाँ चाहे जब फैल जाया करती थीं। स्वास्थ्य-रक्षा और चिकित्सा का कोई उचित प्रबन्ध नहीं था। शिक्षा की सब से अधिक उपेक्षा की जाती थी। प्रारम्भिक पाठशालाएँ तो देश भर में गिनती की थीं। मिश्र की आमदनी का केवल दो प्रतिशत शिक्षा में ख़र्च किया जाता था। कॉलेजों में भी विज्ञान, मिश्र का इतिहास, पुरातत्व, वाणिज्य-सिद्धान्त या अन्य उपयोगी विषयों के अध्ययन या अध्यापन का कोई प्रबन्ध नहीं था। शिक्षा का माध्यम

अङ्गरेज़ी भाषा थी। स्त्री-शिक्षा की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था।

राज्य-प्रबन्ध सब अङ्गरेज़ों के हाथ में था ही। सुलतान और उसका मन्त्रि-मण्डल सब उनके हाथ की कठपुतलियाँ थे। चाटुकार, देशद्रोही और अङ्गरेज़-भक्त लोग मन्त्री-पद पर नियत किए जाते थे। अन्य सब उच्च पदों पर अङ्गरेज़ लोग सुशोभित थे और इनकी संख्या बढ़ती ही जाती थी। ये लोग अधिकतर अनुभव-शून्य, गर्विष्ट नवयुवक थे। न उनमें शासन करने की योग्यता थी, न बढ़ते हुए लोकमत को जानने की क्षमता। केवल शासक जाति में जन्म धारण करने से उनको उच्च पदों की प्राप्ति हुई थी। इनको प्रचुर वेतन मिलता था। परन्तु इनके मिश्री मातहत, जो सभी इनसे अधिक योग्य, अनुभवी और परिश्रमी थे, उनको इतना कम वेतन दिया जाता था कि उनका निर्वाह भी कठिनता से होता था। सन् १९१९-२० के शीतकाल में दुर्भिक्ष पड़ा। उसमें अङ्गरेज़ी शासक कुछ सहायता न कर सके। जनता ने सहकारी समितियों के द्वारा अनेक देश-भाइयों के प्राण बचाए।

मिलनर-कमीशन और उसका बहिष्कार

आख़िर लण्डन को इस विकट समस्या का भान हुआ और मई सन् १९१९ में लॉर्ड मिलनर की अध्यक्षता में एक कमीशन बैठाया गया। इसका काम था (१) पिछले उपद्रवों की जाँच करना, (२) अङ्गरेज़ों की संरक्षता में ऐसे शासन-विधान का स्वरूप निश्चय करना, जिससे शान्ति और समृद्धि बढ़े और प्रतिनिधि मूलात्मक शासन भी उन्नत होता जावे तथा विदेशियों के स्वार्थों को भी धक्का न लगने पावे। इस कमीशन में एक भी मिश्री को सम्मिलित नहीं किया गया था, और अङ्गरेज़ों की संरक्षता बनाए रखने का विचार भी स्पष्ट प्रकट कर दिया गया था। इसलिए यह स्वाभाविक बात थी कि मिश्र में इसका घोर विरोध होता। देश भर में असन्तोष प्रकट किया गया। दब्बू मन्त्रि-मण्डल ने भी पद-त्याग कर दिया, पर अङ्गरेज़ सरकार अपने निश्चय से नहीं डिगी। हाउस ऑफ़ कॉमन्स में भाषण देते हुए बाल्फ़ोर ने कहा कि "मिश्र में अङ्गरेज़ों का आधिपत्य है, और यह आधिपत्य बना रहेगा, इसको चिरस्थायी रखने के यत्न किए जावेंगे। यह अङ्गरेज़ सरकार का मूल सिद्धान्त है। मिश्र और अन्य देशों को इस विषय में भ्रान्ति नहीं होनी चाहिए।" ७ दिसम्बर को मिलनर-कमीशन मिश्र पहुँचा। साथ ही अनेक अङ्गरेज़ उच्च पदों पर नियत करके भी भेजे गए। मिश्र में पहले ही निश्चय हो चुका था कि इस कमीशन का बहिष्कार किया जावेगा। यह बहिष्कार पूर्ण-रूपेण किया गया। नगर, ग्राम, स्टेशन कहीं भी लोगों ने इसके साथ सहयोग नहीं दिया। जहाँ कहीं किसी से कमीशन के सदस्य कोई बात पूछते थे, तो कृषक हो या मज़दूर, व्यापारी हो या सरदार, सब एक ही उत्तर देते थे—"ज़ाग़लूल जाने, उससे पूछिए।" राजघराने के लोग, समाज के प्रतिष्ठित परिवार, मुल्ला और पादरी सब इस विरोध में सम्मिलित थे। कमीशन इधर-उधर घूम कर वापस चला गया और उसके पीछे व्यवस्थापिका सभा का अधिवेशन हुआ, जिसमें यह प्रस्ताव स्वीकार किया गया कि सन् १९१४ के बाद सरकार ने जो कार्य किए हैं, वे सब न्याय-विरुद्ध हैं।

सूदान नहर और रूई की खेती

इसी समय अङ्गरेज़ों ने सूदान में एक नहर बनाने की और उसके द्वारा सिंचाई करके वहाँ रूई की विस्तृत खेती करने की योजना की। यह बात मिश्र से बिलकुल गुप्त रक्खी गई। नहर और खेती की जाँच करने के लिए जो कमीशन बिठाया गया, उसमें एक भी मिश्री सम्मिलित नहीं किया गया, तो भी मिश्र वालों को इस बात का पता चल गया। इस योजना से मिश्र की भारी हानि होने वाली थी। सिंचाई के कारण नील नदी का पानी ऊपर ही ख़र्च हो जाता, तो फिर मिश्र के कृषक क्या करते? इसके अलावा रूई ही मिश्र की मुख्य पैदावार थी। मिश्र के निर्धन किसान धन-विज्ञान-सम्पन्न अङ्गरेज़ किसानों की क्या प्रतिद्वन्द्विता कर सकते थे? इस योजना से जनता में और भी असन्तोष बढ़ा और सभी अङ्गरेज़ों से घोर घृणा करने लगे।

मिलनर-कमीशन लन्दन में ज़ाग़लूल पाशा और अदली पाशा से मिल कर शासन-स्वरूप निश्चित करने लगा। इनमें समझौता भी हो गया। सेना अभी अङ्गरेज़ों के हाथ में रही और अन्य कई अधिकार उनके बने

रहे। ज़ाग़लूल ने अन्तिम निर्णय करने से पूर्व यह उचित समझा कि यह प्रस्ताव सम्पूर्ण देश के सामने रक्खा जावे। इसलिए वह मिश्र आया और प्रस्ताव राष्ट्र के सामने पेश किया गया। मिश्री इस समय अङ्गरेज़ों से अत्यन्त असन्तुष्ट और क्रुद्ध हो रहे थे। उनको यह स्वीकार न था कि अङ्गरेज़ों की शक्ति मिश्र में बनी रहे। वे चाहते थे कि संरक्षता ही नहीं, किन्तु अङ्गरेज़ों के विशेष अधिकारों का भी अन्त होना चाहिए। अतः प्रस्ताव स्वीकृत नहीं हुआ। ज़ाग़लूल वापस लन्दन चला गया। मिलनर-कमीशन की रिपोर्ट भी प्रकाशित हो गई, परन्तु अङ्गरेज़ सरकार ने इसकी भी सिफ़ारिशों को नहीं माना। सुलतान के साथ अलग बातचीत करके एक नवीन मन्त्रि-मण्डल की स्थापना की गई, जिसमें ज़ाग़लूल भी सम्मिलित था। वह मिश्र लौट आया। जनता ने उसका अपूर्व स्वागत किया।

ज़ाग़लूल की दूसरी गिरफ़्तारी

ज़ाग़लूल पाशा के सिवाय मन्त्रि-मण्डल के अन्य सदस्य सभी दब्बू और चाटुकार थे। उनमें त्याग का साहस और अङ्गरेज़ों का विरोध करने का हौसला नहीं था। सम्पन्न और राजभक्त लोग ज़ाग़लूल पाशा को अपनी उन्नति का बाधक समझते थे। वे कहते थे कि जो कुछ मिश्र को अङ्गरेज़ों ने दे दिया है, उसी पर सन्तोष करना चाहिए। आगे फिर देखा जाएगा। वास्तव में ऐसे मनुष्यों की संख्या अत्यन्त अल्प थी और ये थे या तो स्वार्थी और भीरु या अङ्गरेज़ों के सिखाए-पढ़ाए पिट्ठू। देश अब तक ज़ाग़लूल पाशा के साथ था। ज़ाग़लूल ने चाहा कि व्यवस्थापिका सभा के अधिवेशन में शासन-विधान निश्चित किया जावे। इस सभा का तीन बार चुनाव हुआ और तीनों ही बार यह स्पष्ट हो गया कि लोकमत ज़ाग़लूल पाशा के साथ है। शासन-सुधार की माँग और वर्तमान मन्त्रि-मण्डल का विरोध बढ़ने लगा। ज़ाग़लूल ने फिर लन्दन जाकर राष्ट्र की इच्छा को अङ्गरेज़ सरकार के सामने रखने का विचार किया, परन्तु उसने यह शर्त रक्खी कि उसको पूर्ण स्वातन्त्र्य-प्राप्ति का प्रस्ताव करने की इजाज़त होनी चाहिए और उसके साथ में अधिकांश लोग राष्ट्रीय प्रतिनिधि-मण्डल अर्थात् वफ़्द के सदस्य होने चाहिए। यह बात मन्त्रि-मण्डल ने स्वीकार नहीं की और अदली पाशा नामक एक नरम दल का मन्त्री स्वयं सन् १९२१ में इङ्गलैण्ड गया। वहाँ लॉर्ड कर्ज़न ने उसके सामने ऐसी असम्भव शर्तें रक्खीं कि नरम होते हुए भी उसको अस्वीकृत करनी पड़ीं। अदली पाशा ने पद-त्याग कर दिया और मन्त्रि-मण्डल भङ्ग हो गया। अङ्गरेज़ लोग पुनः सङ्गीन और तलवार के बल से राज्य करने लगे।

स्वतन्त्रता की घोषणा और ज़ाग़लूल की वापसी

चर्चिल की हड़प-नीति का ज़ोर हुआ। मिश्र से आसाम तक अङ्गरेज़ी राज्य स्थापित करने की योजना अङ्गरेज़ राजनीतिज्ञों के मस्तिष्क में अधिक ज़ोर से घूमने लगी। इन भावनाओं से प्रेरित होकर लॉर्ड एलनबी ने सुलतान के सामने शासन-विधान का एक मसविदा रक्खा, जो नरम से नरम मिश्र-वासियों को भी पसन्द नहीं आया। ज़ाग़लूल पाशा ने वफ़्द का एक अधिवेशन करना चाहा, परन्तु फ़ौजी क़ानून के अनुसार उसको रोक दिया गया। जब ज़ाग़लूल ने क़ानून की अवहेलना करने का विचार प्रकट किया, तो उसको और उसके दो साथियों को गिरफ़्तार करके पहले अदन में और तदनन्तर सिचिलीज़ टापू में क़ैद कर दिया। इस पर फिर देश भर में असन्तोष फैल गया और पूर्ववत् आन्दोलन होने लगा। भारतवर्ष और आयर्लैण्ड की भाँति मिश्र ने भी निष्क्रिय प्रतिरोध या सत्याग्रह करना आरम्भ किया। महिलाओं ने पुरुषों का साथ दिया और ज़ाग़लूल की धर्मपत्नी ने उनका नेतृत्व ग्रहण किया। लॉर्ड एलनबी इङ्गलैण्ड गया और वहाँ के मन्त्रि-मण्डल को स्थिति की विकटता से परिचित किया। २८ दिसम्बर, सन् १९२१ को मिश्र की स्वतन्त्रता स्वीकार कर ली गई, और अङ्गरेज़ी सरकार ने इस विषय में घोषणा कर दी। इसके ६ मास बाद फ़ौजी शासन हटा लिया गया और सन् १९२३ में ज़ाग़लूल पाशा स्वदेश लौट आया। उसका स्वागत करते समय जनता के जोश और हर्ष का ठिकाना न रहा।

पूर्ण स्वतन्त्रता की माँग

अङ्गरेज़ सरकार ने स्वतन्त्रता की घोषणा तो कर दी थी, परन्तु वास्तव में यह नाम-मात्र की घोषणा थी। अभी रेलें, अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, बाहरी आक्रमण से

देश की रक्षा, विदेशियों के अधिकार, ये चारों अङ्गरेज़ों ने अपने हाथ में रक्खे थे। सुलतान ने बादशाह की उपाधि धारण कर ली थी। लेकिन इस अवसर पर जनता ने कोई हर्ष प्रकट नहीं किया। लोग ज़ाग़लूल-पाशा की ही जय बोलते रहे। सन् १९२४ में मिश्र की पहली पार्लामेण्ट का अधिवेशन हुआ। इसमें अधिकांश लोग ज़ाग़लूल के पक्ष में थे। विरोधी इने-गिने दब्बू रईस थे। ज़ाग़लूल ने मन्त्री-पद स्वीकार किया और अपनी नीति की घोषणा की। वह पूर्ण स्वतन्त्रता चाहता था, स्वतन्त्रताभास नहीं। उसने प्रकट किया कि मिश्र ने यह नाम-मात्र की स्वतन्त्रता स्वीकार नहीं की है। सरकार ने बलपूर्वक देश को यह स्वीकार करवाई है।

मज़दूर-आन्दोलन

सन् १९२४ में एक नया आन्दोलन उठ खड़ा हुआ। मिश्र के प्रधान नगरों, क़स्बों में भी देशी और परदेशी व्यापारियों के अनेक बड़े-बड़े कारख़ाने थे, जिनमें देशी और परदेशी मज़दूर काम करते थे। इन लोगों में अपनी दशा सुधारने के लिए आन्दोलन शुरू हुआ। ये अपनी मज़दूरी बढ़ाना और काम करने का समय घटाना चाहते थे। कारख़ानों के स्वामियों ने इन माँगों की उपेक्षा की। फलतः आन्दोलन दिन-दिन प्रबल होने लगा। फिर भी पूँजीपतियों ने नहीं माना तो देश-व्यापी हड़तालें होने लगीं। कारख़ाने बन्द हो गए और बेकार मज़दूर हज़ारों की संख्या में जुलूस निकाल-निकाल कर अपना असन्तोष प्रकट करने लगे। तब कई कारख़ानों के स्वामी लोग झुके और मज़दूरों की माँगें कुछ अंश तक पूरी की गईं। परन्तु इससे आन्दोलन नष्ट नहीं हुआ। मज़दूरों के जगह-जगह सङ्घ बनने लगे। कैरो, सिकन्दरिया और अन्य प्रान्तों में मिल कर लग-भग १०० ऐसी समितियाँ और सङ्घों की स्थापनाएँ हो गईं। सबको सङ्गठित करके अखिल मिश्री सङ्घ के नीचे कर दिया और इस मज़दूर-सङ्घ ने मॉस्को के सङ्घ से अपना सम्बन्ध जोड़ लिया। यह मज़दूर-सङ्घ भी अङ्ग-रेज़ों के आधिपत्य का विरोधी था और निःशुल्क शिक्षा, महिला-स्वातन्त्र्य, सामाजिक क़ानून आदि पर ज़ोर देता था।

ली स्टेक का बध

पूर्ण स्वतन्त्रता की अभिलाषा के साथ अङ्गरेज़ों के प्रति लोगों की घृणा बढ़ने लगी। अङ्गरेज़ों की नीति से लोग अधीर हो उठे और मरता क्या न करता वाली अवस्था उपस्थित हो गई। नवम्बर १९२४ में सर ली स्टेक, जो अङ्गरेज़ी सेना का अधिनायक था, उसका बध हो गया। इङ्गलैण्ड में क्रोध-ज्वाला धधक उठी और अङ्गरेज़ सरकार को मिश्र का ख़ून चूसने का मौक़ा मिल गया। मिश्र से ७५ लाख रुपए हर्जाने के माँगे गए और ख़ूनी का पता लगाने और सूदान में से मिश्री फ़ौज हटाने तथा क्षमा-याचना करने के लिए मिश्री सरकार को बाध्य किया गया। इसके सिवाय सूदान की नहर के लिए नील नदी का उपयोग और कई पदों पर अङ्गरेज़ अफ़सरों की नियुक्ति पर भी ज़ोर दिया गया। ज़ाग़लूल पाशा ने और तो सब बातें मान लीं, परन्तु सूदान से सेना हटाना, नील नदी के पानी का सूदान में उपयोग करना तथा उच्च पदों पर पुनः अङ्गरेज़ अफ़सरों को नियत करना—ये तीन शर्तें स्वीकार नहीं कीं। इस पर अङ्गरेज़ों ने उसको सैनिक बल दिखला कर अपना पद-त्याग करने के लिए बाध्य किया। फिर कठपुतलियों द्वारा शासन होने लगा।

तीनों दलों का मेल

उस समय मिश्र में तीन राजनैतिक दल थे। वफ़्द पार्टी, राष्ट्रीय पार्टी और वैध आन्दोलक पार्टी। तीनों का ध्येय एक था, पर भारतीय राजनैतिक पार्टियों की भाँति कार्य-क्रम इनका भिन्न-भिन्न था। जब ज़ाग़लूल ने पद-त्याग कर दिया और पार्लामेण्ट को विदा कर दिया गया, तो बादशाह ने अङ्गरेज़ों की सलाह से दूसरी पार्लामेण्ट का चुनाव करना चाहा, पर भय यह था कि जो पार्लामेण्ट होगी उसी में ज़ाग़लूल के अनुयायियों की अधिकता होगी। निर्वाचक नियमों को इस प्रकार बदलने का प्रयत्न किया गया, जिससे ज़ाग़लूल-पक्ष अधिक चुनाव में न आने पावे। पर इसमें सफलता नहीं हुई। सन् १९२५ में मिश्र के तीनों राजनैतिक दल आपस में मिल गए और यह तय हुआ कि सरकार ने विदेशियों के दबाव से चाहे पार्लामेण्ट को बरख़ास्त कर दिया था, परन्तु वास्तव में वह अब भी विद्यमान है।

तीनों पार्टियों की एक सभा हुई और ज़ाग़लूल प्रधान बनाया गया। सबने मिल कर देश के हित तथा सम्मान की रक्षा करने का निश्चय किया। "बलग़ा" नामक पत्र में इस सभा का यह मन्तव्य प्रकाशित किया गया कि "इस २०वीं शताब्दी में कोई क़ौम किसी व्यक्ति की अँगुलियों पर नहीं नाच सकती, अत्याचार और नृशंसताओं से वह नहीं दब सकती। अब चाटुकार और देश-द्रोही मन्त्रियों को पता लगेगा कि जनता के सहयोग के बिना शासन-सञ्चालन असम्भव है, इत्यादि।"

ज़ाग़लूल पार्लामेण्ट

इस प्रबल लोकमत के सामने नामधारी मन्त्रि-मण्डल और अङ्गरेज़ हाई कमिश्नर को मस्तक झुकाना पड़ा। नवीन निर्वाचन-नियम, जो ज़ाग़लूल पाशा के पक्ष को निर्बल करने के लिए बनाए गए थे, उनके द्वारा पार्लामेण्ट का चुनाव करना चाहा, परन्तु जब इसका घोर विरोध हुआ तो हार कर पुराने नियमों के अनुकूल पार्लामेण्ट का चुनाव हुआ। इसके सदस्यों में ज़ाग़लूल की पार्टी के लोगों की अधिकता रही और मन्त्रि-मण्डल में भी ज़ाग़लूल के पक्ष का ज़ोर रहा। ज़ाग़लूल पार्लामेण्ट का प्रधान निर्वाचित हुआ। इस पार्लामेण्ट और मन्त्रि-मण्डल ने अनेक प्रजाहित के कार्य किए। सन् १९२७ में मिश्री पत्रों में विदेशियों के विशेष अधिकारों को रद्द कर देने का भारी आन्दोलन हुआ और उसी वर्ष अङ्गरेज़ी हाई कमिश्नर ने अपने गर्विष्ट व्यवहार के कारण मिश्री सरकार को इस बात पर बाध्य कर दिया कि स्वतन्त्रता की घोषणा करते समय चार बातें जो अङ्गरेज़ों ने अपने अधीन रक्खीं थीं, उनका शीघ्र फ़ैसला किया जावे। इसलिए मिश्र के बादशाह और मन्त्री इङ्गलैण्ड गए। वहाँ बादशाह का धूमधाम के साथ स्वागत किया गया।

जॉर्ज लॉयड

मिश्री मन्त्रि-मण्डल और ग्रेटब्रिटेन में जो सन्धि का मसविदा निश्चित हुआ, उसे मिश्र में मार्च सन् १९२८ में स्वीकार नहीं किया गया। मिश्र की बढ़ती हुई स्वातन्त्र्याभिलाषा की अब भी इङ्गलैण्ड ने उपेक्षा की। इस समय लॉर्ड एलनबी वापस चला गया था और मिश्र का हाई कमिश्नर जॉर्ज लॉयड था, जो भारतवर्ष में भी गवर्नर रह चुका था। वह पक्का साम्राज्यवादी था और मिश्र ही क्या, समस्त पूर्वी देशों की स्वतन्त्रता का पूर्ण विरोधी था। इसने वैध शासन को दबाया, पार्लामेण्ट के पास किए हुए क़ानून और सुधारों को रद्द किया और निरङ्कुश शासन की पुनः स्थापना कर दी। जब इङ्गलैण्ड में मज़दूर-दल का ज़ोर हुआ तो जॉर्ज लॉयड को वापस बुला लिया गया और मिश्र के साथ सन्धि की बात शुरू की। मिश्री दूत का इङ्गलैण्ड जाना, वहाँ मन्त्रि-मण्डल के सन्देशे की प्रतीक्षा करना, केवल राजनैतिक मीठी-मीठी बातें होना और उसका वापस मिश्र लौटना आदि केवल कल की बातें हैं। उनका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक नहीं है।

अरबी प्रदेश

जिस समय समर बन्द हुआ, उस समय अरब और सीरिया बादशाह हुसेन और उसके पुत्र फ़ैसल के अधिकार में थे और पलस्तीन तथा ईराक़ अङ्गरेज़ों के अधीन थे, पर इन देशों का यह बटवारा पक्का नहीं था। फ़्रान्स, इङ्गलैण्ड और इटली में जो कई गुप्त समझौते हुए थे, उनके अनुकूल इन प्रदेशों की पुनः व्यवस्था करना था। हुसैन और फ़ैसल दोनों मित्रों की सहायता से इतने उन्नत हुए थे, इसलिए वे भी इनका मुँह ताकते थे। फ़्रान्स और इङ्गलैण्ड दोनों ही चाहते थे कि रूम-सागर के पूर्वी तट पर उनका ज़ोर हो। फ़्रान्स का दाँत विशेषकर सीरिया पर था, और इङ्गलैण्ड चाहता था कि रूम-सागर के पूर्वी तट से फ़ारस की खाड़ी तक उसके लिए मैदान साफ़ होना चाहिए। भारतवर्ष पर अपना राज्य बनाए रखने के लिए तथा व्यापार की दृष्टि से यह बड़े महत्व की बात थी। यदि कभी स्वेज़-नहर का मार्ग बन्द भी हो जावे, तो इस मार्ग से अङ्गरेज़ी सेना भारतवर्ष में पहुँच सकती थी। साथ ही एक तरफ़ तुर्की और रूस तथा दूसरी तरफ़ फ़ारस को दबाए रखने का यह अच्छा मौक़ा था।

(क्रमशः)

अन्त

[श्री० हरिश्चन्द्र वर्मा, विशारद]

"चित्रा ?"

चित्रा ने सम्मुख रक्खे चित्र से दृष्टि हटाई। सुधीर खड़ा तृषित नेत्रों से उसे निहार रहा था। मुस्कराते हुए उसने कहा—सुधीर ! देखो आज मैंने कैसा अच्छा चित्र बनाया है ?

सुधीर आगे बढ़ा और चित्रा के निकट आ बैठा। मधुर दृष्टि एक बार चित्रा के सुन्दर मुख पर डाल उसने चित्र को देखा। चौंक पड़ा। वह उसी का चित्र था। चित्रा ने उसमें उसके चित्र खींचने के दृश्य को अङ्कित किया था। चित्रा की कला-प्रवीणता ने उसे मोहित कर लिया। उसका हृदय आनन्द से भर गया। मुस्कराते हुए उसने कहा—अच्छा ! इस बार मुझे ही तुमने अपनी तूलिका का शिकार बनाया ?

चित्रा हँसने लगी। बोली—कैसा है ?

सुधीर ने मुँह बिगाड़ कर कहा—कुछ बहुत अच्छा तो नहीं है।

चित्रा का मुँह उदास हो गया। विस्मयपूर्ण दृष्टि से सुधीर को देख वह अनमनी सी चित्र को देखने लगी। सुधीर हँस पड़ा। बोला—बुरा मान गईं ? अच्छा, तो लो इसकी प्रशंसा किए देता हूँ। भई वाह ! क्या अच्छा चित्र है। रङ्ग, रूप आदि सभी सुन्दर और आकर्षक हैं।

चित्रा ने कटी सी दृष्टि से सुधीर की ओर देखा, और फिर मुँह फेर कर कहा—अच्छा रहने दो।

सुधीर एक बार और भी ज़ोर से हँस पड़ा। परन्तु शनैः-शनैः उसकी हँसी अनन्त में विलीन हो गई। गम्भीर दृष्टि से चित्रा के कन्धे पर हाथ रखते हुए उसने कहा—अच्छा चलो, बाबा से निर्णय करा लें।

कन्धे पर से सुधीर का हाथ हटाते हुए चित्रा ने कहा—नहीं, मैं नहीं जाऊँगी।

"तुम मत चलो, मैं तो ले ही जाऊँगा।"

चित्रा के रोकने से पूर्व ही सुधीर उसका चित्र लेकर भागा। चित्रा भी पीछे दौड़ी। सामने कुछ दूर पर, झोपड़ी के द्वार पर, चारपाई पर बैठे चित्रा के पिता बूढ़े रामसिंह हुक्का गुड़गुड़ा रहे थे। सुधीर ने चित्र ले जाकर उनके सामने रख दिया और हाँफता हुआ बोला—बाबा ! देखिए, यह चित्र कैसा है ? चित्रा ने बनाया है।

उसी समय चित्रा भी आ पहुँची। चित्र पिता के हाथ में पहुँचा हुआ देख वह रुक गई और क्रोध-भरी दृष्टि से सुधीर की ओर देखने लगी। सुधीर अब भी हँस रहा था। चित्रकला-विशारद वृद्ध रामसिंह ने कुछ देर गम्भीर दृष्टि से चित्र को देखा। उसकी प्रत्येक बात का पूर्ण निरीक्षण करने के उपरान्त उन्होंने सिर उठा कर चित्रा और सुधीर की ओर देख कर कहा—यह चित्र बहुत अच्छा है। मैं इसे कल महाराज के पास ले जाऊँगा। इस पर भारी पुरस्कार मिलने की आशा है।

चित्रा और सुधीर सन्न रह गए। उन्हें स्वप्न में भी आशा न थी कि उनका चित्र महाराज को दिखाने योग्य होगा। अविश्वास-सूचक शब्दों में चित्रा ने कहा—नहीं बाबा! यह चित्र तो मैंने अपने लिए बनाया है। इसे महाराज न पसन्द करेंगे।

"नहीं री। तू क्या जाने! इस पर बड़ा पुरस्कार मिलेगा।"

पुरस्कार की लालसा से रामसिंह का हृदय आनन्द से खिल उठा। चित्रा ने विजयपूर्ण दृष्टि से सुधीर की ओर देखा। आश्चर्यमय दृष्टि से चित्रा की ओर देख, वह भी मुस्करा रहा था।

२

"महाराज की जय हो।"

"कौन? रामसिंह?"

"श्रीमान!"

"कहो, कैसे आए?"

"एक छोटा-सा चित्र लेकर उपस्थित हुआ हूँ देव!"

रामसिंह ने तनिक बढ़ कर, झुक कर चित्र महाराज के हाथ में दे दिया। महाराज ने चित्र देखा। चित्र क्या था, कला का अनुपम उदाहरण था। मनोहर रेखा-विन्यास, आकर्षक गाढ़े रङ्ग और सजावट की बारीकी देख कर महाराज का हृदय प्रफुल्लित हो गया। मन्त्री की ओर देखते हुए उन्होंने कहा—मन्त्री जी! देखो तो कितना सुन्दर चित्र है?

महाराज के हाथ से चित्र लेकर मन्त्री जी ने उसे देखा। तदुपरान्त एक-एक कर समस्त सामन्तों ने भी उसे देखा। सभी ने उसकी प्रशंसा की। महाराज ने कहा—रामसिंह! इस चित्र पर तुम्हें एक सहस्र मुद्रा पुरस्कार में मिलेंगे।

रामसिंह ने हर्ष से झुक कर महाराज को प्रणाम किया। उन्हें इस पर इतने पुरस्कार की आशा न थी। मन ही मन महाराज की प्रशंसा करता हुआ पुरस्कार ले वह घर को लौट गया।

रात्रि को महारानी तारा ने चित्र को देख कर महाराज से कहा—यह चित्र उस बूढ़े रामसिंह का खींचा तो नहीं प्रतीत होता।

महाराज हँसे—कैसी बात कहती हो? उसके अतिरिक्त और किसका होगा?

"यह चित्र किसी स्त्री के हाथ का बनाया हुआ है।"

महाराज ने आश्चर्य से रानी की ओर देखा।

"देखिए न इसके भावों को। प्रत्येक भाग में कमनीयता है; रेखा-रेखा से कोमलता छलक रही है। भला इतनी कोमलता कहीं उस बूढ़े के हाथ में हो सकती है?"

महाराज ने पुनः चित्र को ध्यान से देखा। यथार्थ में समस्त चित्र पर रमणीत्व की गहरी छाप थी। महारानी का चित्र-कला-ज्ञान देख कर महाराज प्रसन्न हो गए। बोले—खूब! तुमने तो वह बात ढूँढ़ निकाली, जो मुझे भी न दिखाई दी।

महारानी हँसी—रमणी, रमणी-हृदय तुरन्त पहचान सकती है।

महाराज कुछ क्षण तक उस चित्र को देखते रहे। महारानी ने कहा—कल आप रामसिंह को बुला कर उससे इस चित्र के वास्तविक चित्रकार को बुलाने को कह दीजिएगा। मैं उससे मिलना चाहती हूँ।

महाराज ने मुस्करा कर तारा की ओर देखा और पूछा—क्यों, तुम उसे देख कर क्या करोगी?

"करूँगी क्या? उससे बातचीत करूँगी, अन्य चित्र देखूँगी और पुरस्कार दूँगी।"

"और अपनी चित्रसारी के लिए कुछ चित्र न बनवाओगी?"

"बनवाऊँगी क्यों नहीं?"—तारा ने हँस कर उत्तर दिया।

महाराज भी हँस पड़े, बोले—अच्छी बात है।

३

सूर्यदेव चौथाई से अधिक मार्ग तय कर चुके थे। श्रम के कारण उनका अरुण मुख तमतमा उठा था।

घर की तिदरी में चारपाई पर बैठे रामसिंह हुक़्क़ा गुड़गुड़ा रहे थे। सामने ही दूसरी चारपाई पर सुजानसिंह बैठे थे। सुजानसिंह रामसिंह के पड़ोसी और सुधीर के पिता हैं। दोनों में किसी गम्भीर विषय पर बातचीत हो रही थी। हुक़्क़े का एक लम्बा कश खींच, नाक और मुख से धुएँ का बादल छोड़, रामसिंह हुक़्क़ा सुजानसिंह के हाथ में देकर बोले—तो भाई, जितनी जल्दी यह कार्य हो सके कर डालना चाहिए। चित्रा इस महीने पूरे १४

साल की हो गई। अब देर लगाना ठीक नहीं। फिर हम लोगों की ज़िन्दगी का क्या भरोसा? आज हैं कल नहीं।

सुजानसिंह ने हुक़्क़ा लेकर कहा—हाँ भाई! हमारा क्या? नदी किनारे के वृक्ष हैं, जिस काम से जितनी जल्दी छुटकारा पा जावें उतना ही अच्छा है।

"बसुदेव महाराज से मैंने पूछा था, वह अबकी माघ में लग्न अच्छा बतलाते हैं।"

"बस-बस, तो ठीक है, माघ में ही रक्खो।"

रामसिंह कुछ कहने ही जा रहे थे कि उनकी दृष्टि द्वार पर खड़े एक सवार पर पड़ी। सुजानसिंह की बात का उत्तर दिए बिना ही वे द्वार की ओर दौड़े। द्वार पर आस-पास के बीसियों लोग जमा थे। सिपाही ने उनकी ओर दृष्टि फेर कर पूछा—रामसिंह किसका नाम है?

सब लोग पीछे हट गए। रामसिंह हाथ जोड़े आगे आए।

"महाराज की आज्ञा है कि तुम अभी उनके सम्मुख उपस्थित होओ।"

"क्या मुझसे कोई अपराध हो गया?"

"मुझे नहीं मालूम। तुरन्त आओ।"

"जो आज्ञा।"—कह कर रामसिंह कम्पित हृदय से सिपाही के साथ हो लिए, उनके प्रतिद्वन्दी उस समय फूले न समाते थे।

जब रामसिंह दरबार में पहुँचे, तो महाराज ने कहा—रामसिंह?

रामसिंह ने गर्दन झुका ली।

"कल वाला वह चित्र किसने बनाया था?"

रामसिंह के शरीर में काटो तो रक्त नहीं। उसने हाथ जोड़ कर डरते-डरते कहा—महाराज! वह चित्र मेरी पुत्री, चित्रा का बनाया हुआ था।

महाराज मुस्कराए। "अच्छा उसे कल महल में लाओ। महारानी उससे मिलना चाहती हैं।"

रामसिंह के शरीर में जान-सी पड़ गई। "जो आज्ञा" कह वह घर को लौट आए। मार्ग भर वह यही सोचते रहे कि चित्रा महारानी से किस प्रकार मिलेगी?

४

दूसरे दिन जब चित्रा की बहली राजभवन के द्वार पर पहुँची तो दोपहर ढल चुकी थी। गर्मी कम हो जाने के कारण महारानी तारा महाराज सहित शयन-कक्ष को छोड़ महल के बीच के कमरे में जा बैठी थीं। यह कमरा पूर्णरूप से राजसी ठाठ का था। चारों ओर एक से एक बढ़ कर चीज़ें कमरे की शोभा बढ़ा रही थीं। सब के मध्य में सुन्दर कामदार गद्दों पर महाराज और महारानी विराजमान थे। दास-दासियों के साथ इसी कमरे में चित्रा ने प्रवेश किया और हाथ जोड़ कर आदरपूर्वक महाराज और महारानी के चरणों में प्रणाम किया। दोनों ने दृष्टि उठा कर उसे देखा। यौवन तथा सुन्दरता की सजीव प्रतिमा एक पन्द्रह वर्ष की युवती, सामने खड़ी थी। उसकी बड़ी-बड़ी मदमाती आँखें, आकर्षक भाव-भङ्गी, गठा कोमल शरीर देख कर महाराज का अन्तःकरण नाच उठा। वह निर्निमेष दृष्टि से उस रूप-माधुरी का पान करने लगे।

चित्रा लजा गई। उसने शिर झुका लिया। एक ओर बैठने का सङ्केत कर महारानी ने पूछा—तुम्हारा नाम चित्रा है?

"जी।"

"उस दिन वाला चित्र तुम्हारा ही बनाया है?"

"जी हाँ।"

चित्रा ने देखा, महाराज अब भी उसे उसी प्रकार देख रहे थे। उसने तनिक मुँह फेर लिया।

महारानी—यह चित्र कल्पित है या सच्चा?

इस प्रश्न से चित्रा कुछ घबराई। उसने उत्तर दिया—सच्चा।

"इसमें चित्रित यह युवक कौन है?"

चित्रा चुप रही। वह पैर का अँगूठा कुरेदने लगी। महारानी ने पुनः प्रश्न-सूचक दृष्टि से उसकी ओर देखा। चित्रा ने कठिनता से कहा—यह मेरे पड़ोसी सुजानसिंह के पुत्र सुधीर का चित्र है।

"अच्छा! इससे तुम्हारा × × ×!"

महारानी मुस्करा दीं। चित्रा के हृदय में मानो किसी ने चुटकी ली। वह झेंप गई।

"तुम्हारे खींचे और भी चित्र हैं?"

"जी हाँ।"—कह कर चित्रा ने दो-तीन चित्र महारानी को दिखलाए। तारा ने उन्हें राजा को दिखाते हुए कहा—"देखिए, कैसी अच्छी चित्रकारी है?"

उड़ती दृष्टि से उसे देख कर महाराज ने कहा—हाँ-हाँ, बहुत अच्छे चित्र हैं।

परन्तु उनका ध्यान उस समय कहीं और था। वह कभी चित्रा को देखते, कभी उसके चित्रों को और कभी चारों ओर। महारानी ने चित्र रखते हुए कहा—मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूँ। कल से तुम्हें यहीं रह कर मेरी चित्रसारी में चित्र बनाने होंगे।

सिर झुका कर चित्रा ने कहा—जो आज्ञा, परन्तु × × ×।

"परन्तु-अरन्तु कुछ नहीं। मैं तुम्हारे पिता को इसकी सूचना दे दूँगी। अब आओ, मैं तुम्हें अपनी चित्रसारी दिखलाऊँगी।"

चित्रा ने और कुछ न कहा। वह उठ खड़ी हुई। तारा ने महाराज की ओर देख कर कहा—चित्रा के पिता को इसकी सूचना दिलवा दीजिएगा।

"अच्छा!"—कह कर महाराज दरबार की ओर चले गए।

महारानी चित्रा को ले चित्रसारी की ओर चल दीं।

५

दूसरे ही दिन से चित्रा ने महारानी तारा की सुन्दर चित्रसारी को अपनी चित्रशाला बना लिया। प्रातःकाल से सन्ध्या तक और कभी-कभी रात्रि में भी वह उसी में बैठी हाथ में रङ्ग आदि लिए एक से एक बढ़ कर चित्र बनाती रहती थी। किसी चित्र में उसने महाराजा और महारानी शयन-कक्ष में बैठे बनाए थे, किसी में उन्हें वाटिका में विहार करते दिखाया था। किसी चित्र में किसी धार्मिक अथवा पौराणिक कथा का वर्णन किया था और किसी में कोई ऐतिहासिक घटना प्रदर्शित की थी। इसी प्रकार अविराम परिश्रम से वह उस चित्रसारी को सजा रही थी। महारानी स्वयं प्रतिदिन उसे देखने आती थीं। दो-दो घण्टे बैठ कर वह उसका निरीक्षण करतीं, और जो विशेष अच्छाई या बुराई उसमें प्रतीत होती, उसे अपनी रुचि के अनुकूल बनवातीं। उनके इस अदम्य उत्साह और कला-प्रेम ने चित्रसारी को शीघ्र ही कुछ का कुछ बना दिया।

अब वह जब कभी किसी को वह घर दिखातीं, तो गर्व से इतना अवश्य कह देतीं कि अभी तो काम हो रहा है, थोड़े समय उपरान्त देखिएगा कि इसकी कैसी शान होती है। चित्रकला का इससे बढ़ कर उदाहरण और कहीं नहीं मिलेगा। यही नहीं, हमारी मृत्यु के उपरान्त जब लोग इसे देखेंगे तो कहेंगे कि कभी भारत में राजपूत जाति का भी प्रभुत्व था। कभी वे भी सर्वगुण-सम्पन्न और कला-निधान थे। इन्हीं विचारों तथा उद्देश्यों को हृदय में रख कर महारानी तारा इस चित्रसारी को पूर्ण-रूप से सर्वोत्तम बनाने का प्रयत्न कर रही थीं। वह चित्रा का बड़ा आदर करती थीं। उनके कारण उसे किसी प्रकार की चिन्ता एवं दुख न हो पाता था। ऐसा सुयोग्य गुण-ग्राहक पाकर भला कौन सा गुणी अपना अहोभाग्य न समझेगा?

परन्तु भाग्य की लीला कुछ और ही थी। वह कदाचित् कला के इस अनुपम उदाहरण को पूर्ण होना देखना न चाहता था। यही कारण है, उसने अपनी कुटिल चाल चलना आरम्भ कर दी, और सफल भी हो गया वह अपनी इस कुचाल में।

रात्रि का समय था। चन्द्रदेव अपनी सुधा-सम किरणों द्वारा विश्व पर सुधा-वर्षा कर रहे थे। समस्त संसार में शान्ति छाई हुई थी। सभी निद्रा की मीठी गोद में मग्न थे। चित्रा चित्रसारी में बैठी शिव-पार्वती-विवाह का चित्र पूर्ण कर रही थी। सम्पूर्ण चित्र तैयार हो चुका था। केवल एक ओर थोड़ा रँग देना शेष रह गया था। इस समय वह इसी में व्यस्त थी। कभी-कभी दृष्टि उठा कर खिड़की से आकाश में क्रीड़ा करते चन्द्र भगवान को देख लेती और फिर काम में लग जाती थी। उस समय चित्रशाला में और कोई न था। सर्वत्र शान्ति छाई हुई थी। शनैः-शनैः चन्द्रदेव भी छिपने लगे। अब कमरे का प्रकाश भी धुँधला पड़ने लगा। फिर भी चित्रा चित्र पूरा करती रही।

चित्र पूरा होने पर जब उसने दृष्टि फेरी, तो चौंक पड़ी। पीछे महाराज खड़े तृषित नेत्रों से उसे देख रहे थे। चित्रा ने सिर झुका लिया। महाराज ने तनिक आगे बढ़ कर कम्पित स्वर में कहा—चित्रा?

चित्रा पीछे हट गई।

"चित्रा, मैं तुम्हें प्यार करता हूँ।"

चित्रा पर मानो बिजली गिरी। उसने दृढ़ स्वर में कहा—ऐसी रात्रि में महाराज! आपका मेरे पास एकान्त में आना उचित नहीं।

वह द्वार की ओर चल दी। महाराज ने दौड़ कर चित्रा का हाथ पकड़ लिया, और प्रेम-भरी दृष्टि से उसे देखने लगे। चित्रा ने बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ाने का प्रयत्न करते हुए कहा—महाराज, मुझे छोड़ दें, मैं अबला हूँ।

महाराज पैशाचिक हँसी हँस कर बोले—तुम्हें मेरी बात माननी पड़ेगी।

उन्होंने उसे आलिङ्गन करना चाहा। अपने को छुड़ाने का बलपूर्ण प्रयत्न करते हुए चित्रा ने कहा—अबला पर अत्याचार न कीजिए महाराज! अच्छा न होगा।

"अच्छा क्या न होगा? मैं तुम्हें अपनी रानी बनाऊँगा।"

चित्रा बराबर अपने को उन कठोर हाथों से छुड़ाने का प्रयत्न कर रही थी, परन्तु महाराज उसे बराबर दबाते जा रहे थे। निराश हो उसने चिल्लाना चाहा, परन्तु इसके पूर्व कि कोई शब्द जिह्वा से बाहर निकले, उसका मुख बन्द हो गया।

चित्रा छटपटाने लगी। अपने को विवश देख उसके नेत्रों से आँसू निकल आए। उसकी अन्तरात्मा ने विकल होकर कहा—भगवन्! नराधम राजा से अबला के धर्म की रक्षा करना।

सहसा पृथ्वी हिली; भयङ्कर धड़ाके के शब्द के साथ कमरे की विशाल दीवारें देखते-देखते उस नृशंस राजा पर टूट पड़ीं। पृथ्वी एक राजा के हाथों अबला प्रजा पर अत्याचार होते न देख सकी। उसकी छाती दहल गई।

चारों ओर से हाय-हाय और चीख़-पुकार की आवाज़ें आ रही थीं।

६

दिन निकला। शनैः-शनैः सूर्य भगवान प्रतिदिन की भाँति अपनी उसी दिव्य छटा से निकले। संसार निद्रा से जागा। देखा! भयङ्कर भूचाल ने काँगरा की उस विश्व-विख्यात सुन्दर घाटी को, जो कल तक अपनी चित्रकला के लिए प्रसिद्ध थी, आज राख, मिट्टी और लाशों का ढेर बना दिया है।

आज न थे वहाँ राजपूत-चित्रकला का नामोज्ज्वल करने वाले वे कलाविद चित्रकार, और न थी उनकी अद्भुत कला। आज से राजपूत-कला ही नहीं, वरन् समस्त राजपूत-वैभव सदा के लिए पृथ्वी के अनन्त-गर्भ में समा गया।

इसके तीन वर्ष उपरान्त दिल्ली के एक प्रसिद्ध बाज़ार में एक दिन एक बाईस-तेईस वर्षीय युवक एक चित्र लिए फिर रहा था। वह प्रत्येक आने-जाने वाले व्यक्ति को रोक कर वह चित्र दिखाता था। लोग उसे पागल समझ कर आगे बढ़ जाते थे। हमने भी उस चित्र को देखा था। वह चित्रा का था। मोटे अक्षरों में उसके ऊपर लिखा था 'चित्रा' और नीचे लिखा था 'अनन्त।'

हमें याद है, उसे देख कर हमने कहा—अनन्त नहीं, यही अन्त है।

*

"प्रत्येक युवक को याद रखना चाहिए कि उसके जीवन का सुख दूसरों की सहायता और कृपा पर इतना निर्भर नहीं है, जितना स्वयं उसकी शक्तियों पर। यदि बुद्धिमानी के साथ श्रमपूर्वक उद्योग किया जाय तो उसका उचित फल मिले बिना नहीं रहता। ऐसा उद्योग मनुष्य को उन्नति के मार्ग पर ले जाता है, उसके व्यक्तिगत चरित्र को प्रकट करता है और दूसरों को भी काम करने में उत्साहित करता है। चाहे सब लोग समान उन्नति न कर सकें, परन्तु हर एक आदमी अपनी योग्यतानुसार उन्नति अवश्यक कर सकता है।"

—स्माइल्स

*

"अपनी बात सुनाने के लिए किसी का हाथ मत पकड़ो; क्योंकि यदि वह तुम्हारी बात नहीं सुनना चाहता तो तुम्हें उसे पकड़ने की अपेक्षा अपनी जीभ पकड़ना चाहिए।"

—चेस्टर फ़ील्ड

"सभ्यता का व्यवहार सदा प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए मानो एक प्रशंसा-पत्र है।"

—बेकन

"स्वाभाविक सहानुभूति सुजनता का एक अङ्ग है।"

—ज्ञानेन्द्र मोहनदास

त्यागमूर्ति केलप्पन नायर

गुरुवायूर मन्दिर-सत्याग्रह के स्वनामधन्य नेता त्यागमूर्ति श्री० केलप्पन नायर का नाम आज भारत के कोने-कोने में गूँज उठा है। इस वीर मद्रासी युवक ने अपने अनुपम त्याग, जीवन-प्रण और अलौकिक दृढ़ता के बल पर अस्पृश्यता के सुदृढ़ दुर्ग की नींव हिला दी है। अपनी अहम्मन्यता और थोथी धार्मिकता के फेर में पड़ कर अपने करोड़ों हरिजन भाइयों को अस्पृश्य समझ कर, उनके साथ पशुवत् व्यवहार करने वाले रूढ़ियों के गुलामों के मुखों पर, वीरवर केलप्पन की ललकार के कारण आज हवाइयाँ उड़ रही हैं। 'कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि' का दृढ़व्रती केलप्पन की प्रतिज्ञा है कि अगर गुरुवायूर के मन्दिर में हरिजनों को जाने न दिया जाएगा, तो निराहार व्रत द्वारा प्राण विसर्जन कर दूँगा ; जीते जी अपने भाइयों के प्रति यह निदारुण व्यवहार न देख सकूँगा। अस्पृश्यता की बलिवेदी पर, श्री० केलप्पन का प्राण तक विसर्जन कर देने की प्रतिज्ञा का हाल सुन कर महात्मा गाँधी ने भी अपने प्राणों की बाज़ी लगा दी है। उनकी तो यह अटल प्रतिज्ञा है ही कि या तो इस देश में अस्पृश्यता रहेगी या मैं रहूँगा—दोनों का रहना सम्भव नहीं। तथापि उन्होंने अपने सुयोग्य शिष्य श्री० केलप्पन को आश्वासन दिया है कि इस सम्बन्ध में मैं भी तुम्हारा साथ दूँगा। फलतः दक्षिण के गुरुवायूर मन्दिर का प्रश्न आज सारे भारतवर्ष का प्रश्न हो गया है। आज सारा भारतवर्ष शोक-सशङ्कित भाव से दूसरी जनवरी की प्रतीक्षा कर रहा है। देश के बड़े-बड़े मनीषी नेता और शुभचिन्तक आज चिन्तित हैं कि उस दिन क्या होगा ? अस्पृश्यता अब नहीं रहेगी, यह तो ठीक है, परन्तु क्या वह महात्मा गाँधी और श्री० केलप्पन के प्राणों की बलि लेकर ही इस देश से विदा होगी ? बड़ी विकट समस्या है और इसका समाधान भारत के भाग्य पर ही निर्भर है। अस्तु—

आज हम श्री० केलप्पन का थोड़ा सा परिचय 'चाँद' के पाठकों को देना चाहते हैं। वे केरल प्रान्त के रत्न हैं, वहीं के एक गाँव के एक प्रतिष्ठित नायर वंश में उनका जन्म हुआ था। ये बाल्यावस्था में ही अपूर्व मेधावी सिद्ध हुए। प्रत्येक परीक्षा में बराबर सफल होते रहे। सन् १९२० में विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट होकर श्री० केलप्पन जी क़ानून की परीक्षा पास करने बम्बई गए और परिश्रमपूर्वक परीक्षा की तैयारी में लग गए। परीक्षा की तिथियाँ निकट थीं, परीक्षा-शुल्क भी दाख़िल हो चुका था। इतने में महात्मा गाँधी जी ने रौलट-एक्ट के विरुद्ध आन्दोलन आरम्भ किया। देश के नवयुवकों में एक अपूर्व जागृति का सञ्चार हुआ। लाखों विद्यार्थियों ने युनिवर्सिटियों को अलविदा कहा। श्री० केलप्पन पर भी महात्मा गाँधी के लेखों और भाषणों का प्रभाव पड़ा। देश-प्रेम की मादकता ने उनके तरुण हृदय को मतवाला बना दिया। उन्होंने पढ़ना छोड़ा, वकालत की आशा छोड़ी और लँगोटी बाँध कर देश-सेवा के कण्टकाकीर्ण क्षेत्र में कूद पड़े और अपने ओजस्वी भाषणों द्वारा नवयुवकों में एक रूह सी फूँक दी। श्री० केलप्पन पर राजद्रोह-प्रचार का मुक़दमा चला और वे सरकार के बन्दीगृह में बन्द कर दिए गए।

श्री० केलप्पन विद्वान थे, ग्रेजुएट थे। उनके दिल में देशसेवा की सच्ची लगन थी। जेल के एकान्त में बैठे-बैठे उन्होंने अपने लिए कार्यक्षेत्र चुन लिया और देश के करोड़ों अन्त्यज कहलाने वाले भाइयों की सेवा में ही जीवनोत्सर्ग कर देने का दृढ़ सङ्कल्प करके जेल से बाहर निकले।

यों तो भारत के सभी प्रान्त अस्पृश्यता के कलङ्क से कलङ्कित हैं; परन्तु इस सम्बन्ध में दक्षिण भारत के मालाबार प्रान्त को जो गौरव (!) प्राप्त है, वह शायद और किसी प्रान्त को नसीब नहीं। यहाँ के अस्पृश्य या हरिजन 'पञ्चम' या 'अतिपञ्चम' के नाम से पुकारे जाते हैं और यहाँ के उच्च वर्ण कहलाने वाले पुरुष-पुङ्गव उन्हें निकृष्ट पशु से भी गया-बीता समझते हैं। अगर किसी ब्राह्मण देवता के शरीर पर किसी अन्त्यज की छाया पड़ जाए तो उनका सारा ब्राह्मणत्व ही क़ाफ़ूर हो जाता है। इसलिए जिस रास्ते पर उच्च वर्ण वाले चलते हैं, उन पर अन्त्यज नहीं चल सकते। अति-पञ्चमों के लिए तो यह आज्ञा है कि वे अपना शरीर तक किसी उच्च वर्ण वाले को न दिखावें। फलतः इन अति-पञ्चमों को बस्ती छोड़ कर सुदूर बनों में निवास करना पड़ता है। वहाँ वे पशुओं की तरह जीवन व्यतीत करते हैं।

केलप्पन ने मालाबार के गाँवों और नगरों में भ्रमण करके पञ्चमों की इस दयनीय दुरवस्था का अध्ययन किया और उन्हें आत्म-सुधार करने के लिए प्रोत्साहन प्रदान करने लगे। इसी समय मालाबार का प्रसिद्ध 'मोपला-काण्ड' आरम्भ हुआ। किसी उच्च वर्ण के हिन्दू की कृपा से श्री० केलप्पन पर भी मामला चला और बेचारे वर्षों तक हवालात में सड़ते रहे। परन्तु अन्त में प्रमाणाभाव वश छोड़ दिए गए।

इस आफ़त से परित्राण पाते ही उन्होंने फिर अपने जीवन के महान ध्येय की ओर ध्यान दिया और उसी मालाबार प्रान्त के पावूर नामक ग्राम में "देवघर मालाबार रिकन्स्ट्रक्शन ट्रस्ट" नाम से एक अछूत-विद्यालय की स्थापना की और अछूत भाइयों को मानवोचित शिक्षा-दीक्षा प्रदान करने में लग गए। श्री० केलप्पन का यह अछूत-आश्रम मालाबार प्रान्त का विख्यात स्थान है। इसके द्वारा इस प्रान्त के अछूतों का प्रभूत कल्याण हुआ है और हो रहा है। इस विद्यालय के संलग्न एक विशाल छात्रावास और उद्यान आदि भी है। विद्या-शिक्षा के अलावा यहाँ अछूत छात्रों को नैतिक तथा धार्मिक शिक्षा भी दी जाती है। उन्हें सभ्योचित ढङ्ग से रहना सिखलाया जाता है।

इस विद्यालय की स्थापना के बाद ही वैकम का विख्यात सत्याग्रह-संग्राम आरम्भ हुआ। श्री० केलप्पन इस संग्राम के अन्यतम सेनापति थे। उन्हें फिर जेल-यात्रा करनी पड़ी। वहाँ से लौटने पर उन्होंने महात्मा गाँधी जी के साबरमती आश्रम के आदर्श पर, पय्यालौ नामक स्थान में एक और अछूत-आश्रम खोला। यह स्थान विख्यात गुरुवायूर के निकट ही है और इसी आश्रम के सत्याग्रही वीरों ने उक्त मन्दिर में प्रवेश करने का अपने जन्म-सिद्ध अधिकार के लिए वर्तमान संग्राम आरम्भ किया है, जिसके नायक हमारे चरित्र-नायक श्री० केलप्पन महोदय हैं।

गुरुवायूर का मन्दिर एक सम्पन्न संस्था है। लाखों की मिलकियत मन्दिर की सेवा-पूजा के लिए लगी है। मन्दिर के प्रधान प्रबन्धकर्ता कालीकट के एक 'ज़मोरिन' उपाधिधारी ताल्लुक़ेदार महाशय हैं। गुरुवायूर दक्षिणी हिन्दुओं का एक प्रधान तीर्थस्थान है। प्रति वर्ष लाखों यात्री यहाँ देव-दर्शन के लिए आया करते हैं। मन्दिर को इन यात्रियों द्वारा लाखों रुपए साल की आमदनी होती है।

गुरुवायूर के मन्दिर और वहाँ की मूर्ति के सम्बन्ध में, केरल प्रान्त तथा दक्षिण भारत में एक मज़ेदार कथा प्रचलित है। कहते हैं, यह मन्दिर अत्यन्त प्राचीन काल का बना हुआ है और इसमें जो मूर्ति स्थापित है, वह श्रीकृष्णचन्द्र के पिता वसुदेव जी के कुल-देवता हैं। कंस के कारागार में वसुदेव जी ने भगवान विष्णु के जिस रूप का दर्शन प्राप्त किया था, यह मूर्ति उसी के आधार पर बनी हुई है। पहले इस स्थान पर भगवान महेश्वर की मूर्ति थी, परन्तु उन्होंने वसुदेव जी के कुल-देवता की मूर्ति के लिए स्थान ख़ाली कर दिया और स्वयं अम्बापुरम् स्थान में चले गए। इस मूर्ति की स्थापना 'गुरु' और 'वायु' ने की थी। द्वापर युग के बाद, महाप्रलय से भी इन्हीं दोनों ने इस मूर्ति की रक्षा की थी और उसके स्थापन के लिए यही स्थान चुना था। इसीलिए इस स्थान का नाम 'गुरुवायूर' पड़ गया।

इसके सिवा और भी बहुत सी विचित्र कथाएँ इस मन्दिर के सम्बन्ध में प्रचलित हैं। यहाँ दर्शन के लिए जो यात्री आते हैं, वे अम्बापुरम् में जाकर भगवान महेश्वर का दर्शन भी अवश्य ही करते हैं। कारण यह है कि एक बार आदि शङ्कराचार्य महेश्वर जी का दर्शन किए बिना ही लौटने लगे, तो उनके पैरों में वात-व्याधि हो गई।

उन्हें वहीं रुक जाना पड़ा और अपनी भूल भी उन्हें मालूम हो गई। अन्त में वे किसी तरह मन्दिर में पहुँचे और देवता का दर्शन करके उनसे क्षमा-प्रार्थना की। तब भगवान 'विश्वमूर्ति' ने उन्हें दर्शन देकर रोग-मुक्त किया।

मन्दिर की स्थापना के बाद, पाण्ड्य-वंशीय किसी नरेश को ज्योतिषियों ने बताया कि आपकी मृत्यु साँप के काटने से होगी। यह सुन कर राजा ने अपना शेष जीवन परमार्थ-चिन्तन में व्यतीत करने का विचार किया और तीर्थ-दर्शन करता हुआ गुरुवायूर आ पहुँचा। उस समय यह मन्दिर अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण हो गया था। राजा के मन में उसके जीर्णोद्धार का विचार उत्पन्न हुआ। वह वहीं ठहर गया और मन्दिर की मरम्मत कराने लगा। इतने में ज्योतिषियों की बताई हुई राजा की मृत्यु की तिथि टल गई। उसने ज्योतिषियों को बुला कर इसका कारण पूछा, तो उन्होंने बताया कि आप देव-कार्य में लगे थे, इसी से साँप के काटने पर भी आपकी मृत्यु नहीं हुई। ज्योतिषियों ने राजा के शरीर पर सर्प-दंशन का चिन्ह भी दिखा दिया। राजा को इससे स्वाभाविक प्रसन्नता हुई और उसने मन्दिर के जीर्णोद्धार के बाद देवता की पूजा-आर्चा के लिए एक बहुत बड़ी जागीर भी दे दी।

इसके सिवा टीपू सुलतान ने भी मन्दिर को कई गाँव दान दिए थे। कहते हैं, एक बार सुलतान ने मालाबार पर चढ़ाई की थी। पुजारियों ने सोचा, कहीं सुलतान आकर मन्दिर को नष्ट-भ्रष्ट न कर दे। इसलिए उन्होंने मूर्त्ति को त्रिवाङ्कुर के राज्य-मन्दिर में स्थानान्तरित कर दी। सुलतान की फ़ौज ने मन्दिर को मूर्त्तिहीन पाया तो उसमें आग लगा दी। परन्तु दैव-कृपा से उसी समय मूसलधार वृष्टि होने लगी और मन्दिर बच गया। परन्तु इधर सुलतान को वात-रोग हो गया। इस तरह उसे देवस्थान का महत्व मालूम हो गया और उसने उपर्युक्त कई गाँव मन्दिर को दान देकर परित्राण पाया। कुछ दिन बाद त्रिवाङ्कुर से लाकर मूर्त्ति की पुनः स्थापना की गई।

तात्पर्य यह कि गुरुवायूर का मन्दिर इस प्रान्त का एक महत्वपूर्ण स्थान है, इसलिए श्री० केलप्पन की धारणा है कि जब तक इस बड़े और विख्यात मन्दिर में अन्त्यजों को जाने का अधिकार नहीं प्राप्त होगा, तब तक वे छोटे-छोटे मन्दिरों में भी नहीं जाने दिए जाएँगे। यही सोच कर उन्होंने अपने सत्याग्रही सैनिकों के साथ सत्याग्रह आरम्भ कर दिया। अचल-अटल भाव से मन्दिर के सिंहद्वार पर बैठ गए और घोषणा कर दी कि "बैठे हैं तेरे दर पै तो कुछ करके उठेंगे।"

यह दृश्य देखने के लिए मन्दिर के सामने मेला सा लग गया। दूर-दूर से लोग यह अपूर्व दृश्य देखने के लिए आने लगे और वीरवर केलप्पन की दृढ़ता देख कर दाँतों तले अँगुली दबा कर रह गए। अधिकार-मदोन्मत्त ज़मोरिन भी दृढ़ थे। उन्होंने भी अपने देवता को अछूत-स्पर्श से बचाने के लिए अटल प्रतिज्ञा कर ली। इधर केलप्पन की अवस्था उत्तरोत्तर ख़राब होने लगी। उनके मित्रों, सहकर्मियों और हितैषियों ने समझा-बुझा कर इस कार्य से विरत करने की चेष्टा की। परन्तु श्री० केलप्पन ने तो यह सत्याग्रह अपने अन्तस्तल की प्रेरणा से आरम्भ किया था। उन्होंने हँस कर लोगों को उत्तर दिया—"यह सम्भव नहीं, क्योंकि यह अन्तरात्मा का आदेश है। मैं उस आदेश का पालन करने को विवश हूँ।"

परन्तु अन्त में अपने गुरु महात्मा गाँधी के आदेशानुसार उन्होंने अपना उपवास स्थगित कर दिया। अब देखिए, आगामी २ जनवरी को क्या होता है?

श्री० केलप्पन तो आजकल मालाबार के गाँवों में भ्रमण कर रहे हैं। उनका उद्देश्य है जनता को हरिजनों के उद्धार के लिए तैयार करना।

उपर्युक्त स्तुत्य कामों के सिवा श्री० केलप्पन ने राजनीति-क्षेत्र में भी अच्छा काम किया है। आप अच्छे लेखक और सुवक्ता भी हैं। हमारा विश्वास है कि वे अपने उद्देश्य में सफल होंगे।

—अभयङ्कर वर्मा

❀ ❀ ❀

रोमन साधु का आत्मोत्सर्ग

आज से प्रायः दो हज़ार वर्ष पूर्व इटली देश का रोम नगर उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच गया था। रोम के विजयी वीरों ने उस समय सारे यूरोप पर अपनी विजय-पताका फहरा दी थी। इसके सिवा

सभ्यता, शिल्प-कला, व्यवसाय-वाणिज्य और साहित्य-चर्चा आदि सभी विषयों में रोम ने अपनी असाधारण उन्नति कर ली थी। परन्तु इन तमाम बातों के साथ ही रोमवासियों की विलासिता भी चरम सीमा पर पहुँच गई थी। अतुल ऐश्वर्य के अधिकारी और विजयी राष्ट्र होने के कारण वे अपना अधिकांश समय खेल-तमाशे और मनोरञ्जन में व्यतीत कर देते थे। मनोरञ्जन की सामग्री का भी रोम में अभाव नहीं था। तरह-तरह के खेल-तमाशे वहाँ रोज़ ही हुआ करते थे। परन्तु हमें तो यहाँ रोमवासियों के 'कलीसियम' नामक क्रीड़ागार का थोड़ा सा वर्णन करना है।

यह अतीव निष्ठुरतापूर्ण राक्षसी खेल सारे रोम में प्रचलित था। इसके लिए विपुल अर्थ भी बरबाद होता था। इस खेल में जो निष्ठुरता होती थी, उसके स्मरण मात्र से हृदय दहल उठता है। ख़ास रोम नगर में वहाँ के अधिवासियों के मनोरञ्जनार्थ एक बृहत् 'कलीसियम' बना था। इसका व्यास प्रायः पन्द्रह बीघे का था और इसकी 'गेलरियों' में प्रायः नब्बे हज़ार आदमी बैठ कर तमाशा देख सकते थे।

पहले तो इन 'कलीसियमों' में मल्ल-युद्ध तथा आज-कल के सर्कसों की तरह के खेल हुआ करते थे। परन्तु ज्यों-ज्यों रोम वालों की विलासिता और पाप-प्रवृत्ति बढ़ने लगी, त्यों-त्यों उनके मनोरञ्जन का रूप भी वीभत्स होने लगा। अपनी घृणित आमोद-स्पृहा को चरितार्थ करने के लिए वे वनों से सिंह, बाघ, भालू और गेण्डा आदि जानवरों को पकड़ मँगवाते और उनके साथ अपने ग़ुलामों तथा विजित देशों से लाए हुए क़ैदियों को लड़ने के लिए बाध्य करते। एक ओर इन हिंसक प्राणियों का दल होता और दूसरी ओर निरीह, निःशस्त्र, पराधीन मनुष्यों का। इस निष्ठुरतापूर्ण खेल का परिणाम क्या होता, यह स्वयं ही अनुमान किया जा सकता है। कभी-कभी हिंसक जन्तुओं से लड़ने के लिए 'ग्लैडियेटर' नाम के पहलवान भी तैयार किए जाते थे। इन्हें मामूली हथियार लेकर ख़ूँख़ार जन्तुओं से लड़ने के लिए विवश होना पड़ता था। ये 'ग्लैडियेटर' भी उन्हीं अभागे मनुष्यों में से बनाए जाते थे, जो या तो रोमनों के ज़र-ख़रीद ग़ुलाम होते थे, या किसी विजित देश से बलपूर्वक बन्दी बना कर लाए जाते थे। अपने प्रभुओं के मनोरञ्जनार्थ कभी-कभी उन्हें आपस में भी लड़ कर प्राण विसर्जन करना पड़ता था। हिंसक जन्तु के भीषण आघात से या अपने प्रतिद्वन्दी की मार से अधमरा होकर, उनका चिल्लाना और तड़पना दर्शकों के लिए एक मनोरञ्जन और प्रसन्नता की बात होती थी। जिस समय ये 'ग्लैडियेटर' नामधारी अभागे किसी सिंह या चीते के जबड़ों में पड़ कर छटपटाते और चीख़ उठते थे, उस समय पशु-प्रकृति दर्शक नर-नारी आनन्दोल्लास से नाचने लगते थे। केवल पुरुष ही नहीं, अत्यन्त अनुताप का विषय है; कि रोमन स्त्रियाँ भी यह हृदय-विदारक दृश्य देख कर प्रसन्न होती थीं।

रोम के इतिहास में इस 'कलीसियम' नामक खेल का वर्णन पढ़ कर रोमाञ्च हो जाता है और मनुष्य की भीषण प्रकृति का अनुभव करके अक़्ल हैरान हो जाती है। उफ़! उस समय रोमनों की मनुष्यता का कितना पतन हो गया था! बस, अगर मानव-मनोवृत्ति की अधोगति की पराकाष्ठा देखनी हो तो रोमनों के इस खेल का वर्णन पढ़िए!

सम्राट क्लेडियस के समय में रोमनों ने एक बड़ी भारी लड़ाई जीती। इस विजय के उपलक्ष में सारा देश आनन्दोन्मत्त हो उठा और लगातार एक सौ तेईस दिनों तक 'कलीसियम' क्रीड़ा का आयोजन किया गया। इस दीर्घकाल व्यापी राक्षसी लीला का विशेष वर्णन न करके केवल इतना ही लिखना यथेष्ट होगा कि इस खेल नामधारी नारकीय यज्ञ में ११,००० हिंसक पशुओं और १०,००० ग्लैडियेटरों को अपने प्राणों की आहुति देनी पड़ी थी और एक बार पाँच सौ सिंहों के साथ कई सौ ग्लैडियेटरों ने लगातार पाँच दिनों तक लड़ कर प्राण विसर्जन किया था। इन पाँच दिनों के लगातार 'नर-सिंह-संग्राम' में सिंह तो सभी मर गए, परन्तु ग्लैडियेटर कितने मरे, इसकी संख्या देना, शायद रोम के इतिहास-लेखकों को याद न रहा!

अस्तु, इस राक्षसी लीला का अन्त कैसे हुआ, सुनिए। जिस समय रोमनों की विलासिता और पाप-प्रवृत्ति सीमोल्लङ्घन करने जा रही थी, ठीक उसी समय सेनापति एलारिक ने किसी प्रबल पराक्रान्त शत्रु के आक्रमण से रोम की रक्षा की। फलतः सारे देश में आनन्दोत्सव मनाया गया। ऐसे शुभ अवसर पर कली-

सियम-क्रीड़ा तो अत्यावश्यक थी ही। उसका भी आयोजन हुआ। पहले कुछ निर्दोष खेल दिखाए गए। परन्तु दर्शक-मण्डली इतने से ही सन्तुष्ट नहीं हुई। उनके आग्रह से हिंसक पशुओं के एक दल से युद्ध करने के लिए अभागे ग्लैडियेटरों का एक दल बुलाया गया। पिशाच-प्रकृति दर्शक निहाल हो गए। खेल आरम्भ हो गया। क्षुधित सिंह और व्याघ्र ग्लैडियेटरों पर टूट पड़े और तीक्ष्ण दाँतों तथा नखों से उनके शरीर को क्षतविक्षत करने लगे। भीषण चीत्कार से वायुमण्डल गूँज उठा। निर्दोष मनुष्य तड़पने लगे। यह महा वीभत्स दृश्य एक सहृदय वृद्ध साधु से न देखा गया। उसने उठ कर इस नारकीय खेल का प्रतिवाद किया। दर्शकों तथा ऐसे नरसंहारकारी खेल का आयोजन करने वालों को धिक्कारने लगा। उसने कहा—"रोमवासियो, यह तुम्हारा मनोरञ्जन है? ओह! तुम कितने निष्ठुर, कितने हृदयहीन हो गए हो! मनुष्य होकर निर्दोष हत्या से तुम आनन्दित हो रहे हो! भाइयो, निरपराध मनुष्यों के रक्त से धरित्री को कलङ्कित मत करो। ईश्वर से डरो। इसे कदापि न सोचो कि वह तुम्हें योंही छोड़ देगा। ईश्वर के न्यायालय में तुम्हें अपनी इस क्रूरता का भीषण फल भोगना पड़ेगा। एक बार ठण्डे दिल से अपनी क्रूरता पर विचार करो।"

साधु का हितोपदेश अभी समाप्त भी नहीं होने पाया था कि दर्शक-मण्डली चिल्ला उठी—निकालो, मारो, हटाओ, इस रङ्ग में भङ्ग डालने वाले बेवक़ूफ़ को!

सैकड़ों नर-राक्षस साधु को वहाँ से धक्के देकर मार भगाने के लिए उठ पड़े। परन्तु वह डरने या रुकने वाला मनुष्य न था। वह अचल-अटल भाव से अपने स्थान पर खड़ा रहा। उसने कातर कण्ठ से दर्शकों के निष्ठुर हृदयों में करुणा का सञ्चार करने की चेष्टा की। दर्शक-मण्डली में एक बार खलबली मच गई। मारो, इस कमबख़्त को। देखते-देखते महात्मा पर ईंटों, पत्थरों और शस्त्रास्त्रों की वर्षा होने लगी। साधु का शरीर क्षत-विक्षत हो गया। शरीर से रक्त की धाराएँ बह चलीं। परन्तु वह कातर कण्ठ से इस खेल को बन्द करने की प्रार्थना करता ही रहा। उसने अपनी रक्षा की कोई चेष्टा न की। उसने किसी से नहीं कहा कि मुझे न मारो! उसकी तो एक ही रट थी कि इस खेल को बन्द करो। मनोरञ्जन के नाम पर मनुष्यों की हत्या करने से बाज़ आओ!

साधु का जराजीर्ण शरीर कितनी मार बर्दाश्त कर सकता! वह भूमि पर गिर गया और सदा के लिए आँखें बन्द कर लीं। वह मर गया, परन्तु उसके चेहरे पर विजयोल्लास के चिन्ह मौजूद थे!

❀ ❀ ❀

क्षण भर पहले निर्दोष मनुष्यों की मृत्यु-यन्त्रणा-जनित विकलता देख कर जो आँखें उल्लसित हो उठती थीं, वे साधु का अपूर्व आत्म-त्याग देख कर विगलित हो उठीं? चारों ओर हाहाकार मच गया। इस पाप के प्रायश्चित-स्वरूप समस्त रोम-राज्य से वह पैशाचिक खेल भी सदा के लिए विलुप्त हो गया।

—अन्तर्वेदी

❀ ❀ ❀

बच्चों की आदतें

आदतों की सत्ता पर ही हमारे कार्य निर्भर हैं या बुद्धि की सत्ता पर? बुद्धि की श्रेष्ठता सबको मालूम है, परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि सब लोग हर समय बुद्धि से ही काम नहीं लिया करते। कोई ऐसी शक्ति भी है, जो कभी-कभी बुद्धि की अनुपस्थिति में भी हमारे कार्यों में सहायता किया करती है और प्रत्येक दशा में बुद्धि की मदद करने को तत्पर रहती है। कदाचित् यह शक्ति अपना कार्य करना छोड़ दे तो बुद्धि के ऊपर भारी उत्तरदायित्व आ सकता है। परन्तु प्रकृति ने एक-दूसरे की सहायता के लिए ऐसी सहायक शक्तियाँ प्रदान की हैं, ताकि एक की अनुपस्थिति में दूसरी शक्ति कार्य कर सके। और हमारा कार्य बिना किसी रुकावट के चल सके। इस शक्ति को हम आदत के ही नाम से पुकार सकते हैं। संसार में ६० फ़ी सदी कार्य आदतों से ही हुआ करते हैं। इसलिए हमारे सामने यह गम्भीर प्रश्न है कि सन्तान में अच्छी आदतों का समावेश किस तरह हो सकता है। शिक्षा का उद्देश्य भी यही है कि बच्चे अच्छी आदतें सीखें, गुणवान नागरिक बनें। इस स्थल पर यह स्मरण रखना चाहिए कि शिक्षा-सुधार का आन्दोलन बहुत वर्षों से हो रहा है। परन्तु स्कूलों और कॉलेजों से निकले हुए लड़कों की आदतें सन्तोषजनक नहीं हैं। शिक्षा के पुजारी आदर्श राष्ट्र की रचना

किताबों की खोखली दीवारों पर ही करना चाहते हैं। परन्तु हमारे युवक आदर्श चरित्र के बिना कभी अच्छे नागरिक नहीं बन सकते और आदर्श चरित्र होने के लिए अच्छी आदतों की आवश्यकता है।

नवजात शिशु माता-पिता के दर्शन करने से पहले ही उनके कुछ संस्कारों को अपना लेता है और बहुत से संस्कारों को पैदा होने के पश्चात् धीरे-धीरे अपनाता जाता है। परन्तु इसे संस्कार कहना उचित नहीं। क्योंकि यह शब्द बहुवाचक है। अर्थात् इसमें बहुत सी वृत्तियों और प्रवृत्तियों का समावेश होता है। इसलिए हमको चाहिए कि मनोविज्ञान के कुछ निश्चित शब्द काम में लावें। अस्तु, बच्चे का स्वभाव दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है। प्रथम वृत्ति और द्वितीय प्रवृत्ति। आदतों की ऊँची और नीची दीवार वृत्तियों और प्रवृत्तियों पर ही खड़ी हो सकती है। तत्ववेत्ताओं ने इस विषय पर बहुत-कुछ छान-बीन की है। परन्तु उनका कार्य अभी तक अपूर्ण है और यह कभी सम्भव नहीं कि वे वृत्तियों और प्रवृत्तियों की जाँच पूर्णतया कर सकें। परन्तु उनके परिश्रम के लिए हमको बहुत कृतज्ञ होना चाहिए। वृत्तियों के अतिरिक्त कुछ प्रोफ़ेसर एम० डौगल की बताई हुई आन्तरिक प्रवृत्तियाँ भी होती हैं। उनमें मुख्यतः बच्चे की आदत बनाने वाली अनुकरण प्रवृत्ति अधिक प्रभावशाली होती है। ऐतिहासिक घटनाएँ प्रमाणित करती हैं कि शिक्षा का कार्य भी अधिकतर अनुकरण प्रवृत्ति पर ही चलता है। दैशिक उन्नति भी इसी पर निर्भर है। बच्चे की वृत्ति और प्रवृत्ति द्वारा ही उसकी आदतों के बनने का कार्य परिचालित होता है। सबसे पहले आन्तरिक प्रवृत्तियों द्वारा ही बच्चों की आदतें बनती हैं। इसलिए पहले उन्हीं के सम्बन्ध में कुछ लिखना उचित होगा।

हरबर्ट स्पेन्सर ने लिखा है कि बच्चे की शिक्षा का ढङ्ग और कार्यक्रम मनुष्य जाति की शिक्षा के अनुसार ही होना चाहिए। व्यक्तिगत प्रारम्भिक ज्ञान उसी रास्ते को ग्रहण कर सकता है, जिसको मनुष्य जाति के ज्ञान ने ग्रहण किया हो। इस दार्शनिक विचार की सहायता से हम अधिक साहस के साथ कह सकते हैं कि मनुष्य जाति के ज्ञान का विकास और उसकी सभ्यता वृत्ति और प्रवृत्ति पर ही निर्भर है। ज्ञान की अनुपस्थिति में बच्चे का प्रत्येक कार्य उसकी आन्तरिक प्रवृत्तियों द्वारा ही होता रहता है। उपर्युक्त अनुकरण-प्रवृत्ति के साथ-साथ खेल तथा दुःख और सुख की प्रवृत्तियाँ भी होती हैं।

इस सम्बन्ध में गम्भीर खोज करने से पहले पाठकों को यह समझ लेना चाहिए कि वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ दोनों ही बच्चे को प्रिय होती हैं। जो चीज़ प्रिय होगी, बच्चा उसको बार-बार करने का प्रयत्न करेगा और जो चीज़ अप्रिय होगी, वह उसका त्याग करेगा। मान लीजिए, बच्चा मीठा बहुत पसन्द करता है और कड़वी वस्तु का त्याग करता है। क्योंकि मीठा उसको प्रिय लगता है। इसलिए हम प्रायः देखते हैं कि बच्चों को मीठा खाने की आदत पड़ जाती है। पर मीठा खाने की आदत ख़राब है, यद्यपि मीठा नियमित मात्रा में स्वास्थ्य के लिए लाभदायक भी है। अस्तु, आदत का कार्य बच्चे की रुचि पर अधिक निर्भर होता है। जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है कि बच्चे की सबसे प्रारम्भिक प्रवृत्ति जिसका कार्य प्रथम ही शुरू हो जाता है, वह अनुकरण प्रवृत्ति होती है। अनुकरण प्रवृत्ति मिश्रित शक्ति होने के कारण उसमें कुछ वृत्तियाँ भी कार्य करती रहती हैं। इन वृत्तियों और प्रवृत्तियों का कार्य बच्चे के जन्म से कुछ पहिले ही किसी दशा में शुरू होता है। इसलिए हम कह सकते हैं कि बच्चे की आदतों का भार अधिक से अधिक माता और पिता पर होता है। जैसी आदतें माता और पिता में होंगी, उनका अनुकरण बच्चा अवश्य ही करेगा। हमारे माता और पिता अगर सन्तान को अच्छी आदतों से सम्पन्न करना चाहते हैं, तो उनको चाहिए कि वह भी बच्चे की अभिलाषा करने के पहले अपनी आदर्श आदतें बना लें। मैं ज़ोरदार शब्दों में कहना चाहता हूँ कि बच्चा अपने माता और पिता का तद्वत् स्वरूप होता है। किसी स्थल पर बर्क लिखता है कि उदाहरण ही मनुष्य जाति का विद्यालय है। वह किसी अन्य तरह से नहीं सीख सकते हैं। एक विद्वान लिखता है कि "Like begets like," अब हमको यह देखना चाहिए कि बच्चे का अनुकरण-मण्डल किस प्रकार प्रिय हो सकता है, जिससे उसको अपनाने और बार-बार कार्य में लाने में किसी प्रकार की रुकावट न हो। कुछ वृत्तियाँ स्वयं ही श्रेष्ठ होती हैं। उदाहरणार्थ, अगर बच्चे में वस्तु-निर्माण प्रवृत्ति प्रभाव-

शाली है तो माता-पिता को चाहिए कि बच्चे के कार्य में केवल कठिनता हल करने का प्रयत्न करें। ऐसी प्रवृत्ति प्रायः उन्हीं बच्चों में होती है, जो आगे चल कर निर्माण-कला में दक्षता प्राप्त करते हैं और ऐसी ही प्रवृत्ति वाले बच्चे कभी आविष्कारक हो जाते हैं। परन्तु किसी-किसी बच्चे में हठ-वृत्ति अधिक बलवती होती है। जिस बच्चे में यह वृत्ति अधिक मात्रा में होती है, उसकी इच्छा-शक्ति अधिक कार्य करने वाली होती है। वह बच्चा परिश्रमी और निर्भय होता है। इस वृत्ति वाले बच्चे को सोचने और कार्य करने की—दोनों ही शक्तियाँ बलवान होती हैं। सबसे अच्छा उपाय ऐसी अधिक वृत्ति वाले बच्चे के लिए यही है कि उसको ऐसे स्पर्श-मण्डल में अधिक रक्खा जाय, जिनमें प्रतिरोधी विषय न्यून से न्यून मात्रा में पाए जावें। कदाचित यह असम्भव हो, उस समय बच्चे का अनुभव प्राप्त करने की गति को उत्तेजित कर देना चाहिए। पश्चात् बच्चा स्वयं ही निर्णय कर सकता है कि कौन सा कार्य सत्य-रूप से उसके लिए हितकारी है और कौन सा अहितकारी। मनुष्य-जाति ने अभी तक लाभदायक और हानिकारक पदार्थों की परीक्षा अनुभव से की है। अनुभव द्वारा ही उनको पृथक्-पृथक् श्रेणी में रक्खा है। जैसे, अगर बच्चा गरम लैम्प को स्पर्श करने का हठ करता है और उसे रोकने में प्रत्येक उपाय असफल होते हैं, तो सब से अच्छा उपाय यही है कि बच्चे को गरम लैम्प का स्पर्श अपनी उपस्थिति में करने का अवकाश दिया जाय। परन्तु वह अवकाश केवल अनुभव-रूप ही होना चाहिए। कभी-कभी यह भी देखा गया है कि कुछ बच्चे दूसरों के अनुभव को देख कर हानिकारक पदार्थों से बचते हैं। ऐसे उदाहरण प्रायः उन्हीं बच्चों के होते हैं, जिनकी ज्ञानेन्द्रियाँ विशेष सूक्ष्म शक्तियों और पदार्थों के गुणों का आस्वादन कर सकती हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि बच्चों को अथवा बड़ों को वे ही पदार्थ प्रिय होते हैं, जो प्राकृतिक रूप से लाभदायक होते हैं। परन्तु हम न तो इस मत का खण्डन ही कर सकते हैं और न स्वीकार ही कर सकते हैं। खनिज पदार्थों में किसी प्रकार यह मत घट सकता है। घृत, दूध, मधु और फल जैसे अनार, नारङ्गी, सेब और आम इत्यादि। यह पदार्थ जितने खाने में स्वादिष्ट होते हैं, उतने ही स्वास्थ्य के लिए भी अच्छे होते हैं, पर मात्रा से अधिक उपयोग करने से कभी-कभी हानिकारक भी होते हैं। भौतिक शक्तियों में इस मत का कोई सम्बन्ध नहीं दीख पड़ता। परिश्रम यद्यपि दुःखदाई होता है, लेकिन उसका फल मीठा होता है। अतः यह मत कुछ-कुछ खनिज पदार्थों में समर्थन करने के योग्य है। अस्तु, इस थोड़े से विषयान्तर के पश्चात् हम अपने मुख्य विषय पर आते हैं।

बच्चों के लिए खेल बहुत प्रिय होता है। खेल-कूद में वे दूसरे बच्चों के साथ बहुत सी आदतें अपना लिया करते हैं और जो आदतें बचपन में पड़ जाती हैं, उनका छूटना जीवन भर असम्भव हो जाता है। खेल बचपन में स्वास्थ्य और शिक्षाप्रद होता है। जो बच्चे कम खेलते हैं, वे दोनों विषयों में कमज़ोर रहते हैं। इसलिए हमको दोनों ही विषयों की तरफ़ अधिक से अधिक ध्यान देना चाहिए। बच्चे का जीवन तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है। पहिला भाग डेढ़ या दो वर्ष से ५ या ६ वर्ष तक, दूसरा भाग ७ वर्ष से १२ वर्ष तक और तीसरा १३ वर्ष से युवावस्था के कुछ समय पहले तक। बच्चे के पहले और दूसरे भाग में आदतें बनने का कार्य विशेषतया पूर्ण हो जाता है। जो विषय बच्चों को प्रिय लगते हैं, वे उनकी आदत में दाख़िल हो जाते हैं। परन्तु जो विषय उनको अप्रिय लगते हैं, अथच वे अच्छे हैं, उनको चेष्टा करके बच्चे की आदत में सन्निवेशित कर देना चाहिए। बच्चों की आदतों का साप्ताहिक कार्य-क्रम होना चाहिए और इसको प्रत्येक दूसरे महीने में दुहराना चाहिए; जब तक कि अमुक आदत पूर्णरूप से पड़ न जावे। बहुत से बच्चों को प्रातः-काल उठने में दुःख होता है। इस आदत से बच्चों को बहुत हानि होती है। यह आदत माता और पिता की शिथिलता का परिणाम है। क्योंकि वे बच्चों को रात के ९ या १० बजे से पहिले सुलाने का प्रयत्न नहीं करते। जो बच्चा ९ या १० बजे सोवेगा, वह स्वयम् ही प्रातःकाल सूर्योदय के पश्चात् उठेगा। बच्चा प्रातःकाल तभी उठ सकता है, जब कि वह रात्रि को ७ या ८ बजे सोवेगा। अगर माता-पिता एक सप्ताह तक बच्चे को शीघ्र सुलाने का प्रयत्न करें, तो वह प्रातःकाल अवश्य उठ सकेगा। जिस बच्चे को हम प्रातःकाल उठाना चाहते हैं, उसको दिन में बहुत कम सोने देना चाहिए। सोते

हॉलीवुड की एक प्रसिद्ध सिनेमा-स्टार—मिस लॉरेटा यङ्ग

समय उसको प्रातःकाल उठने का स्मरण करा देना चाहिए। अगर बच्चा अपने जीवन के दूसरे भाग में है, तो उसको प्रातःकाल उठने के लाभों को मनोरञ्जक रीति से समझा देना चाहिए। यह कार्य विशेषतः खेल-स्वरूप होना चाहिए। स्मरण रखना चाहिए कि प्रत्येक विषय के दो स्वरूप होते हैं; एक प्रिय और दूसरा अप्रिय। कोई विषय उसी समय तक अप्रिय रहता है, जब तक बुद्धि का उसमें प्रवेश नहीं होता। उदाहरणार्थ, हमारी प्रारम्भिक शिक्षा-प्रणाली पहिले बहुत कठोर थी। बच्चे विद्यालय का नाम सुन कर डरा करते थे। अध्यापकों की निर्दयता और शिक्षा-प्रणाली की नीरसता ही इसका मुख्य हेतु थी। परन्तु बुद्धि के विकाश ने उपरोक्त दोनों ही कठोरताओं को बहुत कम कर दिया है। किण्डर गार्डन कक्षाएँ नित्य-प्रति प्रिय होती जाती हैं। अध्यापकों को भी दण्ड-नीति का कम उपयोग करना पड़ता है। अस्तु, उपरोक्त कथन प्रमाणित करता है कि बुद्धि-बल से प्रत्येक विषय प्रिय और मनोरञ्जक हो सकते हैं और बच्चा उसको बार-बार दुहराने के लिए स्वयम् ही बाध्य होता है, क्योंकि मनोरञ्जकता का आस्वादन वह बार-बार दुहराने में ही कर सकता है। जिस विषय को बार-बार दुहराया जायगा, उसका मस्तिष्क के बहुत से अवयवों पर इतना अधिक प्रभाव पड़ेगा कि ज्ञानकूप जो सविस्तार रूप से मस्तिष्क में पृथक्-पृथक् पड़े रहते हैं, बार-बार एक ही विषय से प्रभावित होकर आपस में मिल जाते हैं। और ज्ञानकूप का आपस में मिलना ही आदत की नींव जमाना है और उसी समय तक ज्ञानकूपों में रक्त का प्रसार होता रहता है, जब तक हम अमुक आदतों से कार्य किया करते हैं। दूसरे शब्दों में यों कहना चाहिए कि ज्ञानकूप उसी समय तक जीवित रह सकते हैं, जब तक हम कार्य करते रहते हैं। —रामसहाय शर्मा

❀ ❀ ❀

उपनिषद् का सिद्धान्त

वेदों का निचोड़ 'वेदान्त' कहलाता है और वेदान्त का मूल आधार उपनिषद् नाम से प्रसिद्ध है। उपनिषदों की संख्या दो सौ से ऊपर बताई जाती है। परन्तु इनमें अकबर के समय की बनी अल्लोपनिषद् का भी समावेश हो जाता है। साधारणतया एक सौ आठ उपनिषदें मानी जाती हैं, परन्तु इनमें भी सब प्राचीन नहीं विदित होतीं। मुख्य उपनिषदें, ईश, केन, कठ, प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय, तैत्तिरीय, छान्दोग्य तथा बृहदारण्यक—ये दस हैं। उपनिषद् का अर्थ है उपनिषद्यते-प्राप्यते ब्रह्मविद्या अनया इति उपनिषद्—अर्थात् जिससे ब्रह्म विद्या प्राप्त हो वह उपनिषद् है। दूसरा अर्थ यह है, उप-नितरां सादयति—अविद्यां विनाशयतीत्युपनिषद् अर्थात् ब्रह्म के समीप पहुँचने के लिए अविद्या रूपी अन्धकार को जो नाश करे वह उपनिषद् है। ऊपर जिन उपनिषदों का नामोल्लेख हुआ है, उनमें ईश, केन, और कठ में सत्व, रज, तथा तम्—इन तीन गुणों का और प्रश्न, मुण्डक, माण्डूक्य, ऐतरेय और तैत्तिरीय में पञ्चभूतों* के सूक्ष्मातिसूक्ष्म तत्वों पर विचार किया गया है। छान्दोग्य में प्राण-विद्या और आदित्य-विज्ञान का प्रधानतया वर्णन किया गया है। प्रश्नोपनिषद् आदि में आदित्य भोक्ता और चन्द्र भोग्य कहा गया है। भोक्ता संसार का उत्पन्न, पालन और संहार करता है और यही भोक्ता और भोग्य सांख्य शास्त्र का पुरुष-प्रकृति बन कर विश्व का सृजन करते हैं।

उपनिषदों में चार विषयों का विशेष विवेचन है। आत्म-व्यापकता, देहान्तर-ग्रहण, सृष्टितत्व और लयरहस्य, ये चारों ब्रह्मविद्या के उपदेश से भरे पड़े हैं। एक प्रकार से ब्रह्मात्मैक्य मूल है और ये चारों विषय उसकी शाखाएँ हैं। शाहजहाँ के बेटे दारा ने उपनिषदों का अनुवाद फ़ारसी भाषा में कराया था। जर्मनी के प्रसिद्ध प्रोफ़ेसर शोपेनहर उपनिषदों का अध्ययन कर ऐसे मुग्ध हुए और यहाँ तक कह डाला कि उपनिषदें मुझे जीवन-काल में सान्त्वना देती हैं और मरने के बाद भी देंगी।

मनुष्य-मात्र की उन्नति तीन प्रकार की है। ऐहलौकिक, पारलौकिक और आध्यात्मिक। उपनिषद् आध्यात्मिक उन्नति के अन्तरङ्ग साधन पर विचार करना तथा विचार किए हुए पदार्थ को समाधि में लाना, इन सब बातों का उपदेश देती है और इससे भिन्न सब विद्याएँ ऐहिलौकिक तथा पारलौकिक उन्नति के बहिरङ्ग साधन कर्मकाण्ड और उपासना का उपदेश देती हैं। इन

* आकाश, वायु, अग्नि, जल और पृथ्वी।

सब बातों का सारांश यह है कि उपनिषद् सिद्धबोधी है और इससे भिन्न सब विद्याएँ साध्य को बताती हैं। जैसे मान लीजिए, किसी ने अँधेरे में किसी चीज़ को देखा तो उसे सन्देह हुआ कि यह मनुष्य है या कोई लकड़ी। यदि वहाँ पर अपना सन्देह दूर करने के लिए यज्ञादिक कर्म या सूर्यादिक की उपासना करने लगेगा, तो कभी भी अपने सन्देह को दूर नहीं कर सकता। जब वह बैटरी या दीपक जला कर देखेगा तब एक विशेष वस्तु को देख कर निश्चय कर सकेगा कि यह लकड़ी है या मनुष्य। इस ज्ञान ने लकड़ी या मनुष्य नहीं बनाया, किन्तु सिद्ध वस्तु का बोध कराया। ऐसे ही, ज्ञान-रूप प्रकाश देकर, उपनिषद् सिद्ध ब्रह्म को बतलाती है। इसीलिए इसे ज्ञानकाण्ड भी कहते हैं।

उपनिषदें परा तथा अन्य अपरा विद्याएँ हैं। लिखा है कि—

तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषामिति अथ परा यया तदक्षरमधि गम्यते।

अर्थात्—ऋग्, यजुः, साम, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष यह अपरा विद्याएँ हैं। जिस विद्या से अविनाशी ब्रह्म जाना जाय, वह परा विद्या है। इससे यह निश्चय होता है कि सभी उपनिषदें परब्रह्म का उपदेश देती हैं। इसलिए उपनिषद् मात्र का विषय ब्रह्म ही है। परमात्मा रूपी विषय के वर्णन के प्रकार में भेद के कारण उपनिषदें भिन्न-भिन्न हैं। परन्तु लक्ष्य सभी का एक ही है। इसके अधिकारी दृष्ट (ऐहिलौकिक) और श्रुत (पारलौकिक स्वर्गादि) विषयों से विरक्त हैं। अपरा विद्या के अधिकारी सब विषयों के रागी हैं। यह बात लिखने की विशेष आवश्यकता नहीं है कि परा तथा अपरा विद्या के उद्देश्य भिन्न-भिन्न हैं। अतएव प्रवृत्ति तथा निवृत्ति, इनके दो भिन्न-भिन्न मार्ग भी हैं :—

दूरमेते विपरीते विषूची अविद्या या च विद्येति ज्ञाता।

भावार्थ—ये दोनों विद्याएँ तम और प्रकाश के समान सम्पूर्ण भिन्न-भिन्न हैं।

आशय यह है कि जीवात्मा कर्ता, भोक्ता, अपवित्र और पाप-पुण्य वाला है, परन्तु आत्मा एक कर्तृत्व-भोक्तृत्वरहित शुद्ध और पाप-पुण्य से रहित वस्तु है। जैसे जागना और सोना ये दोनों आपस में अत्यन्त विरोधी हैं, तथापि एक ही व्यक्ति में ये दोनों भिन्न-भिन्न काल में रहते हैं। उपनिषदों में एकात्मवाद और नानात्मवाद दोनों पाए जाते हैं। द्वैतवादी वल्लभ सम्प्रदायियों ने तथा शङ्कर मतवादी अद्वैतवादियों ने अपने-अपने सिद्धान्त के पक्ष में उपनिषदों के भावों का वर्णन किया है। द्वैतवादियों के सिद्धान्त में दुःख ध्वंस होने पर जीव मुक्त होता है, परन्तु वह ब्रह्म से पृथक् है। अद्वैतवादियों के मतानुसार मुक्त जीव ही ब्रह्म है।

मनुष्य के शरीर में पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। साङ्ख्याचार्य आदि के सिद्धान्त से मन भी एक इन्द्रिय है, जो ग्यारहवीं इन्द्रिय कहा जाता है। इन सबका राजा प्राण माना गया है। क्योंकि इन इन्द्रियों में किसी एक दो के न रहने पर भी मनुष्य जी सकता है। जैसे, अन्धे, गूँगे तथा बहरे आदि। परन्तु प्राण के अभाव में एक क्षण भी कोई नहीं जी सकता। इसलिए उपनिषदों में प्राण जीवन का हेतु कहा गया है। कहीं-कहीं यह आत्मा और कहीं-कहीं ब्रह्म तक कहा गया है। अधिष्ठानत्व सिद्ध करने के लिए इसे आत्मा और सूत्रात्मरूप से ब्रह्माण्ड की रक्षा करने के कारण यह ब्रह्म भी कहा गया है। वास्तव में बात भी ऐसी ही है। कारण, प्राण विशुद्ध और सात्त्विक है। अतः यह ब्रह्मज्ञान का उत्पादक और आत्मोन्नति में पूर्णरूप से सहायक है।

हम पहले लिख आए हैं कि छान्दोग्य में प्राण-विद्या और आदित्य विज्ञान का प्रधानतया वर्णन किया गया है। सिंहावलोकन न्याय के अनुसार इस विषय में थोड़ा और भी लिखना अप्रासङ्गिक न होगा।

प्राणरूप सूर्य प्रत्येक शरीर के प्रत्येक इन्द्रिय में अपनी किरणों द्वारा प्रवेश कर प्रकाश और शक्ति प्रदान करता है और उत्तर आदि दिशाओं में प्रवेश कर उनको प्रकाशवान बनाता है। इसलिए वही व्यापक और सब जीवधारियों का आश्रय स्थान है। यही कारण है कि विद्वानों ने इसे ही विश्वरूप, जातवेदस, परायण और सहस्र रश्मि कहा है। सूर्य ही काल है, काल ही प्रजापति है और प्रजापति ही सम्वत्सर है। सम्वत्सर के दो विभाग होते हैं। एक दक्षिणायन और दूसरा उत्तरायण। प्रथम में सूर्य दक्षिण की ओर, दूसरे में उत्तर

की ओर रहता है। श्रौत-स्मार्त कर्म करने वाले पुरुष चन्द्रमा को प्राप्त करते हैं और दक्षिणायन मार्ग से जाते हैं। इसे पितृमार्ग भी कहते हैं। तपस्वी ब्रह्मचारी और सूर्योपासक सूर्यलोक को प्राप्त करते हैं और उत्तरायण मार्ग से जाते हैं। चन्द्रलोक के जीव का पुनरागमन होता है, परन्तु सूर्यलोक-प्राप्त जीव का पुनरागमन नहीं होता। प्रत्येक मास में कृष्ण-पक्ष चन्द्रमा और शुक्लपक्ष सूर्य है। कृष्णपक्ष शरीर और शुक्लपक्ष प्राण है। पण्डित-गण प्राण-रूप सूर्य की ही उपासना करते हैं। फ़लतः प्राण ही जगत का एकमात्र आश्रय-स्थल है। इस कथन के प्रमाण में कुछ मन्त्र नीचे दिए जाते हैं:—

त हांगिरा उद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवाऽङ्गिरसं मन्यन्तेऽङ्गानां यद् रसः।

भावार्थ—उसी प्रसिद्ध प्राण को व्यापक ब्रह्म मान कर अङ्गिरा नामक ऋषि ने उसकी उपासना की। प्राणियों के अङ्गों में जो रस बना कर पहुँचाता है, उसे ही अङ्गिरा कहते हैं।

तेन तंह वृहस्पतिरुद्गीथमुपासाञ्चक्र एतमु एव वृहस्पतिं मन्यन्ते वाग्धि वृहती तस्या एष पतिः।

भावार्थ—उस प्रसिद्ध प्राण को ब्रह्म मान कर वृहस्पति ऋषि ने उसकी उपासना की। वाणी का नाम वृहती अर्थात् ज्ञान है और उसका स्वामी यह प्राण है। इसलिए उसी प्राण को विद्वान लोग वृहस्पति कहते हैं।

तेन तं हायास्य उदगीथमुपासाञ्चक्र एतमु एवायास्यं मन्यन्ते आस्याद्यदयते।

भावार्थ—उस प्रसिद्ध प्राण को ब्रह्म-स्वरूप मान कर आयास्य नामक ऋषि ने उसकी उपासना की। उसी को सुधी जन आयास्य कहते हैं। क्योंकि वह इन्द्रिय-रूप द्वारों से सञ्चरण करता है। इन सब मन्त्रों का सारांश यह हुआ कि प्राण ही अङ्गों में रस पहुँचाने के कारण अङ्गिरा, ज्ञान उत्पन्न करने के कारण वृहस्पति और शरीर में सञ्चरण करने के कारण आयास्य है।

अधीहि भगव इति होपससाद सनत्कुमारं नारदस्तं होवाच यद्वेत्थ तेन मोपसीद, ततस्त ऊर्ध्वं वक्ष्यामीति स होवाच ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं नाम वा ऋग्वेदः। अस्ति भगवो नाम्नोभूयः। वाग्वाव नाम्नो भूयसी। मनोवाव वाचोभूयः। सङ्कल्पोवाव मनसो भूयान्।

भावार्थ—एक समय देवर्षि नारद ने भगवान सनत्कुमार की शरण में जाकर ज्ञानोपदेश की प्रार्थना की। तब भगवान सनत्कुमार ने कहा कि आपने क्या पढ़ा है, पहले हमें बताइए। तब नारद जी ने कहा कि मैंने चारों वेद तथा इतिहास-पुराणादि चौदह विद्याएँ विधि-पूर्वक पढ़ी हैं। यह सुन कर सनत्कुमार जी ने कहा कि "यह केवल शब्द मात्र है।" तब नारद ने कहा, इससे जो बड़ा हो क्रमशः हमसे कहिए। तब सनत्कुमार जी ने कहा कि सुनिए। शब्द से वागेन्द्रिय, उससे चिकीर्षाबुद्धि, उससे कर्तव्याकर्तव्य विभाग, उससे प्राप्त काल के अनुरूप स्फुरण, उससे एकाग्रता, उससे शास्त्रजन्य ज्ञान, उससे मानस बल, ये अध्यात्म से क्रमशः बड़े हैं। क्योंकि पूर्व-पूर्व उत्तरोत्तर के अधीन है। इन सबको सुरक्षित चलाने के लिए आधिभौतिक में अन्न बड़ा, उससे वृष्टि जल, उससे वायु सहित तेज, उससे आकाश, ये क्रमशः बड़े तथा पूर्व-पूर्व के कारण हैं। ये वाह्य पाँचों भोग्य अन्तस्थ स्मरणशक्ति से सम्पन्न जीव के लिए सुखप्रद होते हैं। इसीलिए इनसे अन्तस्थ स्मरणशक्ति बड़ी है। उससे भी आकांक्षा बड़ी है। इन सबको चलाने वाला प्राण है। इसलिए सबसे श्रेष्ठ प्राण है। प्राण चले जाने पर शरीर शव हो जाता है। इस प्राण से पूर्व सिद्ध जो सत्ता है वही ब्रह्म है, वही आत्मा है। वह सर्वश्रेष्ठ और बड़ी है। इस बात को सुन कर नारद जी कृतकृत्य हुए।

—गिरिजा देवी

साँवली बहिन

[श्रीमती रूपवती त्रिवेदी]

प्रतिमा ने अपने नाम का कार्ड वॉयसराय के प्राइवेट सेक्रेटरी के पास भेजा। उसने दस दिन पहले वॉयसराय से साक्षात् के लिए प्रार्थना की थी। वह जर्मन-संग्राम के सम्बन्ध में उनसे मिलना चाहती थी। पत्र में इससे अधिक और कुछ नहीं था। बेचारा प्राइवेट सेक्रेटरी बड़े सङ्कट में पड़ा था कि वह क्या करे। अन्त में उसने स्वयं वॉयसराय से सलाह पूछी। लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड के हृदय में अपार दया थी; सौजन्य के तो वे पुतले थे। एक मिनट तक उनकी भौंहें सङ्कुचित रहीं और अन्त में प्राइवेट सेक्रेटरी को कोई समय मुक़र्रर करने का आदेश मिला। प्रतिमा उसी सम्बन्ध में आज दिल्ली आई हुई थी। उसे अधिक देर तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। एक चपरासी उसे लाट साहब के कमरे के पास ले गया और दरवाज़ा खोल कर बग़ल में हो गया। प्रतिमा भीतर चली गई। दरवाज़ा पुनः बन्द हो गया। सामने लाट साहब एक साधारण कुर्सी पर, काग़ज़ों और पुस्तकों से घिरे हुए बैठे थे। उनकी मुद्रा से धीरता एवं गम्भीरता टपकती थी। प्रतिमा उस समय भारतवर्ष के सब से बड़े शासक के सामने अवाक् खड़ी थी। उसका काम कितना छोटा था। लाट साहब ने स्वयं सर उठाया और नमस्कार करके कहा—मेरी बेटी, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूँ?

प्रतिमा एक क्षण के लिए चुप रही। उसका सारा निश्चय, जिससे प्रेरित होकर वह वहाँ तक आई थी, टूटने सा लगा, उसकी ज़बान सूख सी गई, और उसका सारा शब्द-ज्ञान विलीन सा हो गया। परन्तु नहीं, उसे तो कुछ कहना ही है। लाट साहब की दृष्टि उस पर लगी हुई थी। उसने अपना सर झुका लिया, साँस रोक ली, होठ दाँतों के नीचे दबा लिया तथा मुट्ठियाँ बाँध लीं। मानो अपना अस्तव्यस्त निश्चय वह फिर से सञ्चित कर रही हो। दूसरे ही क्षण उसने मुख उठा कर अपनी बड़ी-बड़ी आँखें प्रश्नकर्ता के मुख पर जमा दीं और धीरे-धीरे कहना शुरू किया—श्रीमान, मैंने एक छोटे से काम के लिए आपको कष्ट दिया है। मैं संग्राम में काम करना चाहती हूँ।

"संग्राम में! तुम कौन हो? तुम्हारे पिता क्या करते हैं? क्या तुमने उनसे अनुमति ले ली है?"

यह सब लाट साहब एक साँस में कह गए। फिर क्षण भर ठहर कर बोले—तुम्हारा उद्देश्य तो अत्यन्त श्रेष्ठ है। इङ्गलैण्ड को इस समय कार्यकर्ताओं की बड़ी आवश्यकता है, परन्तु तुम्हारे माता-पिता की अनुमति तो है न?

वॉयसराय ने अपनी आँखें प्रतिमा के चेहरे पर जमा दीं। प्रतिमा का चेहरा अत्यन्त विकृत हो गया। वह अपने भीतर उठते हुए भावों को दबाने का प्रयत्न कर रही थी, पर उसकी छलछलाती आँखें उसकी

असफलता की द्योतक थीं। यह दशा देख कर वॉयसराय की आँखें आश्चर्य से इषत् विस्फारित हो उठीं। पर वे वहीं की वहीं जमी रहीं। उनकी दृष्टि के नीचे प्रतिमा दबी सी जाती थी; घुल सी रही थी। काँपती हुई आवाज़ में उसने कहा—माता-पिता, माता-पिता, मेरी माता नहीं है श्रीमान !

आँसुओं के बड़े-बड़े बूँद अब गिरने लगे। लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड कुछ सङ्कुचित से होकर कहने लगे—मुझे दुःख है कि मैंने कुछ शब्द ऐसे कहे, जिससे तुम्हारी पूर्व स्मृति जग गई।

प्रतिमा के हृदय की सारी कमज़ोरी अब तक उन अश्रु-विन्दुओं द्वारा बाहर निकल चुकी थी। उसकी मुद्रा फिर वैसी ही स्थिर हो गई, जैसी कि उसके आने के समय थी। पर साथ ही साथ उसकी आँखों से एक ज्वाला सी निकलने लगी। वॉयसराय की दृष्टि उसके आगे नहीं ठहर सकी। प्रतिमा बोली—श्रीमान, मैं बालिग़ हूँ, मुझे किसी से भी अनुमति लेने की आवश्यकता नहीं है।

उसके शब्द गम्भीर थे। उनमें से प्रत्येक उसके दृढ़ निश्चय का परिचायक था। वॉयसराय ने एक नज़र उठा कर उसकी ओर देखा। प्रतिमा की नज़र के आगे उनकी नज़र न ठहर सकी। उन्होंने टेलीफ़ोन द्वारा अपने प्राइवेट सेक्रेटरी से कुछ कहा। फिर प्रतिमा से बोले—देवी ! तुम्हारी इच्छानुसार ही काम होगा।

खड़े होकर उन्होंने अपना हाथ प्रतिमा की ओर बढ़ा दिया—"इङ्गलैण्ड और सम्राट की ओर से मैं तुम्हें धन्यवाद देता हूँ।" लॉर्ड चेम्सफ़ोर्ड को प्रतिमा का हाथ काँपता हुआ तथा जलता हुआ मालूम पड़ा। प्रतिमा जल्दी से हाथ छुड़ा कर लाट साहब के कमरे से बाहर चली आई।

× × ×

उसी रात को प्रतिमा लखनऊ के लिए रवाना हो गई। वह वहाँ के महिला-विद्यालय में अध्यापिका थी। दुबली-पतली प्रतिमा हज़ारों में सुन्दर थी। उसकी आँखों में एक अपूर्व तेज था। उसकी सङ्कुचित भौहें पठनशील होने का तथा पतले होंठ उसके दृढ़ निश्चय के परिचायक थे। उसकी उमर कुल बीस साल की थी। पर उसकी मुद्रा ऐसी गम्भीर थी, मानों खिले हुए सूर्यमुखी फूलों की एक क्यारी पर सूर्यग्रहण की छाया पड़ गई हो। यद्यपि वे फूल खिले हुए रहते हैं, पर उनकी शोभा मलिन सी हो जाती है। वह चाँदनी रात में खिले तथा ओस से भरे हुए कुन्द के फूल के सदृश थी। उसे देख कर दिल तो अवश्य विकसित हो जाता है, पर एक बार थिरक उठने के बजाय उस पर एक विचित्र छाया सी पड़ जाती है और उसके सामने सिर झुका देने की भावना हृदय में उत्पन्न होने लगती है। उसे अपनी दूध सी श्वेत साड़ी में उदास भाव से गाड़ी के एक कोने में भौंहें सिकोड़ कर बैठा देख, मालूम होता था कि किसी विचित्र संयोग से किसी अतीव गहन विषय पर विचार करती हुई बनदेवी इस शैतान सी रेलगाड़ी के गर्भ में आ पड़ी है।

जाड़े की रात थी। बाहर हवा ज़ोर-ज़ोर से आहें भर रही थी। गाड़ी के उस डिब्बे के चारों ओर मुसाफ़िर अपने-अपने स्थानों पर सिकुड़े हुए एक-एक कपड़े के गट्ठर से मालूम पड़ रहे थे। गाड़ी हरहराती दौड़ी चली जाती थी। लोग जब कोई बड़ी मेहनत का काम करते हैं, तो वे चिल्लाते रहते हैं, जिसमें कि उनका दिल न टूटे। गाड़ी की खड़खड़ाहट भी कुछ ऐसे ही उत्साहवर्द्धक शब्द सी मालूम पड़ती थी। अथवा मानो जाड़े के कारण उसके दाँत खड़खड़ा रहे हों। उस डिब्बे में यद्यपि दो बत्तियाँ लगी थीं, पर इस समय केवल एक ही बत्ती जल रही थी और वह भी शीशा मैला होने के कारण इतनी मन्द रोशनी देती थी कि उस डिब्बे के एक सिरे से दूसरे सिरे का हाल केवल अनुमान द्वारा ही जाना जाता था। उस समूचे डिब्बे का ढङ्ग कुछ प्रेतों के स्थान का सा था।

प्रतिमा एक कोने में बैठी हुई थी। सोने के लिए उसने दो-चार बार आँखें भी बन्द कीं, पर नींद कहाँ। बाहर की हवा की आहों ने और गाड़ी के भीतर की रोती हुई रोशनी ने उसके हृदय को पकड़ सा लिया था। एक के बाद एक उसकी पुरानी स्मृतियाँ जग उठीं। कभी उसकी भी माता थी। उसकी ज़रा सी याद उसे बनी थी। एक बार जब वह गुलाब का फूल तोड़ने के लिए उत्सुक होकर काँटों में जा फँसी थी, उसकी माँ ने तब दौड़ कर उसे छुड़ाया था। दूसरी बार जब गरम-गरम चाय में उसने अपना हाथ डाल दिया था और मारे जलन

के चिल्लाने लगी थी, तब उसकी माँ ने चूम-चूम कर उसके हाथ की जलन मिटाई थी। आज पन्द्रह साल हो गए, उसकी माँ उससे बिछुड़ चुकी है। उसकी माँ के मरने के पाँच-छः साल तक तो उसकी दादी ने उसे पाला-पोसा। दादी को पाकर वह माँ को भूल सी गई थी। फिर तो वह स्कूल में जाकर वहीं रहने लगी। थोड़े दिन बाद उसे अपनी दादी के भी मरने की ख़बर मिली। उस समय यद्यपि वह रोई अवश्य थी, पर उसे कुछ अधिक शोक नहीं हुआ। अपने नए-नए खेलों में वह सब कुछ भूल गई। उसके पिता ने अपना दूसरा विवाह कर लिया था। वह स्कूल की छुट्टियों में घर आती। पर वह घर अब पहले का सा नहीं था। उसकी दूसरी माँ उसकी ख़ातिर करती थी। पर उतनी ख़ातिर तो एक अच्छे से होटल में कुछ रुपए ख़र्च करने से भी मिल सकती थी। दोनों ही स्थानों में यथार्थ घर का अभाव था। यद्यपि किसी भी बात की कमी न थी, पर कभी-कभी प्रतिमा एक स्नेह-व्यञ्जित शब्द के लिए तरस उठती। उसके पिता को लड़कों और लड़कियों में अधिक रुचि न थी। महीने-महीने ख़र्च के लिए रुपए भेज देने और घर आने पर 'प्रतिमा, तू आ गई' इतना पूछ लेने के अतिरिक्त उनसे और कोई मतलब न था। धीरे-धीरे उसके जीवन का प्रवाह उसके ही भीतर बहने लगा। एक के बाद दूसरा वर्ष आता और चला जाता। उसने पन्द्रहवें वर्ष में प्रथम श्रेणी में इन्ट्रेन्स पास कर लिया। पिता ने एक बधाई का पत्र भेज देने के अतिरिक्त और कुछ न कहा। नई माता तो पढ़ाई के विषय में कभी भी कुछ न पूछती थीं; तो अब की भला क्यों पूछने लगीं।

उसके कॉलेज में बहुत से लोग आया करते थे। कैनिङ्ग कॉलेज और आइसाबेला थोबर्न कॉलेज में अधिक सम्बन्ध होने के कारण दोनों कॉलेजों में दोनों के छात्रों की आमदरफ़्त बहुधा हुआ करती थी। थोबर्न की लड़कियाँ बहुधा लेक्चर सुनने के लिए कैनिङ्ग कॉलेज में जाया करती थीं। एक दिन 'कीट्स' पर एक बड़े विद्वान का लेक्चर था। बड़ी भीड़ थी। सभी लड़कियाँ अपनी निर्दिष्ट कुर्सियों पर बैठ गईं। केवल प्रतिमा के ही लिए एक कुर्सी कम पड़ गई। क्षण भर वह कुछ अप्रतिभ सी खड़ी रही। इतने में उसके पास का एक लड़का उठ खड़ा हुआ और अत्यन्त ही विनीत शब्दों में उसे अपना स्थान ग्रहण करने को कहा। कुछ सङ्कुचित सी होकर वह कुर्सी पर बैठ गई। वह एम० ए० का विद्यार्थी था। उसके चेहरे से प्रतिभा टपकती थी। उसे खड़ा देख कर बग़ल के लड़कों ने तुरन्त ही उसके लिए स्थान दे दिया। वह प्रतिमा के पास ही बैठ गया। व्याख्यान गम्भीर था और वह अभी एफ़० ए० की छात्री थी, परन्तु विनोद ने बीच-बीच में उसे बहुत-कुछ समझाया, उस लड़के का यही नाम था। प्रतिमा की गुरुवानी से भी विनोद का परिचय था। उनके पास वह बहुधा जाया करता था। तब से जब वह आइसाबेला कॉलेज में आता, दो-एक बात प्रतिमा से भी ज़रूर कर लेता। धीरे-धीरे दोनों का परिचय बढ़ने लगा।

उसी साल गरमियों में प्रतिमा के पिता काश्मीर गए। वह भी गई। वहाँ एक दिन वह एक घने पेड़ के नीचे थक कर बैठ गई थी। अचानक विनोद उधर से आ निकला। फिर क्या था, वह बराबर उसके यहाँ आता। उससे तो बातें करता ही, उसके पिता और माता से भी ख़ूब बातें होतीं। सब लोग साथ ही घूमने जाते। परन्तु वही विनोद और उसकी यह दशा × × ×! प्रतिमा ने बहुत बार यह सोचा था कि संसार में शान्ति नाम की कोई वस्तु ही नहीं। वह तो कवियों की कल्पना मात्र है। उस अशान्तिमयी गाड़ी के एक कोने में बैठी हुई प्रतिमा फिर इसी प्रकार सोचने लगी।

इसके आगे वह कुछ और न सोच सकी। उसकी साँस तेज़ी से चलने लगी। सारा शरीर तप्त हो गया। सिर मानो फटने सा लगा। उसने अपने दोनों हाथों से अपने सर को दबाना शुरू किया। इस अवस्था को बदलने के लिए और जिन स्मृतियों के कारण वह दशा उपस्थित हुई है, उन्हें भुलाने के लिए उसने क्या-क्या नहीं किया? लोगों के नशा खाने का केवल एक ही कारण होता है, आत्म-विस्मरण। जितनी देर के नशे में डूबे रहते हैं, उतनी देर उन्हें अपनी ही सुधि नहीं रहती; फिर कहाँ की स्मृतियाँ। छाया से पिण्ड छुड़ाने के लिए अँधेरे की आवश्यकता होती है। पुरानी यादों के लिए नशे से बढ़ कर अँधेरा और क्या हो सकता है? नशा? तेजस्विनी प्रतिमा के लिए यह असह्य था। वह इतनी बेहया नहीं हो सकती। वह अपनी आग अपने ही भीतर रखना चाहती थी। संसार का कोई

प्राणी कहीं उसके अन्तस्तल की पीड़ा को देख न ले। परन्तु उसे किसी न किसी नशे की आवश्यकता अवश्य थी। उसने अनवरत चेष्टा से अपने को भुला देना चाहा। भोजन कम कर दिया, अध्ययन बढ़ा दिया। उसी में वह फँसी पड़ी रहती। उसकी सखियाँ आकर उसे मनोरञ्जन की ओर खींचतीं। वह कुछ न कह कर केवल अपनी बड़ी-बड़ी आँखें उनके चेहरों पर जमा देती। सिर्फ़ 'उँह' करके चुप हो जाती और फिर सिर झुका कर पढ़ने में लग जाती। इस पर किसी को कुछ और कहने की हिम्मत न पड़ती। खेल-कूद में वह पहिले ही से कम भाग लेती थी। अब तो बिल्कुल ही अलग रहने लगी। अधिक परिश्रम और चिन्ता की प्रक्रिया उसके मस्तिष्क में होने लगी। उसे मालूम हुआ कि वह पागल हो जायगी। जीवन से उसे विरक्ति हो गई। आत्म-विस्मरण—आत्म-हत्या ही में उसे अनन्त शान्ति दीख पड़ने लगी। वह गम्भीरता, सहिष्णुता एवं चिन्ता की मूर्ति बनी हुई थी। उसने एम० ए० तक की डिग्री प्राप्त कर ली। अनवरत परिश्रम ने उसे अद्वितीय विदुषी बना दिया था। वह महिला-विद्यालय में अङ्गरेज़ी साहित्य की अध्यापिका हो गई। लड़कियों और मास्टरों, दोनों ही की राय थी कि प्रतिमा एक अद्वितीय शिक्षयित्री है। कूपर की कविता तथा शोपेनहोर के वेदान्त पर जब उसका लेक्चर होता, तो सदैव हँसती रहने वाली लड़कियों की आँखों में भी आँसू आ जाते थे। प्रतिमा को किसी ने एक बार भी हँसते न देखा।××× एक के बाद एक करके सारी बातें उसके दिमाग़ में घूम गईं। वह अधिक न सोच सकी। अन्त में निद्रा देवी ही ने आकर उसे शान्ति दी। सवेरे उसकी आँख लखनऊ के स्टेशन पर ही खुली।

× × ×

तीसरे दिन वहाँ की फ़ौज के अफ़सर का एक परवाना उसे इस आशय का मिला कि वह स्थानीय मेडिकल कॉलेज में जाकर नर्स का काम सीखे। उसके बाद वह लड़ाई पर भेजी जावेगी। प्रतिमा सी कुशाग्र बुद्धि वाली स्त्री को नर्सिङ्ग सीखते देर ही कितनी लगती? कुछ उसे भी जाने की व्यग्रता थी और कुछ इङ्गलैण्ड के पास कार्यकर्ताओं की कमी। तीसरे सप्ताह के जहाज़ से वह फ़्रान्स के लिए चल पड़ी। बम्बई पहुँच कर उसने अपने पिता को लिखा कि वह संग्राम में सेवा करने के लिए फ़्रान्स जा रही है। भारत की भूमि को पीछे छूटते देख कर उसका हृदय एक बार मचल तो अवश्य पड़ा। आँखों से निर्झरिणी सी बहने लगी। अनन्त वियोग की व्यथा ने उसे एक बार पीड़ित कर दिया। लेकिन दूसरे ही क्षण उसने अपनी इस दुर्बलता को दबाया, इतने दिनों का उसका नियन्त्रण बिल्कुल व्यर्थ नहीं था। उसकी तपस्या आडम्बर मात्र नहीं थी। उसका निश्चय वज्र से भी कठोर था।

फ़्रान्स में कुछ ही दिन काम करने के बाद वह ठीक लड़ाई की लाइनों में जाने और काम करने के लिए व्यग्र हो उठी। जर्मनों का आक्रमण बढ़ गया था। आगे की सेना को गहरी क्षति पहुँची थी। उस कमी को पूरा करने की नितान्त आवश्यकता थी। प्रतिमा की प्रार्थना स्वीकार हुई। वह लड़ाई के मैदान के तख़्ती-वाहक दल की नर्स हुई। उसकी निर्भीकता और संलग्नता की आस-पास में चर्चा थी। तख़्ती ढोने वाले मनुष्यों के मारे जाने से उनमें भी कमी हो गई, इसलिए नर्सें भी तख़्ती ढोने के काम में थोड़ी-बहुत मदद देने लगीं। प्रतिमा उनमें अग्रगण्य थी। जहाँ सबसे घोर सङ्कट का सामना होता वह वहीं घायलों को उठाने जाती। जहाँ मृत्यु अठखेलियाँ करती दिखाई देती, प्रतिमा वहीं मानो उसे चिढ़ाने के लिए पहुँच जाती। उसे डर ही किस बात का था। वह मृत्यु-रूपी अनन्त शान्ति की खोज में ही तो यहाँ तक आई थी।

× × ×

कई दिनों से यह ख़बर सुनने में आ रही थी कि जर्मन लोग अपनी सारी सेना पूर्व से खींच कर पश्चिम की ओर ला रहे हैं। रूस ने सन्धि कर ली है। जर्मनों की सेना के आगे बढ़ने के साथ ही इधर की सेना भी बढ़ती गई। परन्तु आदमियों की इधर बड़ी कमी थी। इसलिए कभी-कभी नर्सों को भी तख़्ती पर घायलों को लाना पड़ता था। प्रतिमा भी उनमें ही थी। उस दिन की लड़ाई के लक्षण बुरे दीख पड़ते थे। बड़ी घमासान मचने वाली थी। दिन भर मशीनगनों की कड़कड़ाहट जारी रही। शाम होते न होते बड़े-बड़े बम आकर गिरने और फूटने लगे। आकाश मेघाच्छन्न था। हड्डियों तक में घुस जाने वाली ठण्डी हवा सनसन कर चल रही

थी। मानो संसार में उसका एक ही काम रह गया हो, मनुष्यों और घोड़ों की हड्डियों को खड़खड़ाना। सारे दिन प्रतिमा काम कर चुकी थी। इस समय उसका दल अपने डेरे पर जाने की तैयारी कर रहा था। डेरा थोड़ी ही दूर पर था। दो मोटर-लॉरियाँ आ गई थीं। सब लोग उन पर चढ़ ही रहे थे कि जर्मनों की ओर की एक मशाल बड़ी तेज़ी से जल उठी। देखने वाले गुब्बारों की नज़र अवश्य ही वहाँ पर पड़ गई होगी। क्योंकि अभी सब लोग ठीक-ठीक चढ़ भी न पाए थे कि दोनों ही लॉरियों के चारों ओर भड़ाभड़ गोले गिरने लगे। ड्राइवर चलाने को उद्यत हुआ। इञ्जिन भी बड़बड़ाने लगा, मानों वह चारों ओर का प्रलय-काण्ड देख कर पागल हो गया हो और प्रलाप कर रहा हो। मोटर चलने लगी। इतने में एक बड़ा भारी धड़ाका हुआ। प्रतिमा मोटर के पीछे के भाग में खड़ी थी। मालूम हुआ, मानो किसी ने उसे उठा कर फेंक दिया हो। वह पानी भरे हुए गढ़े में जा गिरी। ओह! उसमें कितनी ठण्ढक थी। प्रतिमा का सारा शरीर शून्य हो गया, आँखों के आगे कुछ लाल-लाल सा दीख पड़ा। फिर उसे कुछ न मालूम पड़ा। न जाने कितनी देर बाद उसे कुछ ठण्ढक मालूम हुई। उसे होश आ रहा था। वह धीरे-धीरे सरक कर गड्ढे के बाहर निकली। एक बार बिजली चमक गई। उसने देखा कि जहाँ दोनों मोटरें खड़ी थीं, वहाँ पास ही एक भारी गड्ढा था। मोटर की स्मृति-स्वरूप कुछ लोहे और कुछ लकड़ी के टुकड़े इधर-उधर पड़े थे। उसके दल का झण्डा भी टूक-टूक होकर पड़ा था। उसने अपनी आँखें मूँद लीं। उसके पीछे की ओर फिर धड़ाका हुआ। उसने घूम कर देखा, अन्धकार और जर्मनों के ओर की सैकड़ों बन्दूकों की अग्नि-वर्षा! फिर दूसरा धड़ाका और साथ ही बिजली का एक तीव्र प्रकाश। जहाँ हिन्दुस्तानियों और फ़्रान्सीसियों की खाइयाँ मिलती थीं, वहाँ धुआँ सा छाया हुआ था और तीन वस्तुएँ उसी धूम-समूह से उड़ती हुई उसे दीख पड़ीं। "अच्छा तो जर्मनों ने हम लोगों की खाइयाँ उड़ा दीं। सब बेचारे ख़तम हो गए होंगे। परन्तु अभी तो तीन मनुष्य उछल कर बाहर गिरे हैं। उधर तो हिन्दुस्तानी फ़ौज थी। हो न हो वे भी हिन्दुस्तानी ही हैं।" वह पागल सी उठ खड़ी हुई और उधर ही दौड़ पड़ी। उसके चारों ओर गोलियाँ सन-सन करती जा रही थीं, पर उसे इसका ध्यान कहाँ? वह तो अपनी धुन में दौड़ी चली जा रही थी। रास्ते में तीन बार गिरी, परन्तु वह जब गिरी तभी जर्मनों की मशाल जली। इसीलिए उसके कोई गोली नहीं लगी। चौथी बार वह फिर गिरी। पास में उसने किसी का कराहना भी सुना। एक बार फिर वही मशाल जल उठी। उसने देखा, एक भारतीय कैप्टन पड़ा है। उसका एक पैर कट गया था। प्रतिमा खिसक कर उसके पास पहुँच गई। अपनी ज़ेबें टटोलीं। दवाई से बासित तीन पट्टियाँ निकालीं। उनसे उसने वह कटा पैर बाँध दिया। ख़ून का प्रवाह कम हो गया। उसकी छाती पर के बटन खोलने को वह झुकी। इतने में एक बार बिजली चमक गई। अगर वही बिजली इस समय आकर उसके लग जाती तो भी उसे कुछ न मालूम होता। बटन खोलते-खोलते उसका हाथ रुक गया।

वह स्वप्न तो नहीं देख रही थी। नहीं-नहीं! वह विनोद ही था। वही विनोद, जो कि उस दिन के लेक्चर में इतना सुशील तथा विद्वान दीख पड़ा था; वही विनोद, जोकि उसकी गुरुआनी जी को भी पढ़ाता था; वही विनोद, जिससे परिचय हो जाने पर वह अपने भाग्य पर इठलाया करती थी। इसलिए नहीं कि उसके हृदय में कोई और भावना थी, वरन् इसलिए कि वह एक विद्वान की सङ्गिनी थी। वही विनोद, जिसके साथ तर्क करने में भी आनन्द आता था, वही विनोद जो उसके साथ काश्मीर की घाटियों में घूमता था, वही विनोद जो उसके घर पर नित्य-प्रति आया करता और उसके पिता से राजनीति और अर्थशास्त्र पर बातें किया करता। उसकी बातें वह बड़े चाव से सुनती! यथार्थ में इन विषयों का अध्ययन उसने इन बातों ही के कारण किया। वही विनोद, जो उससे ज़रा-ज़रा सी बातों के करने में अपने को धन्य समझता था, वही विनोद जो उस दिन अकेले उसके साथ घूमने गया था। × × × प्रतिमा के कान जलने लगे। उसने उन्हें हाथों से टटोला। दोनों के दोनों ही समूचे थे। उनमें गोली नहीं लगी थी। पर उसका हाथ उनसे भी अधिक जल रहा था। उसका सारा शरीर चौगुने वेग से काँप रहा था। सारे बदन में आग सी लगी हुई थी।

आहत मनुष्य एक बार कराह उठा। कितना मर्म-भेदी स्वर था। उसे सुन कर प्रतिमा एक बार काँप उठी। अभी तक तो उसका हाथ बटनों पर था, पर अब उसने हटा लिया। वह फिर कुछ सोचने लगी। मृत्यु अपना विकराल प्रसाद गोलियों के रूप में चारों ओर बिखेर रही थी। प्रतिमा से बिल्कुल सट कर गोले और गोलियाँ आँखें मूँदे गिर रही थीं, परन्तु उसे इसका ज्ञान तक न था। उसकी आँखों में तो वही काश्मीर की घाटी दौड़ रही थी। उस दिन भी बदली थी। बड़ी सरदी थी। उसकी माँ और पिता दोनों ही की हिम्मत बाहर जाने की न पड़ी। केवल वह और विनोद घूमने के लिए निकले। वह एक शाल लपेटे हुई थी। विनोद उसकी और अपनी बरसाती लादे हुए था। पहिले तो दोनों बग़ल-बग़ल चल रहे थे। कीट्स के प्रेम की चर्चा चल रही थी। धीरे-धीरे दोनों के हाथ एक-दूसरे के हाथ में हो गए। पर इसमें उसे कोई ख़ास बात न मालूम पड़ी। वह तो केवल विनोद के मुँह की ओर देख रही थी। कितने ओजस्वी शब्द और किस सुन्दरता से उसके मुँह से निकल रहे थे। शब्दों को कोई सङ्कोच न मालूम होता था, कोई परिश्रम ही न पड़ता था। मानो इस संसार में उनका केवल एक ही काम था—उसके मुँह से इस सुन्दरता से निकलना। उसी धुन में वे न मालूम कितनी दूर चले गए। समय और दूरी का किसी को भी कुछ ध्यान न था। हवा तेज़ होने लग गई थी। अँधेरा बढ़ने लगा था। विनोद ने अपना लेक्चर ख़तम किया। सिवाय वायु में पत्तों के खड़खड़ाने के और कोई शब्द न था। प्रतिमा थक सी गई थी। इसीलिए उसने अपना हाथ विनोद के कन्धे पर रख दिया। विनोद उसे सहारा देने के लिए अपना हाथ उसकी कमर के चारों ओर डाल कर चलने लगा। गति स्वभावतः ही धीमी हो गई। थोड़ी देर बाद कहीं उसे स्थान का ज्ञान हुआ। वह अपने स्थान से दूर न थी। सीधे रास्ते से केवल बीस मिनिट की दूरी पर थी। घूम-घूम कर आने से ही वे अभी इतनी ही दूर आ पाए थे और वह इतना थक गई थी। अब वह एक गुञ्जान पथ पर चल रही थी। उस रास्ते पर वैसे ही अंधेरा रहा करता था। आज तो साय-ङ्काल का समय और तिस पर इतने घने बादल, फलतः अँधेरा भी बहुत ही गहरा था। एकाएक बिजली चमक उठी। ठीक उसी के सर पर। एक चकाचौंध सी हो गई। वैसे ही बिजली की कड़क बड़ी घोर होती है। तिस पर पहाड़ों पर तो और भी ज़ोर से होती है। वह कड़क सुन कर प्रतिमा सहम गई। वह सुना करती थी कि पहाड़ों पर बिजली अधिक गिरती है। कहीं उसी के सर पर न गिर पड़े। उसके क़दम आगे न बढ़े। विनोद की गोद में उसने अपना मुँह छिपा दिया। विनोद ने अपने हाथों से मानो उसे और छिपा लिया। वह अपना सिर उसके हृदय पर रख कर एक क्षण तक मौन रही। उसे मालूम हुआ, कदाचित् विनोद का दिल उसकी छाती तोड़ कर बाहर निकलना चाहता है। वह एक बार सिहर उठी। विनोद ने सूखी आवाज़ में कहा—"प्रतिमे! एक क्षण विश्राम कर लो, तब तक तुम ठीक हो जाओगी, तभी चलेंगे।" उसने एक बरसाती ज़मीन पर डाल दी और प्रतिमा को सहारे से उस पर लिटा दिया। स्वयं भी बैठ गया और उसका सर अपनी गोद में ले लिया। एक बार फिर बिजली चमक उठी। उसकी आँखों में चकाचौंध हो गई। विनोद ने अपने मुँह से उसे ढँक दिया। उसका गरम-गरम गाल उसकी आँखों और नाक से छू गया। प्रतिमा को वहाँ घबड़ाहट मालूम होने लगी। कहीं बिजली फिर न चमके। उसने कहा—"विनोद! चलो, यहाँ रुकने से क्या फ़ायदा। बादल तो घिरते ही आ रहे हैं। सुनती हूँ कि बिजली पेड़ों पर अधिक गिरती है।"

"थोड़ी देर और रुक जाओ, तब तक और शान्त हो जाओगी।"—बड़ी कठिनता से सूखे गले से विनोद ने कहा। दूर पर फिर बिजली चमकी। वह एक बार काँप सी उठी। विनोद ने उसे उठा कर उसके होठों में अपने गरम-गरम होंठ लगा दिए।

प्रतिमा बेचारी को पुरुष के इतने नज़दीक आने का पहला ही अवसर था। यद्यपि वह प्रेम की कविता बड़ी रुचि से पढ़ती थी। चुम्बन तथा आलिङ्गन दोनों ही के विषय में कवियों को व्यथित एवं पागल होते सुन चुकी थी। परन्तु इसके अतिरिक्त इस विषय में उसका ज्ञान शून्य ही था। गरम-गरम चुम्बन के अनुभव का उसे वह पहिला ही अवसर था। उसका सारा शरीर जल सा उठा। साँस लेने में कठिनता सी प्रतीत होने लगी। उसका मस्तिष्क घूमने लगा। उसे मालूम हुआ कि

विनोद ने शायद उसे उठा लिया और अपनी छाती से चिपका कर फिर अपने जलते हुए होंठ उसके होंठों पर लगा दिए। × × ×

होश आने पर वह विनोद को झिटक कर उठ खड़ी हुई। उस अँधेरे में भी उसकी आँखें अङ्गारे के समान चमकने लगीं। अपना होंठ उसने दाँतों के नीचे इतनी ज़ोर से दबाया कि उससे ख़ून निकलने लगा। विनोद को लक्ष्य करके वह बोली—"राक्षस !" और अपने घर की ओर तेज़ी से चल दी। उसकी बरसाती वहीं पड़ी रह गई। विनोद हतबुद्धि सा खड़ा रहा। एक क्षण बाद उसे होश आया। वह प्रतिमा की बरसाती लेकर उसके पीछे दौड़ा—"देवी, आपकी बरसाती !" प्रतिमा ने बिना उसकी ओर देखे बरसाती ले ली और उतनी ही तेज़ी से चलती गई। विनोद कुछ कहने का प्रयत्न ही करता रह गया।

घर जाकर प्रतिमा ने भोजन न किया। चुपके से अपने बिछौने पर लेट गई। तकिया में मुँह छिपा कर सिसक-सिसक कर रोने लगी। उसका शरीर भीतर से जल रहा था। क्या यह वही विनोद था, जो कल तक शिष्टता की मूर्ति था ? उसके व्यवहार में कभी भी कपट न था। परन्तु आज क्या हुआ ? उसने उसका सर्वनाश कर दिया। विनोद रोज़ ही उसके शरीर को छूता था और सदैव ही वह उसे अपना भाई समझती थी ; परन्तु वह चुम्बन तथा वह आलिङ्गन और इस चोरी से ! वह तो कहीं की न रही।

प्रतिमा ईसाई थी। उसकी माँ उसके छुटपने ही में मर गई थी। उसे कोई शिक्षा देने वाला न था। फिर भी उस लड़की के हृदय ने पुकार कर कहा कि एक पर-पुरुष ने कामेच्छा से उसके शरीर का स्पर्श किया है, अतः उसका सतीत्व भङ्ग हो गया। परन्तु सतीत्व के महत्व की शिक्षा उसे दी ही किसने थी ? ईसाइयों के समाज में इतनी सख़्ती ही कहाँ ? सतीत्व क्या एक ढकोसला नहीं है ? पर उसका अन्तःकरण उसे दोषी बनाने लगा। सतीत्व की भावना कोई शिक्षा की वस्तु नहीं है। वह तो एक नैसर्गिक भावना है। उसका हृदय ग्लानि तथा प्रतिहिंसा से भर गया। उसे अपने जीवन से अनिच्छा हो गई। पर वह उस 'राक्षस' का भी अन्त कर देना चाहती थी। यदि वह इसी तरह स्वच्छन्द घूमने दिया जाएगा, तो न जाने क्या कर बैठे।

वह उठ बैठी, परन्तु फिर गिर पड़ी। उसे भीषण ज्वर हो आया। पन्द्रह दिनों तक वह 'राक्षस, अन्त, नीच, दुष्ट' इन्हीं शब्दों का प्रलाप करती रही। अच्छी तो वह हो गई, पर तब से उसे किसी ने हँसते न देखा था। मुर्दे भी कहीं हँसा करते हैं ? उसकी मौत तो उसी दिन, काश्मीर की पहाड़ियों पर, पेड़ों के अँधेरे में, उन काले बादलों के नीचे हो चुकी थी। इसी ज्वाला से वह जलती रही। पर उसे वह अपने से भी छिपाती रही और इसके लिए उसने क्या-क्या नहीं किया। हृदय को भ्रम में डालने के लिए उसने इतना परिश्रम किया, जितना कि दस मनुष्य भी करने में हिचकते। वह संसार से विरक्त होकर रहती थी। उसने अपना विवाह नहीं किया। विवाह के बाद वह अपने पति के हाथों में क्या धरती ? उसका तो सब कुछ जा चुका था। यहाँ तक कि वह इतनी दौड़-धूप कर इस लड़ाई में आई है और सब से अधिक सङ्कट का स्थान लिया है। केवल एक लालच—इस यन्त्रणा से मुक्ति, इस कलुषित शरीर के त्याग के लिए।

आहत मनुष्य ने एक आह खींची—"पानी !" प्रतिमा के हृदय में पूर्व प्रतिहिंसा पूर्ण रूप से जग गई। "पानी ? तुम्हें ? राक्षस ! जिसने एक नारी-हृदय को मरु-भूमि बना दिया। जिस तरह वह उस मरुस्थल में तप्त होती रही है, तू भी उसी तरह प्यासा मर।"

फिर क्षीण आवाज़ निकली—"पानी !...प्रतिमे...!"

"अरे ! यह तो मेरा नाम ?"—उसके मुँह के पास कान लगा कर वह सुनने लगी। आहत मनुष्य धीरे-धीरे बड़बड़ा रहा था—"मेरी ओर...इस ..दृष्टि से...न देख...प्रतिमे ! मैं ..पापी...नर-पिशाच...संसार में .. रहने...योग्य नहीं। न जाने...किस बुरी ..सायत में... आह ! प्रतिमे ! मैं ..उस समय...आपे में न ..था। मेरे ..सर पर...कोई शैतान बैठा था ..नहीं !...नहीं ! अपनी ..सफ़ाई नहीं...देता। मैं पिशाच से भी नीच हूँ...परन्तु...क्या मेरा...प्रायश्चित...प्राण देकर...भी न ..होगा...आह.. पानी !!"

प्रतिमा का सिर गरम हो रहा था—"क्या इसको दुःख है ? मेरा जीवन तो नाश कर चुका, पर क्या अपने

जीवन का भी प्रायश्चित्त-स्वरूप बलिदान कर रहा है? यह यथार्थ में राक्षस न था? नहीं...अवश्य था।...पर मरने क्यों आया? लाहौर में यह प्रोफ़ेसर था, लड़ाई में क्यों आया? अवश्य ही प्रायश्चित्त की इच्छा इसके हृदय में थी। तो क्या इसने मेरे आहत हृदय को जान लिया था?"

घायल फिर एक बार कराह उठा। प्रतिमा फिर उसके मुँह के पास कान ले लाकर सुनने लगी। पर उसका शरीर जल रहा था, वह संज्ञा-शून्य सी होती जा रही थी। "उसी···शाम से···प्रतिमा···तेरी वह···ज्वाल दृष्टि···आह···पानी···!" प्रतिमा ने बोतल खोल कर उसके मुँह में लगा दिया। वह एक साँस में पाँच घूँट पानी पी गया। प्रतिमा ने बोतल हटा कर अपना कान फिर उसके मुँह के पास लगा दिया। आहत मनुष्य बड़बड़ा रहा था—"···केवल···मरने की···इच्छा···रहने लगी···किसी समय भी···उस नज़र···से पीछा···न छुड़ा सका···मरने के पहिले···तू एक···बार यह···कह दे···कि विनोद !···मैंने···तुम्हारी···बात···सुन···ली है···और अधिक···लालसा···नहीं···क्षमा···मेरे लिए···नहीं···और न मैं···बग़ैर हक़···के···उसे माँगूँगा···पर···केवल···इतना···सुख से···मर सकूँगा···।"

पास ही एक बड़ा भारी गोला आकर गिरा। चारों ओर प्रकाश फैल गया। उसी प्रकाश में प्रतिमा ने देखा कि घायल अफ़सर के कन्धे पर जिस कम्पनी का नाम था, वह वीरता में अग्रगण्य थी। उसकी छाती पर एक 'तमग़ा' लटक रहा था, जोकि 'विक्टोरिया क्रॉस' से ही नीचा समझा जाता था। "अच्छा तो यह वीर था···इसकी रक्षा···!" प्रतिमा ने बिजली की तरह लपक कर उसे कन्धे पर उठा लिया। वह अपने बोझ के नीचे डगमगाती खाइयों की ओर चली। दोनों ओर से गोलियों की बौछार हो रही थी। वह एक ओर, अङ्गरेज़ों की खाई समझ कर बढ़ी। गोलियों से बचती हुई वह जाकर खाई में कूद पड़ी। पर यह तो एक जर्मन खाई थी। वह बन्दिनी हो गई।

तुरन्त ही वह पीछे की ओर भेजी गई। उसका बोझा तो केवल एक मिट्टी का पुतला रह गया था। रास्ते में किसी गोली ने चुपके से उसकी रही-सही जान भी ले ली थी। वह वहीं मिट्टी पर फेंक दिया गया।

प्रतिमा जनरल के सामने पेश की गई। जनरल ने उसकी छाती पर 'लाल क्रॉस' देख कर उससे सम्मान-पूर्वक व्यवहार किया। उसने कहा—देवी, तुम जर्मनी की क़ैदी हो। कुछ चाहती हो?

"जनरल, मुझे घायलों को उसी भाँति बचाने का काम दिया जाय।" जनरल आश्चर्य से भरा उसकी ओर देखने लगा। प्रतिमा एक शोकग्रसित देवाङ्गना सी सर झुकाए खड़ी रही। जनरल बोला—यही होगा, देवी।

× × ×

दूसरे दिन का संग्राम उससे भी भीषण हुआ। अङ्गरेज़ों की ओर से जर्मनों पर घोर धावा हुआ। उनकी खाई पर खाई विलीन होने लगी। सैकड़ों जर्मन सिपाही भुनगों के समान कटने लगे। उस मृत्यु की रङ्गभूमि में एक गेहुँए रङ्ग की स्त्री दौड़-दौड़ कर घायलों को उठाती रही और पीछे पहुँचाती रही।

शाम तक लड़ाई ठण्डी पड़ गई। सैकड़ों जर्मन सिपाही कम पड़ने लगे। पर साथ ही अङ्गरेज़ों की ओर की एक बन्दिनी नर्स का भी पता न था। वह घायलों को बचाने के समय ही एक बम के गोले की भेंट हो चुकी थी।

× × ×

अब भी जर्मन-फ़ौज में जब निर्भीकता का ज़िक्र आता है, तो "साँवली बहिन" का नाम आदर से लिया जाता है। *

* Die Schwarze Schwester.

शाहपुरा स्टेट और उसके नवीन राजा

[श्री० भगवानस्वरूप जी महोपदेशक]

हपुरा रियासत एक तरफ़ ब्रिटिश इलाक़ा अजमेर और दूसरी तरफ़ उदयपुर (मेवाड़) की रियासत के मध्य सात सौ पाँच वर्ग मील की है। इस समय की इसकी वार्षिक आय पाँच लाख रुपए के लगभग है। इसके शासक 'राजाधिराज' कहलाते हैं और उन्हें गवर्नमेण्ट-हिन्द से नौ तोपों की सलामी प्राप्त है।

महाराणा अमरसिंह जी (प्रथम) के द्वितीय पुत्र महाराज सूरजमल जी आजीवन उदयपुर में ही रहे। परन्तु इनके पुत्र महाराज सुजानसिंह जी भाग्य-परीक्षार्थ बाहर निकल पड़े और सम्वत् १६८८ विक्रमीय में इस राज्य की नींव डाली। शाहपुरा नगर उन्हीं का बसाया हुआ है। प्राचीन काल में जैसी देश की अवस्था होती रही, वैसे ही इस रियासत में भी कई उतार-चढ़ाव हुए। कभी यह इतनी बढ़ी कि मेवाड़ राज्य में दूर तक घुस गई और बूँदी तथा कोटा की रियासतों में भी इसका विस्तार हो गया और कभी, अब जो वर्तमान राज्य है, इसमें भी शत्रुओं का दौरदौरा हो गया। अस्थिरता के युग में अन्यान्य देशी रियासतों की तरह यह भी अस्थिर दशा में रही। अन्त में जब राजपूताने के राजाओं के साथ ब्रिटिश गवर्नमेण्ट की सन्धि हुई तो इसकी भी वर्तमान सीमा निर्धारित हो गई और तब से यह स्थिर दशा में है।

इस समय तक इस राज्य के १२ शासक हो चुके हैं और तेरहवें शासक राजाधिराज श्री० उम्मेदसिंह जी वर्तमान हैं। इनसे पूर्व बारहवें शासक स्वर्गीय राजाधिराज सर नाहरसिंह जी, के० सी० आई० ई० के समय में शाहपुरा रियासत की विशेष काया-पलट हुई। जिस समय स्वर्गीय राजाधिराज को राज्य-भार मिला, उस समय राज्य की दशा बहुत ही बिगड़ी हुई थी। क्योंकि उनसे पूर्व दो-तीन राजे नाबालिग़ी में रहे और रियासत में दलबन्दी भी हो गई थी, इससे इसकी आर्थिक दशा बहुत बिगड़ गई थी। परन्तु स्वर्गीय राजाधिराज ने अपने अध्यवसाय से रियासत के सभी विभागों में अपूर्व परिवर्तन कर दिया। आपने सबसे पहिले आय की वृद्धि के लिए प्रायः पाँच-पाँच लाख की लागत के दो तालाब खुदवाए और कई नहरें निकलवा कर सिंचाई का महकमा क़ायम किया। साथ ही रेवेन्यू (महकमा-माल) का भी समुचित प्रबन्ध किया। परिणाम-स्वरूप जहाँ दो लाख रुपए की वार्षिक आय थी, वहाँ दस वर्षों में ही पाँच लाख की आय हो गई। इसके उपरान्त आपने शिक्षा-विभाग, स्वास्थ्य-विभाग, न्याय-विभाग और शासन-विभाग आदि की पृथक्-पृथक् स्थापनाएँ करके रियासत को एक समुन्नत रियासत के रूप में परिणत कर दिया।

स्वर्गीय राजाधिराज को ऋषि दयानन्द के दर्शन करने तथा तीन मास तक शाहपुरा में ठहरा कर उनसे योग-दर्शन तथा मनुस्मृति पढ़ने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ था। वे अपने जीवन पर सदा स्वामी दयानन्द जी की शिक्षा का बड़ा भारी प्रभाव बतलाया करते थे और कहा करते कि मुझमें जो कुछ अच्छाइयाँ हैं, वे सब उन्हीं ऋषि की ही शिक्षा का फल हैं। सं० १९३० वि० में, जब कि स्वामी दयानन्द शाहपुरा में थे, उन्होंने उन्हीं से अग्निहोत्र का व्रत लिया और उसे मृत्यु-पर्यन्त जारी रक्खा। उसी समय से अखण्ड अग्नि आपकी यज्ञशाला में प्रज्ज्वलित रही और उसी अग्नि से, उनकी वसीयत के अनुसार, पूर्ण वैदिक-विधि से आपका अन्तिम संस्कार हुआ।

अपने राज्य में तो आपने अनेक उपयोगी कार्य किए ही, इसके अतिरिक्त अपने राज्य के बाहर की संस्थाओं को भी अपने हाथ-ख़र्च से बचा कर बहुत-कुछ दान किया, जिससे आर्य-जगत् पूर्णतया परिचित है। समाज-सुधार सम्बन्धी कामों में आप सदा अग्रणी रहे। संक्षेपतः यह कि आप शाहपुरा रियासत को उन्नत बनाने

शाहपुरा-नरेश श्रीमान् राजाधिराज श्रीउम्मेदसिंह जी के राज्यतिलक का एक दृश्य।

इसमें श्रीमान् जी राजगद्दी पर बैठे हैं, पीछे प्रधान अमात्यगण छत्र, चँवर, मोरछल आदि लिए खड़े हैं। बाईं ओर श्रीमहाराजकुमार सुदर्शनदेव जी, श्रीमान् के लघुभ्राता महाराज सर्दारसिंह जी तथा अन्य ताज़ीमी सर्दार और दाहिनी ओर मेहमान लोग बैठे हैं।

राज्याभिषेक के पश्चात् मोती-चौक में महाराज का सरदारों की भेंट स्वीकार करने का दृश्य ।

श्रीमान् महाराजा श्री० उम्मेदसिंह जी के राज्याभिषेक के उपलक्ष में होने वाले यज्ञ का एक दृश्य ।

राज्यतिलक के दूसरे दिन प्रातःकाल महाराज अपने प्रमुख सरदारों सहित
सती माता का दर्शन करके वापस आ रहे हैं।

में जैसे यशस्वी हुए, वैसे ही सामाजिक जगत् में भी आपने ख़ूब ख्याति प्राप्त की।

शाहपुरा राज्य के वर्तमान शासक राजाधिराज श्री० उम्मेदसिंह जी का जन्म सं० १९३२ विक्रमीय में हुआ। जिस समय ऋषि दयानन्द जी शाहपुरा में आए थे, उस समय, जहाँ आपके पूज्य पिता स्वर्गीय राजाधिराज को मनुस्मृति आदि अध्ययन करने का सुअवसर मिला था, वहाँ इन्हें भी ऋषि की गोद में बैठ कर वर्णमाला के अक्षरों का ज्ञान प्राप्त करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। आपका उपनयन संस्कार भी आर्य-जगत् के सुप्रसिद्ध विद्वान स्वर्गीय ब्रह्मचारी नित्यानन्द जी तथा स्वामी विश्वेश्वरानन्द जी महाराज ने कराया और आपकी शिक्षा के लिए एक सुन्दर पुस्तक भी तैयार की, जो "पुरुषार्थ-प्रकाश" नाम से प्रकाशित हुई।

आपने प्रारम्भिक शिक्षा शाहपुरा में ही राजगुरु पण्डित बालमुकुन्द जी से प्राप्त करके फिर राजगुरु पण्डित यमुनादत्त षट्शास्त्री के अध्यापन में विशेष योग्यता प्राप्त की। पण्डित यमुनादत्त षट्शास्त्री को स्वर्गीय राजाधिराज ने ख़ास तौर पर अध्ययन करने के लिए बनारस भेजा था। वहाँ से शिक्षा प्राप्त करके लौटने पर ये युवराज के शिक्षक नियुक्त हुए। साधारण इङ्गलिश की शिक्षा शाहपुरा में ही प्राप्त करके आप अजमेर के मेयो कॉलेज में प्रविष्ट हुए और वहीं विशेष अध्ययन किया। घोड़े की सवारी की ओर आपकी विशेष रुचि थी, तद्नुसार मेयो कॉलेज में अश्वारोहण में आप अग्रगण्य रहे और पारितोषिक भी प्राप्त किया।

आपके दो विवाह हुए। पहिला विवाह खेतड़ी के राजा श्रीमान् अजीतसिंह जी की पुत्री राजदुलारी श्रीमती सूर्यकुमारी जी से हुआ था। ये बड़ी विदुषी तथा हिन्दी-भाषा की प्रेमिका थीं। इनकी कोई सन्तान जीवित नहीं रही। अतः इन्होंने वर्तमान राजाधिराज श्रीउम्मेद-सिंह जी से दूसरा विवाह करने के लिए बहुत आग्रह किया, परन्तु आपने एक पत्नीव्रत का लक्ष्य सामने रखते हुए उनकी जीवितावस्था में दूसरा विवाह नहीं किया। कुछ काल के उपरान्त श्रीमती सूर्यकुमारी जी का देहान्त हो गया। मृत्यु-शय्या पर से उन्होंने दो इच्छाएँ प्रकट की थीं। उनमें एक यह थी कि दूसरा विवाह अवश्य कर लेवें। तदनुसार सम्वत् १९७१ वि० में आपने दूसरा विवाह कृष्णगढ़ राज्यान्तर्गत रलायता के राजा साहब की सुपुत्री श्रीमती लाड़कुँवरि जी से किया, जो वर्तमान महाराणी साहिबा हैं, और जिनके एक पुत्र महाराजकुमार श्री० सुदर्शन देव जी और दो राजकुमारियाँ—चन्द्रप्रभा और ज्योतिप्रभा देवी हैं। दूसरी इच्छा यह थी कि हिन्दी के लिए कुछ दिया जावे। तदनुसार श्रीउम्मेद-सिंह जी ने एक लाख रुपए इस निमित्त पृथक् किया। जिसमें से सत्रह हज़ार रुपए देकर 'काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा' से 'श्रीमती सूर्यकुमारी ग्रन्थमाला' के प्रकाशन की व्यवस्था कराई गई। इस माला में इस समय तक चौदह पुष्प निकल चुके हैं, जो हिन्दी-संसार में अच्छा आदर प्राप्त कर चुके हैं। वहाँ से प्रकाशित पुस्तकों में माला के प्रकाशन सम्बन्ध में, परिचय शीर्षक लेख में उसका विस्तृत विवरण दिया रहता है। विश्व-विख्यात गुरुकुल विश्वविद्यालय काँगड़ी में तीस सहस्र रुपए से 'श्रीसूर्यकुमारी हिन्दी-पीठ' की स्थापना की और उसके साथ ही पाँच सहस्र रुपए से 'सूर्यकुमारी-निधि' स्थापित की, जिससे 'सूर्यकुमारी ग्रन्थावलि' के प्रकाशित होने की व्यवस्था है। इसका पहला ग्रन्थ 'योगेश्वर कृष्ण' अभी-अभी प्रकाशित हुआ है। ख़ास शाहपुरा के दरबार हाईस्कूल में भी पाँच सहस्र रुपए से 'श्रीसूर्यकुमारी विज्ञान-भवन' की स्थापना की गई है।

अपने पुत्र महाराजकुमार श्री० सुदर्शन देव की शिक्षा के लिए आर्य-जगत् के प्रसिद्ध विद्वान, 'मनोविज्ञान' नाम की पुस्तक पर मङ्गलाप्रसाद पारितोषिक पाने वाले श्री० प्रोफ़ेसर सुधाकर जी, एम० ए० को छः वर्ष तक रख कर फिर मेयो कॉलेज में भेजा, जहाँ वे अभी शिक्षा पा रहे हैं।

वैदिक-धर्म के प्रति आपकी असीम श्रद्धा है। फल-स्वरूप आप न केवल श्री० महाराजकुमार जी का ही, प्रत्युत दोनों राजकुमारियों का भी उपनयन संस्कार वैदिक रीति से कराया है। जहाँ लड़कों के उपनयन में भी लोगों की उदासीनता रहती है, वहाँ बालिकाओं का उपवीत कराने में आपकी उत्सुकता वैदिक कर्मकाण्ड के प्रति अगाध श्रद्धा का ज्वलन्त उदाहरण है।

अखिल भारतवर्षीय राजपूत महासभा के प्रधान हिज़ हाईनेस महाराजा अलवर के इङ्गलैण्ड जाने पर उनके आदेशानुसार इन्होंने ही प्रधान-पद का कार्य किया। उस समय सभा की स्थिति बड़ी ही नाज़ुक हो रही थी।

उसे आपने बड़ी ही नीति-कुशलता और चतुरता से सुधारा, जिससे क्षत्रिय-संसार पूर्ण परिचित है। 'राजस्थान क्षत्रिय महासभा' अजमेर की भी आर्थिक दशा सुधारने तथा उसके सञ्चालन में आप सदा सम्मिलित रहे। एक वर्ष तक आर्य-प्रतिनिधि-सभा, राजस्थान और मालवा के प्रधान रहे, और अब उसके स्थायी संरक्षक हैं। इसके सिवा आप श्रीमती परोपकारिणी सभा, जो कि आर्य-समाज की सर्वोपरि तथा स्वामी दयानन्द जी की उत्तराधिकारिणी सभा है, के सदस्य हैं।

राज्य की विधवाओं की दुर्दशा से द्रवीभूत होकर आपने अपनी धर्मपत्नी के नाम पर 'श्रीलाड़कुँवरि विधवाश्रम' की स्थापना की है, जिसके स्थायी कोष में पच्चीस हज़ार रुपए जमा हैं। इसके सूद से राज्य की विधवाओं को सहायता तथा उन्हें सिलाई और बुनाई आदि की शिक्षा दी जाती है। अपङ्गों और अपाहिजों के लिए दो सहस्र रुपए वार्षिक नियत हैं, ताकि उनसे जो कार्य वे कर सकते हैं, कराया जाय और उन्हें भोजन-वस्त्र दिया जावे। इसके लिए उद्योग हो रहा है और आशा है कि शीघ्र ही सुचारु रूप से यह कार्य भी चलने लगेगा।

आपकी कनिष्ठा सहोदरा श्रीमती बाई जी साहिबा लक्ष्मीकुँवरि जी जो कि बढ़वान स्टेट की महाराणी थीं, असमय देहान्त होने पर वर्तमान महाराणी साहिबा ने पाँच सहस्र रुपए से 'श्रीलक्ष्मीबाई रक्षा-निधि' की स्थापना की, जिसमें स्वच्छता से प्रसूति-कार्य कराने में प्रोत्साहन दिया जाता है तथा दीन-दरिद्र स्त्रियों को प्रसव के समय सहायता दी जाती है। इसके सिवा स्टेट हॉस्पिटल के साथ म्योर मैटर्निटी विभाग है और वह भी अपना काम करता है। यह संस्था भी उसे सहायता देती है।

मेयो कॉलेज से अलग होने के बाद कुछ समय तक आप देवली के पोलिटिकल एजेण्ट के पास रह कर राज्य-सञ्चालन सम्बन्धी काम सीखते रहे। कई वर्षों तक (स्वर्गीय राजाधिराज के समय में) दीवान-पद पर भी आपने कार्य किया है। सन् १९११ में स्वर्गीय राजाधिराज विलायत गए थे, तो सारे राज्य का कार्य-भार आपके ही सुपुर्द कर गए थे और आपने उसे बड़ी योग्यता से सँभाला था।

अभी हाल में ही आपका राज्याभिषेक पूर्ण वैदिक रीति से हुआ है, जिसमें पूज्य स्वामी शङ्करानन्द जी महाराज तथा पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार भी सम्मिलित थे। यह कार्यवाही आदि से अन्त तक धार्मिक कृत्य के रूप में हुई। पहिले दिन बृहद् यज्ञ के प्रारम्भ में मणिबन्ध की व्याख्या करते हुए पं० बुद्धदेव जी विद्यालङ्कार ने बतलाया कि यह दर्भ और उदुम्बर, जिससे मणिबन्ध की क्रिया सम्पन्न की जाती है, तप और वीर्य के प्रतिनिधि हैं। इनका बन्धन इस समय जो हो रहा है, इसका तात्पर्य यह है कि राजा का तपस्वी और जितेन्द्रिय होना ही उसकी सफलता का रहस्य है।

सिंहासनारोहण तथा राज्यतिलक होने पर ठाकुर भूपसिंह जी जुडीशियल मेम्बर ने श्रीमान् की तरफ़ से घोषणा करते हुए अपनी छोटी सी वक्तृता में यह बतलाया कि यह सिंहासन देखने में जैसा सुन्दर है, वैसा ही कर्तव्य की दृष्टि से बड़ा कठोर भी है। यह सुन्दर गुदगुदा गद्दा नहीं, प्रत्युत कण्टकाकीर्ण कर्तव्य-पथ है। इसके पश्चात् निम्नस्थ घोषणा हुई।

१—१५,०००) रुपए लगा कर कोई लोकोपकारी कार्य स्वर्गवासी राजाधिराज की स्मृति में किया जावे। तदनुसार एक शिल्प-संस्था क़ायम की गई है।

२—१०००) देव-स्थानों की भेंट में।

३—एक लाख रुपए बक़ाया लगान कृषकों का माफ़ किया गया। पाठकों को मालूम होगा कि अभी जुबली के अवसर पर भी एक लाख की माफ़ी की गई थी।

४—सत्रह क़ैदी छोड़े गए।

५—श्रीमान् के लघु भ्राता, जो अभी तक महाराजकुमार कहलाते थे, उन्हें महाराज की उपाधि दी गई और अब वे महाराज साहब कहे जावेंगे।

६—राजगुरु पं० यमुनादत्त जी षट्शास्त्री को अभ्युत्थान तथा आसन का सम्मान दिया गया। यही श्रीमान के बाल्यकाल में शिक्षक रहे।

७—शाहपुरा शहर के बाहर चारों दरवाज़ों पर चार प्याऊ पशुओं के लिए बनाए जावें।

इसके पश्चात् पं० बुद्धदेव जी ने पुष्पमाला धारण करा कर आशीर्वादात्मक एक श्लोक पढ़ा, और महोत्सव सम्पन्न हुआ।

माधुरी

हाल ही में हमको सुप्रसिद्ध इम्पीरियल फ़िल्म कम्पनी के "माधुरी" नामक चित्रपट को देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। इस चित्रपट को देख कर हमें बड़ी प्रसन्नता हुई। प्लॉट, चरित्र-चित्रण, सङ्गीत, फ़ोटोग्राफ़ी इत्यादि सभी बातों में इस खेल के अन्तर्गत हमें कुछ ख़ास विशेषताएँ दृष्टिगोचर हुईं। जिनका संक्षिप्त दिग्दर्शन पाठकों के सम्मुख कराना हम अपना कर्तव्य समझते हैं।

इस चित्रपट का प्लॉट या कथाभाग वैसे देखा जाय तो एक बहुत ही साधारण घटना के आधार पर तैयार किया गया है। मगर लेखक की लेखनी ने इस साधारण घटना में ही चतुराई के साथ रङ्ग भर कर उसे बहुत आकर्षक और दिलचस्प बना दिया है। प्लॉट इस प्रकार है—उज्जैन-नरेश के सेनापति अम्बरराज विजय प्राप्त कर लौटते हैं और अपने यहाँ विजय-पताका रोपते हैं। इसी समय कन्नौज के महासामन्त आकर उनके इस कार्य में बाधा डालते हैं और उनको लड़ने को ललकारते हैं। दोनों में द्वन्द युद्ध होता है, जिसमें अम्बरराज का पैर फ़िसल जाता है और वह पराजित हो जाता है। इस घटना से उसकी प्रेमिका 'माधुरी' को बहुत दुःख होता है। वह उसका बदला लेने के लिए तलवार लेकर आती है और लड़ने के लिए महासामन्त को ललकारती है। अन्त में माधुरी महासामन्त को परास्त कर देती है और इसी ख़ुशी के उपलक्ष में उज्जैन-नरेश अम्बर के साथ उसकी शादी कर देते हैं।

उज्जैन का राजकुमार टीका, जिसको इस चित्रपट में एक महा अय्याश और अलबेले के रूप में चित्रित किया गया है, माधुरी पर मरने लगता है और उसकी प्राप्ति के लिए कन्नौज-राज से जा मिलता है। उससे मिल कर कन्नौज के महासामन्त उज्जैन पर आक्रमण कर देते हैं। इसी समय टीका षड्यन्त्र से माधुरी पर अम्बर को दुराचरण का सन्देह पैदा करवा देता है। अम्बर गिरफ़्तार हो जाता है और इधर टीका के बलात्कार की चेष्टा करने पर माधुरी खिड़की से जलाशय में कूद पड़ती है। वहाँ जानकीबाई नाम की वेश्या उसे आश्रय देकर निकालती है। अम्बर क़ैदी के रूप में और माधुरी जानकीबाई के साथ में कन्नौज पहुँचते हैं। वहाँ अम्बर को फाँसी की आज्ञा होती है। इस आज्ञा को रद्द करवाने के लिए माधुरी रात भर राज-दरबार में नाच दिखला कर महाराज से राजमुद्रा प्राप्त कर लेती है। इस मुद्रा को महासामन्त मार्ग ही में छीन कर माधुरी को क़ैदख़ाने में बन्द कर देता है। अम्बर फाँसी की टिकटी पर चढ़ाया जाता है, उसी समय जानकीबाई के कौशल से माधुरी पुरुष-वेष धारण कर बड़े विचित्र ढङ्ग से अम्बर को बचा लेती है। अम्बर संन्यास धारण कर जङ्गल में चला जाता है। इधर माधुरी को महासामन्त और टीका दोनों प्राप्त करने की कोशिश करते हैं। इस प्रयत्न में दोनों आपस ही में लड़ कर घायल हो जाते हैं, जिसमें महासामन्त की मृत्यु हो जाती है। माधुरी अपने घायल भाई की प्यास बुझाने के लिए पानी की तलाश में जाती है, वहाँ अम्बर से उसका साक्षात्कार हो जाता है। वह पानी के लिए उससे प्रार्थना करती है, पर वह पानी देने से इन्कार कर देता है। इसी समय कन्नौज के सिपाही महासामन्त की हत्या का दोषारोपण कर माधुरी को पकड़ ले जाते हैं। अम्बर खड़ा-खड़ा देखता रहता है। कुछ समय

पश्चात् टीका और जानकीबाई से उसका साक्षात्कार होता है। जहाँ उसे माधुरी की निर्दोषिता का पता लगता है। अब ये सब मिल कर माधुरी को छुड़ाने की फ़िक्र में जाते हैं। मगर उधर माधुरी को जीती जला देने की राजाज्ञा हो जाती है। जिस समय अम्बर और टीका वहाँ पहुँचते हैं, उस समय उसकी चिता को भयङ्कर रूप से धधकती हुई देखते हैं।

यहाँ तक तो प्लॉट का विकास बहुत स्वाभाविक गति से हुआ है। मगर इसके आगे दर्शक धधकती हुई चिता को देखने के पश्चात् माधुरी को पुनः जीवित रूप में देखते हैं, वहाँ प्लॉट बहुत कृत्रिम और अस्वाभाविक हो गया है। हमारा तो ख़याल है कि लेखक ने केवल इसी सिद्धान्त पर कि—भारतीय मनोवृत्ति ट्रेजिडी को पसन्द नहीं करती, इसको ज़बरदस्ती खींच-तान कर कॉमेडी बनाया है। इस कथानक का विकास जिस ढङ्ग से हुआ है, उसे देख कर हमारा यही ख़याल था कि लेखक इसी धधकती चिता से कथानक को समाप्त कर अम्बर को जीवन भर पश्चात्ताप की अग्नि में जलने के लिए छोड़ देगा। नैतिक दृष्टि से भी यही बात ठीक थी। जिस अम्बर ने माधुरी पर इतने भयङ्कर अत्याचार किए, जिसने उसे बिना किसी प्रमाण के एक साधारण सन्देह पर लाख अनुनय-विनय और प्रार्थना करने पर भी ठुकरा दिया; जिसने दहकती हुई मरुभूमि में प्यास से तड़पती हुई उस भोली बालिका को एक घूट जल देने से भी इन्कार कर दिया, उस निर्दयी, दुष्ट और पिशाच-वृत्ति वाले अम्बर को क्या हक़ था कि वह माधुरी के समान सुन्दर, वफ़ादार और कर्तव्यशील पत्नी को पुनः प्राप्त करे? यदि उन्हें अपने प्लॉट को कॉमेडी ही बनाना था, तो अम्बर के चरित्र को इतना दुर्बल और पतित चित्रित करने में बहुत विचार से काम लेना चाहिए था! मगर जिस देश में स्त्रियों को निर्माल्य, ग़ुलाम और भोग्य-वस्तु मात्र समझा गया है, उस देश के लेखकगण स्त्रियों के सम्बन्ध में जो न कर डालें वही थोड़ा है।

इस खेल में प्रधान चरित्र माधुरी, अम्बर, टीका, जानकीबाई, महासामन्त तथा टीका के मुसाहिब का है। यदि यह कहा जाय तो अतिशयोक्ति न होगी कि इस खेल की जान माधुरी का चरित्र है। इस चरित्र में हमको बाल्यजीवन का भोलापन, यौवन का उद्दाम उच्छ्वास, और प्रौढ़ जीवन की एकान्त निष्ठा, इन तीनों का एक अपूर्व सम्मेलन बड़े ही सुन्दर ढङ्ग से गुँथा हुआ मिलेगा। इस नारी के प्रबल वेग से बहते हुए जीवन-प्रवाह में कहीं पर हमको घटनाओं की भयङ्कर आँधी चलती हुई दिखलाई देती है, तो कुछ ही समय के पश्चात् आशा की अमर चाँदनी में यह आनन्द की क्रीड़ा करती हुई दिखलाई देती है। जिस समय दर्शक उसको नृत्य-कला की शिक्षा ग्रहण करते हुए देखते हैं और वह अपने अद्भुत हाव-भाव से दर्शकों के कलेजे को मसोस देती है, उस समय क्या कोई अनुमान कर सकता है कि यही विलास की ललित लहरों में बहने वाली रमणी किसी समय युद्ध के मैदान में तलवार लेकर महाचण्डी का रूप धारण कर लेगी और कन्नौज के महासामन्त को पछाड़ देगी। प्राचीनता के अन्ध पृष्ठ-पोषक भले ही माधुरी के इस चरित्र-चित्रण में उच्छृङ्खलता और उद्दण्डता की झलक देखें, मगर नारी के जीवन में जो एक कठोर और सूक्ष्म सत्य छिपा रहता है, उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। यही सत्य उस समय और भी उज्ज्वल रूप में प्रकट होता है, जब कि अम्बर उस पर दुराचार का लाञ्छन लगाता है। वह बेचारी इतनी भोली थी कि उसका "दूध-भाई" टीका उसके प्रति भयङ्कर पाप-वासना की भावना को लेकर आया, मगर वह उसे न पहचान सकी। उसका हृदय शिशु के समान भोला और उसकी आत्मा गङ्गा-जल की तरह निर्मल थी। उसमें पाप का प्रतिबिम्ब पड़ना भी कठिन था। वह पवित्र थी, इसलिए अपवित्र को न पहचान सकी। मगर अम्बर? वह तो उसी समाज का एक अङ्ग था, जिस समाज में पवित्र से पवित्र नारी को भी शङ्का की दृष्टि से देखने का एक रिवाज पड़ा हुआ है। जिसमें विश्वास को स्थान नहीं है—सात्विकता को स्थान नहीं है—कृतज्ञता को स्थान नहीं है। जिसमें केवल अधिकार और स्वेच्छाचारिता की तूती बोल रही है। लाख वह बहादुर था, देश-प्रेमी था, मगर उसमें उस सत्य-शोधकता और सहनशीलता का अस्तित्व न था, जो प्रत्येक उन्नत समाज में हरएक व्यक्ति को दाय-रूप में मिलती है। उसने उस घटना पर कुछ भी विचार न किया, सत्यान्वेषण की कोशिश न की, और उस पवित्र-हृदया बालिका को परित्याग कर दिया। अगर कोई दूसरी स्त्री होती तो वह अपनी सचाई को साबित करने

में पचासों दलीलें देती, अनुनय-विनय करती, और अपने को निर्दोष साबित करने का प्रयत्न करती। मगर वह भोली बालिका सिवाय रोने के कुछ भी न कर सकी।

इस स्थान से आगे चल कर इसके चरित्र का 'प्लॉन' एकदम बदल जाता है। इस बालिका की जो शक्तियाँ अभी तक नाच-रङ्ग में, शृङ्गार-उद्दीपन में, प्रेमालाप में तथा युद्ध-कला को सीखने में लगी हुई थीं, वही अब चरित्र-सङ्गठन में तथा अपने पति की जीवन-रक्षा और उसकी पुनः प्राप्ति के प्रयत्न में लगती हैं। यहाँ पर लेखक की कल्पना संसार में प्रचलित इस महान सत्य को प्रत्यक्ष करके बतलाती है कि "शक्ति में विजय है।"

आगे चल कर जब यह असहाय रमणी जानकीबाई वेश्या के हाथ में पड़ जाती है और वह इसे नाना प्रकार के प्रलोभन और भय दिखला कर वेश्यावृत्ति के लिए प्रेरित करती है, उस परिस्थिति में किसी भी साधारण ललना के लिए अपने सतीत्व और आत्मगौरव की रक्षा करना कठिन हो सकता था। मगर तेजोमयी माधुरी ने उस भीषण परिस्थिति में न केवल अपनी ही रक्षा कर ली, प्रत्युत उस जन्म की वेश्या जानकीबाई को भी सुमार्ग पर लगा कर अपनी सहायिका बना लिया। इस स्थान पर उसकी वही प्रतिभा प्रकट होती है, जिसकी एक किरण-मात्र से पापी पुण्यात्मा बन जाता है, नरक स्वर्ग हो जाता है, और उजड़ा हुआ खण्डहर हरा-भरा बग़ीचा होकर लहलहाने लगता है। फिर यही नारी जब रात भर अपनी नृत्य-कला से महाराज कन्नौज को मुग्ध कर अम्बर के छुटकारे की राज-मुद्रा प्राप्त कर लेती है तथा उसके पश्चात् मुद्रा छिन जाने पर पुरुष-वेश धारण कर फाँसी की टिकटी पर पहुँचे हुए अपने पति की रक्षा कर लेती है, तब दर्शकों के हृदय में उसके प्रति अत्यन्त सम्मान के भाव उत्पन्न होते हैं। इस स्थान पर इस अद्भुत रमणी में जीवित भारतीय आदर्शों के दर्शन होते हैं।

कहने का तात्पर्य यह कि माधुरी का चरित्र शुरू से आख़िर तक घटनाओं का एक समूह है। ज़बर्दस्त उत्थान, पतन और गति-विधि के बीच इसके चरित्र का विकास होता है। कहीं पर यह रमणी मूर्तिमान शृङ्गार रस से भी अधिक मोहक और आकर्षक रूप में हमारे सम्मुख उपस्थित होती है, तो कहीं काल से भी अधिक भयङ्कर और रौद्ररस से भी अधिक प्रचण्ड रूप में स्वयं भगवती चण्डी की तरह आकर हमारे हृदय में वीररस की धारा प्रवाहित कर देती है और उसके पश्चात् मूर्तिमान करुणा रस का रूप धारण कर हमारे हृदय और आँखों में सहानुभूति का सोता बहा देती है। मगर इन सब परिस्थितियों में भी उसका हृदय शरद्-चाँदनी की तरह शीतल, झरने के कलकल नाद की तरह मधुर और गङ्गाजल की तरह निर्मल रहता है।

इसके स्त्री-पात्रों में जिस प्रकार माधुरी प्रधान है, उसी प्रकार पुरुष-पात्रों में प्रधान पार्ट अम्बर का है। मगर माधुरी के चरित्र में नारी-सुलभ जिन दिव्य गुणों का विकास इस खेल में हुआ है, अम्बर में वह कुछ भी नहीं है। वह एक अत्यन्त साधारण श्रेणी का पुरुष है। कोई भी अलौकिकता उसके चरित्र में नहीं दिखाई देती। माधुरी उसके कौन से दिव्य गुणों को देख कर उस पर मुग्ध हुई, यह बात बहुत विचार करने पर भी समझ में नहीं आती। वह एक बहादुर ज़रूर है, मगर उसकी बहादुरी का भी वहाँ दिवाला निकल जाता है, जहाँ कि महासामन्त के द्वारा वह परास्त हो जाता है। उसके पश्चात् भी उसमें किसी दिव्य गुण के दर्शन नहीं होते। वह उसी भारतीय रूढ़ि का उपासक है, जिसके वश होकर यहाँ के पुरुष हमेशा अपनी स्त्रियों को सन्देह की निगाहों से देखते रहते हैं। इसी रूढ़ि के वश होकर एक साधारण सी घटना पर बिना सत्यासत्य का निर्णय किए ही वह अपनी देवाङ्गना सदृश पत्नी को—जिसने गाढ़े समय में (द्वन्द युद्ध में) उसकी कीर्ति-रक्षा की थी—मुट्ठी भर धूल की तरह फेंक देता है। उसमें न तो विचार की दृढ़ता है और न विवेक की बाहुल्यता ; और उस स्थान पर तो वह साधारण मनुष्य से भी गिरा हुआ, महा-भयङ्कर और पतित दृष्टिगोचर होता है, जहाँ पर भयङ्कर मरुभूमि में प्यास से तड़पती हुई माधुरी के बार-बार प्रार्थना करने पर भी वह उसको एक घूँट जल देने से इन्कार कर देता है। इस समय उसके इस व्यवहार को देख कर नृशंसता भी दहल उठती है। पैशाचिकता हाहाकार करने लगती है, और कृतघ्नता भी आँसू बहाने लगती है। अनेक नाट्यकारों ने मनुष्य को समय-समय पर पाशविक रूप में चित्रित किया है। मगर नृशंसता का यह भयङ्कर चरित्र मनुष्य-प्रकृति के ख़िलाफ़

बहुत अस्वाभाविकता में चला गया है। क्या ही अच्छा होता यदि उसी मरुभूमि में कुछ घटनाओं का समूह एकत्रित करके माधुरी और अम्बर का मिलन करा दिया जाता और खेल की समाप्ति हो जाती। इससे माधुरी को पानी न देने वाली पैशाचिक घटना—जोकि दर्शकों के हृदय पर बहुत ही बुरा प्रभाव डालती है—का भी अस्तित्व न रहता, और अन्त में नाटक को कॉमेडी (सुखान्त) बनाने के लिए लेखक को प्लॉट में जो भद्दे ढङ्ग की खींच-तान करनी पड़ी है, वह अवसर भी न आता।

इस खेल में माधुरी का पार्ट सिनेमा-स्टार मिस सुलोचना करती है। मिस सुलोचना ने अपने सफल ऐक्टिङ्ग से सारे सिनेमा-संसार में ख्याति प्राप्त कर ली है। मगर जहाँ तक हमारा ख़याल है, इस अभिनय में उसे अभूतपूर्व सफलता प्राप्त हुई है। इस खेल में माधुरी का चरित्र-चित्रण जितना पेंचीदा है, उसको सफलतापूर्वक सँभाल लेना साधारण अभिनेता का काम नहीं। मगर यह बरबस स्वीकार करना ही पड़ेगा कि जितना कमाल लेखक ने इसके चरित्र-चित्रण में किया है, उससे अधिक सुलोचना ने इसके अभिनय में किया है। बारीक से बारीक भावों को उसने बड़े ही ललित ढङ्ग से चित्रित करके बतला दिया है, फिर भी हँसने और रोने के दृश्यों में जिस स्वाभाविकता की आवश्यकता है, उसमें ज़रूर कुछ कमी रह गई है।

अम्बर का पार्ट इस खेल में मि० पटवर्धन करते हैं। इसके चरित्र-चित्रण में पहले तो लेखक की क़लम असफल हुई और उसकी रही-सही विशेषता की भी आप रक्षा न कर सके। ऐसा सुनते हैं कि मि० पटवर्धन सुप्रसिद्ध गन्धर्व नाटक-मण्डली के एक प्रसिद्ध ऐक्टर हैं। सम्भव है, यह बात सच हो। मगर इस खेल में आपकी प्रतिभा विकसित न हो पाई, यह मानना ही पड़ेगा। ख़ास कर सुलोचना के साथ काम करने में जिस विशेष पर्सनेलिटी (व्यक्तित्व) और प्रतिभा की ज़रूरत थी, यह आप व्यक्त न कर सके। हमारे ख़याल से यदि आपके स्थान पर मास्टर विट्ठल या डी० बिलीमोरिया होते, तो खेल में अधिक जीवन आ जाता।

इस चित्रपट की फ़ोटोग्राफ़ी में कम्पनी ने बहुत दिलचस्पी से काम लिया है और यह निस्सङ्कोच होकर मानना पड़ेगा कि उसमें इसे बहुत अच्छी सफलता भी प्राप्त हुई है। इन दिनों हमको बहुत से टॉकी फ़िल्म देखने का अवसर मिला, मगर इस फ़िल्म की फ़ोटोग्राफ़ी देख कर हमें बहुत सन्तोष हुआ। इसके अधिकांश फ़ोटो उदयपुर की सीन-सीनरियों से लिए गए हैं। यह स्थान प्रकृति का अत्यन्त सुन्दर लीला-निकेतन है। ऐसे सुन्दर दृश्यों के साथ बढ़िया फ़ोटोग्राफ़ी का मेल होने से सोने में सुगन्ध का काम हो गया है। ख़ासकर अम्बर और माधुरी के प्रथम मिलन की तथा सुहागरात्रि की फ़ोटोग्राफ़ी बहुत ही आकर्षक है।

इस खेल की जो सरसरी स्थिति है, उसको देखते हुए इसका रेकॉर्डिङ्ग बहुत असफल रहा। अगर इस खेल के लिए हमको सबसे बड़ी शिकायत है, तो इसके रेकॉर्डिङ्ग की है। इस सम्बन्ध में हमको मदन कम्पनी के शीरीं फ़रहाद और लैला-मजनूँ के रेकॉर्डिङ्ग बहुत पसन्द आए।

सारे खेल में सङ्गीत और नृत्य की व्यवस्था बहुत ही समसामयिक, सुरुचिपूर्ण और पर्याप्त है। मिस सुलोचना का नृत्य और सङ्गीत तो इस खेल में सर्वप्रधान और आकर्षक है ही, मगर मि० पटवर्धन भी इस कला में अच्छे सफल हुए हैं। यद्यपि एक-दो स्थानों पर उनके गायन बहुत लम्बे हो जाने से दर्शक कुछ उकताने लगते हैं, मगर कला की दृष्टि से उनके महत्व में कोई अन्तर नहीं आता। मिस चन्दा (जानकीबाई) के गाने भी अच्छे हैं। यद्यपि उम्र की प्रौढ़ता की वजह से उनके गाने में विशेष भाव-भङ्गी, मादकता और लालित्य नहीं है। फिर भी माधुर्य और कला की दृष्टि से वह सफल हुई हैं।

डायरेक्शन में भी इस खेल में डायरेक्टरों को अच्छी सफलता प्राप्त हुई है।

सारी बातों पर सरसरी निगाह से विचार करने पर हम इस खेल को सफल ही मानते हैं और इसके लिए कम्पनी का अभिनन्दन करते हैं।

—चन्द्रराज भण्डारी, विशारद
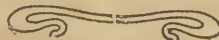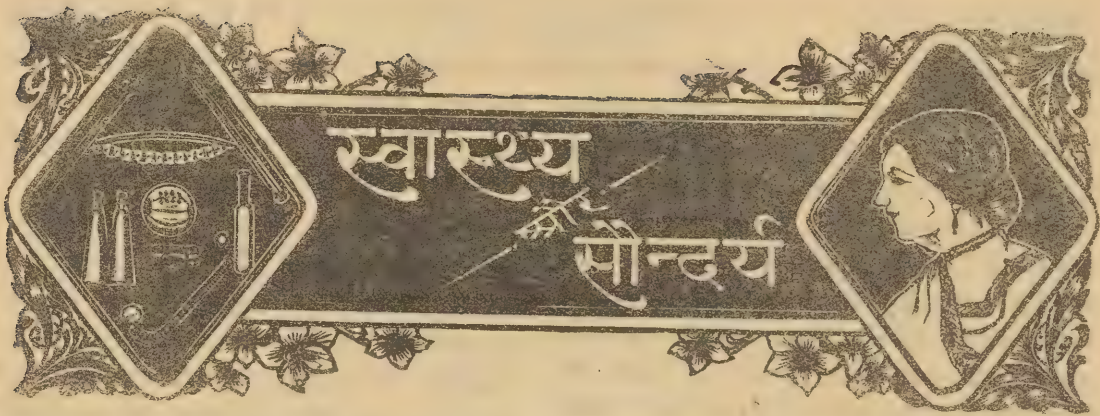
दृष्टि-शक्ति-क्षीणता की चिकित्सा

'चाँद' के अगस्त मास के अङ्क में किन्हीं नवयुवक महोदय ने आजकल के नवयुवक समुदाय की नेत्र-दृष्टि की कमज़ोरी का वर्णन करते हुए उसकी चिकित्सा के विषय में उपयुक्त प्रश्न किया है। अब से दो-तीन मास पूर्व से ही हमारा विचार इस विषय पर लिखने का हो रहा था, परन्तु खेद है कि कार्यवश हम उस समय इस विषय पर कुछ न लिख सके। अब उक्त महाशय की विशेष प्रेरणा होने पर लिखना ही उचित समझा। यद्यपि इस विषय पर जितना भी विस्तार-पूर्वक लिखा जाय, उतना ही विशेष लाभदायक है, तथापि हम संक्षेप में ही इस पर लिख देना उचित समझते हैं।

दृष्टि-शक्ति की क्षीणता होने के बहुत से कारण हैं, तथापि उनमें मुख्यतया ये कारण हैं :—

आँखों से बहुत सूक्ष्म (बारीक) कार्य करना; अत्यन्त तीव्र प्रकाश वाले पदार्थ जैसे—सूर्य, तेज बिजली की रोशनी आदि की ओर देखना; रात्रि और सन्ध्या-समय में पढ़ना; नमक, क्षार (खार), चरपरे और अम्ल (खट्टे) पदार्थों का अधिक मात्रा में सेवन करना; धूप, धूल और धुआँ में ज़्यादा काम करना, मल-मूत्रादि के वेगों को रोकना, शारीरिक दुर्बलता और पौष्टिक आहार की कमी; ये ही विशेष कारण आजकल के नवयुवकों की दृष्टि-शक्ति को दुर्बल बना रहे हैं। इसलिए इनसे बचना चाहिए।

चिकित्सा—दृष्टि-शक्ति को बढ़ाने के लिए चश्मे का व्यवहार करना उत्तम मार्ग नहीं है। इससे नेत्रों को केवल सहायता मात्र मिलती है। यह आशा करना कि कुछ दिन चश्मे के व्यवहार करने से नेत्रों की ज्योति बढ़ जायगी, केवल दुराशा मात्र ही है। इस बात को सब लोग देखते हैं और जान रहे हैं कि जिन लोगों की देखने की शक्ति बहुत कमज़ोर है, वे यदि दस-बीस वर्ष भी चश्मा लगाते हैं, तो भी उनकी दृष्टि-शक्ति नहीं बढ़ती, अपितु यदि चश्मा समय पर न मिले अथवा खो जाय तो वे न लिख-पढ़ सकते हैं और न कुछ कार्य ही कर सकते हैं। इसलिए दृष्टि-शक्ति बढ़ाने वाले उपायों में चश्मे का व्यवहार कुछ भी लाभदायक सिद्ध नहीं हुआ। अब हम पाठकों को दो-तीन प्रयोग बतलाना आवश्यक समझते हैं। हमारे बताए हुए प्रयोगों से नवयुवकों को विशेष लाभ होगा। जिस प्रकार नेत्रों की ज़रा भी ख़राबी होने पर आजकल नवयुवकों को चश्मे के व्यवहार करने की उत्कट अभिलाषा हो जाती है, उसी प्रकार विशेष उत्साह से यदि वे ४-६ मास भी लगातार हमारे इन शास्त्रीय प्रयोगों को उपयोग में लाएँगे, तो उन्हें विशेष और स्थायी लाभ होगा। वे प्रयोग ये हैं—

प्रयोग नं० १—प्रातःकाल सोते से उठते ही बासी शीतल जल से आँखों और मुँह को छपके दे-देकर ख़ूब धोना चाहिए। इससे नेत्रों की ज्योति और चेहरे की कान्ति बढ़ती है। चेहरे पर होने वाले मुहाँसे, झाँईं, काले दाग़, प्रभृति विकार नष्ट होकर चेहरा स्वस्थ व सुन्दर हो जाता है।

प्रयोग नं० २—बड़ी हरड़ का छिलका एक छटाँक, बहेड़े का छिलका एक छटाँक, सूखे आँवले गुठली निकाल कर एक छटाँक, इन तीनों चीज़ों को बाज़ार से उत्तम-उत्तम लाकर उन्हें जौकुट करके तीनों को मिला कर रख लेना चाहिए। इस जौकुट चूर्ण में से १॥ तोला

लेकर किसी काँच, चीनी या उत्तम मिट्टी के बर्तन में डेढ़ पाव (छः छटाँक) पानी में रात्रि को सोने से पूर्व भिगो देना चाहिए। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि वह बर्तन, जिसमें यह दवा भिगो दी गई है, ग्रीष्म ऋतु (गर्मी) में रात्रि को चौड़ी जगह में ओस में रक्खा जाय। यदि वर्षा-ऋतु अथवा शीत-ऋतु (जाड़े) के दिन हों तो उस बर्तन को खुली जगह में नहीं रक्खें, अपितु किसी अच्छे सुरक्षित स्थान में उसको रख दिया जाय; परन्तु उस बर्तन के मुँह को किसी काग़ज़ के टुकड़े से ढँक देना चाहिए, जिससे उस दवा में कङ्कड़, धूल, मिट्टी अथवा किसी प्रकार का कोई कृमि, कीट-पतङ्ग उसमें न पड़ सके। फिर प्रातःकाल ही उस दवा को हाथ साफ़ करके ख़ूब मल कर बहुत बारीक और साफ़ कपड़े में छान लेना चाहिए। इस औषधि के छने हुए जल से नित्य-प्रति आँखों को धोना चाहिए। जिनकी नेत्र-दृष्टि दुर्बल हो, उन्हें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि उनको क़ब्ज़ (Constipation) की शिकायत न हो, क्योंकि क़ब्ज़ के बढ़ने से नेत्रों की दृष्टि दुर्बल पड़ती है। जिन्हें नेत्रों की दुर्बलता के साथ-साथ क़ब्ज़ का भी रोग हो उनको चाहिए कि २॥ तोले इस त्रिफला के मोटे चूर्ण को रात्रि में आध सेर जल में भिगो देवें। फिर प्रातःकाल उसी प्रकार मल-छान कर उस जल में से आधा तो पी जावें और बाक़ी शेष जल से आँखों को ख़ूब धोवें। जिन लोगों को क़ब्ज़ नहीं रहता हो, केवल दृष्टि-शक्ति की ही कमज़ोरी हो, उन्हें "त्रिफला-जल" से केवल आँखें धोनी चाहिए, पीने की आवश्यकता नहीं। इस प्रयोग के लगातार एक-दो अथवा यदि रोग अधिक हो तो तीन-चार मास के ही सेवन से इतना अधिक लाभ होता है कि चश्मा लगाने की शिकायत बिलकुल ही दूर हो जाती है। नेत्रों की दृष्टि-शक्ति अत्यन्त बढ़ जाती है। इसके सिवाय पढ़ते समय आँखों से पानी ढलना, आँखों का दुखना, आँखों का हमेशा सुर्ख़ बना रहना, रोहे पड़ जाना, और पलकों का भारी पड़ जाना आदि-आदि बीमारियाँ इस प्रयोग से समूल नष्ट हो जाती हैं। यह वैद्यक-शास्त्र का हज़ारों बार परीक्षित प्रयोग है। प्रयोग करने पर इसके जितने गुण और लाभ मालूम होंगे, वह लिखे नहीं जा सकते। प्रश्नकर्त्ता महोदय अथवा अन्य महानुभावों को इसका प्रयोग करके लाभ उठाना चाहिए।

प्रयोग नं० ३—जिनकी आँखें बहुत कमज़ोर हों अथवा आँखों के अनेक रोग हों, उन्हें "त्रिफला-जल" के प्रयोग के साथ-साथ "त्रिफलाद्य घृत" का सेवन भी करना चाहिए। आँखों को धोने के पश्चात् प्रातःकाल "त्रिफलाद्य घृत" दो तोले को पाव भर गर्म दूध में अन्दाज़ से मिश्री मिला कर अथवा यदि दूध न मिले तो उस घृत में २ तोले मिश्री मिला कर खा लेना चाहिए। इसी प्रकार इस घृत का प्रयोग रात्रि को सोने से एक घण्टा पूर्व भी करना चाहिए। अर्थात् "त्रिफलाद्य घृत" प्रातः और रात्रि को दोनों समय खाना चाहिए। इस घृत के प्रयोग से न केवल नेत्र-रोगों को ही लाभ होगा, अपितु मस्तिष्क सम्बन्धी और वीर्य-विकारों (प्रमेह-स्वप्नदोष आदि) को भी लाभ होता है। स्मरण-शक्ति बढ़ती है, शरीर में बल-वीर्य का सञ्चार होता है। इस घृत का प्रयोग नवयुवकों को, जो विद्यार्थी अवस्था में हों, उन्हें तो अवश्य ही करना चाहिए। यह घृत अच्छे-अच्छे वैद्यराजों के यहाँ हर समय बना हुआ तैयार मिलता है। यदि समय पर नहीं हो तो शीघ्र ही तैयार कराया जा सकता है। हम तो यहाँ पर इस "त्रिफलाद्य घृत" का योग (नुसख़ा) भी लिख देते, परन्तु नुसख़ा लिखने पर भी वैद्यों के सिवाय उसे हर एक मनुष्य तैयार नहीं कर सकता, इस कारण लिखना भी अनुपयुक्त होगा।

नोट १—"त्रिफला-जल" से आँखों को धोते और "त्रिफलाद्य घृत" का प्रयोग करते समय तक अजीर्ण-कारक आहार, गुड़, तेल, खटाई, लाल मिर्च और बासी पदार्थ, इनका प्रयोग नहीं करना तथा मैथुन का परित्याग करना चाहिए।

२—यदि इस विषय पर किसी को कुछ पूछना हो तो जवाबी कॉर्ड द्वारा हमसे पूछ सकते हैं।

आयुर्वेदाचार्य,
सत्येन्द्रनाथ वैद्यराज,
राजामण्डी (आगरा)

[मुन्शी कन्हैयालाल, एम० ए०, एल्-एल्० बी०]

दो सयाने

ज़िले भर में ठाकुर का नाम सब जानते थे। वह एक अजीब तरह का आदमी था। लम्बा क़द, तगड़ा बदन, चमकीली आँखें और उलझे हुए बड़े-बड़े बाल जो शायद साल में दो दफ़ा से ज़्यादा न कटाए जाते थे, न कभी उनमें कङ्घी करने की नौबत आती थी, मनमाने बढ़ते और इधर-उधर लटका करते थे।

ठाकुर को सब जानते थे कि अच्छा लड़ने वाला है और हमेशा लड़ने को तैयार रहता है, हालाँकि उसे लड़ते किसी ने कभी देखा न था, और न सुना ही था कि वह कभी किसी से लड़ा है। तब भी यह बात सबके जी में बैठी हुई थी कि ठाकुर जिसे जब चाहे, ज़मीन नपा दे, उसे ताव दिलाने भर की देर है।

ठाकुर सभी से अपनी शान बघाड़ा करता था। कभी कहता—"मैं दुलत्ती चलाते गधे के पैरों को अनायास पकड़ सकता हूँ।" कभी कहता—"मैंने एक बार एक पुलिसमैन की लाठी एक स्वराजी के ऊपर चलाते छीन ली थी।" और कभी कहता—"काठ के बक्सों की कील तो मैं अपने दाँतों से उखाड़ लेता हूँ!" उसकी गप्प ऐसे ढङ्ग से कही जाती थीं कि सब देहात वाले उसका लोहा मान गए थे। किसी ने उसे गधे की टाँग पकड़ते नहीं देखा था, न स्वराजी वालण्टियर को पुलीस की लाठी की मार से बचाते और न किसी बक्स की कीलें ही दाँतों से निकालते देखा था, तब भी उसकी बहादुरी और उसके बल में किसी को ज़रा भी अविश्वास न था। यहाँ तक कि उसकी बहादुरी की सारे देहात में चर्चा रहती और लोग बातचीत में उसकी उपमा दिया करते—"यह ठाकुर जैसा बलवान है!" या "ठाकुर जैसा वीर!" या "ठाकुर की तरह यह भी दो-मना दाँत से उठा लेता है!"

२

गाँव के बड़े ज़मींदार लखनसिंह, जो तीसरे दर्जे के बेञ्च मैजिस्ट्रेट भी थे, एक दिन अपने बाहर के कमरे में बैठे स्कूल के नए मास्टर साहब से बातें कर रहे थे। मास्टर साहब सीधे-से आदमी जान पड़ते थे। अवस्था कोई पैंतीस साल के लगभग होगी। अचकन-पाजामा पहनते थे और वे मास्टर हैं, यह बात उन्हें कभी न भूलती थी।

दूर से ठाकुर आता दिखाई दिया। वह ज़मींदार साहब के दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया और बोला—बन्दगी ज़मींदार साहब!

"राम-राम ठाकुर! आओ, बैठोगे नहीं?"—ज़मींदार साहब ने उसका सत्कार करते हुए कहा। ठाकुर चला आया। ज़मींदार साहब ने उसका मास्टर साहब से परिचय करा दिया।

"बैठने का समय नहीं है, ज़मींदार साहब,"—ठाकुर ने ऐसे कहा जैसे नौकरी पर जाने के लिए देर होती हो—"मैं यहाँ मास्टर साहब से मिलने आया हूँ। उनके घर मालूम हुआ कि आपसे मिलने आए हैं।"

"क्या कोई बात अकेले में कहना है?"—ज़मींदार साहब ने पूछा—"ऐसा हो तो मैं अन्दर चला जाऊँ, जिसमें दोनों आदमी बातचीत कर लो।"

"नहीं साहब, आप बैठे रहिए"—ठाकुर ने इतमीनान दिलाते हुए कहा—"कोई अकेले में कहने की बात नहीं है। बात तो ऐसी है कि गाँव भर शाम तक जान जाएगा!" उसने खखारा और अपना गला साफ़ करके मास्टर साहब से कहा—"मैंने सुना है, मास्टर साहब, कि आप मेरे ख़िलाफ़ कुछ कह रहे थे, वही पूछने आया हूँ।"

मास्टर साहब सावधानी से खड़े हो गए। उनके चेहरे से शान्ति बरसती थी। लम्बाई में वे ठाकुर से एक मुट्ठी ऊँचे थे, और जब खड़े होकर उन्होंने सिर सीधा किया और शेरवानी का दामन झटक दिया, तो ऐसा जान पड़ा कि मास्टर साहब वहाँ ज़्यादा ठहरना नापसन्द कर रहे हैं।

"मैं कुछ कह-सुन नहीं रहा था।"—मास्टर साहब ने सावधानी से उत्तर दिया—"जब तक मुझे यह न मालूम हो कि तुमने मुझे क्या कहते सुना है, मैं न उससे इन्कार करूँगा और न उसे मानूँगा!"

ठाकुर अकड़ कर खड़ा हो गया। "मैंने सुना है"—ठाकुर ने कड़ी आवाज़ में कहा—"कि आप कहते थे कि मुझे व्याख्यान के समय बकबक न करना चाहिए, चुप रहने से आदमी ज़्यादा भलामानुस होता है। आपने यह कहा था?"

"आप क्या ऐसा करते हैं?"—मास्टर साहब ने पूछा, और उनकी आँखें चमकने लगीं।

"यह बहस नहीं है,"—ठाकुर ने ज़ोर से कहा—"मैं पूछता हूँ कि आपने यह कहा कि नहीं?"

"आप मेरे सवाल का पहले जवाब दीजिए!"

"अच्छा, तो मैं जवाब देता हूँ। आपसे मतलब! आप लड़के पढ़ावें, वह आपका काम है, बातचीत करना हमारा काम है। अपना अचकन उतार कर गली में चले आइए, इसका अभी फ़ैसला हुआ जाता है। आपने क़सूर किया है, मैं आपको ज़मींदार साहब के कमरे में पटक के उनके मेज़-कुर्सी नहीं तोड़ना चाहता—चलो बाहर!"

"अरे ठाकुर, हे ठाकुर, यह क्या करते हो?"—ज़मींदार साहब ने घबरा कर कहा—"ऐसा मत करो ठाकुर! हे! आप भी शान्ति से बैठिए!" पर दो में से किसी ने उनकी न सुनी, तब तो ज़मींदार साहब को भी गुस्सा चढ़ा, वह भी तन कर खड़े हो गए और कड़क कर बोले—"हज़रात!" आवाज़ बिलकुल मैजिस्ट्रेट जैसी थी, "अगर

स्वराज्य

खण्डवा, २९-११-३२

प्रयाग का "क्रान्तिकारी" 'चाँद' इस अङ्क (नवम्बर) से अपने जीवन के १० वर्ष समाप्त कर ११वें वर्ष में प्रविष्ट हो रहा है। उसका जीवन समाज की विभिन्न क्रान्तियों का सजीव इतिहास है। उसने जन्म लेकर हिन्दी-साहित्य में नवीन स्पर्धा, नई दिशा और नई रुचि को पल्लवित किया है। हिन्दी में एकाङ्गी उद्देश्य को जीवन का लक्ष्य मानने वाले जो इने-गिने पत्र हैं उसमें 'चाँद' की गणना सहज हो सकती है। सच पूछिए तो 'चाँद' ने समाज-जगत विशेषतया स्त्री-समुदाय में 'क्रान्ति' ही मचा दी है। प्रस्तुत अङ्क अनेक सुभाष्य और सुन्दर लेख-कविताओं से सजाया गया है। श्रीमती सुभद्राकुमारी की 'मेरी प्याली' में एक नूतन मस्ती है। उन्हीं के शब्दों में उसमें 'कितना है प्राण छलकता, कितना मधु-मिश्रित मन है।' श्रीयुत 'यादवेन्द्र' का 'कहानी-कला' शीर्षक निबन्ध संग्रह की वस्तु है! इसी प्रकार १६० पृष्ठ के पोथे में अनेक छोटे-बड़े लेख, कहानियाँ, कविताएँ, प्रकाशित की गई हैं, जो फ़ुरसत के समय को मज़े से काट सकती हैं। हम सहयोगी की उन्नति-कामना करते हैं। वार्षिक मूल्य ६॥) है।

आप क़ानून तोड़ेंगे तो मुझे मजबूरन काररवाई हस्ब ज़ाब्ता फ़ौजदारी करनी पड़ेगी × × × !"

इतनी देर में मास्टर साहब अपनी शेरवानी उतार चुके थे, और कुरते की आस्तीन ऊपर चढ़ा ली थी। उनके हाथ बलिष्ठ देख पड़ते थे और कन्धा भी चौड़ा था।

"मैं ईश्वर की प्रार्थना कर लूँ?"—उन्होंने अपने शत्रु से पूछा।

"जैसा आपका जी चाहे, मेरी राय लो तो ज़रूर कर लो!"

मास्टर साहब ने आँखें बन्द कर लीं, और अपने दोनों हाथ जोड़ के मत्थे से लगा कर ज़ोर-ज़ोर कहने लगे—"हे ईश्वर! तू जानता है कि जब मैंने ज़ामिन की हत्या की थी और फिर उसके भाई अहमद को मारा था तो केवल अपने ही शरीर की रक्षा के लिए। परमात्मन्! तू यह भी जानता है कि जब मैंने छुन्ना पहलवान की आँखें निकाल ली थीं, तब भी उसी के छेड़ने पर; और दमड़ी गुण्डे का सिर मेरी लट्ठ ने तोड़ा था। अब, भगवन्! इस मूज़ी को मारने से पहले मैं तुझसे प्रार्थना करता हूँ कि उसके पापों के लिए तू उसे क्षमा प्रदान कर दे। शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!"

इसके बाद मास्टर साहब ने अपना पेन्सिल बनाने वाला चाकू जेब से निकाला और एक पैर उठा कर उसे अपने जूते के तल्ले पर तेज़ करने लगे और एक दर्द-भरी आवाज़ में गाने लगे—

"क़ब्र का रास्ता देख कर × × ×"

ठाकुर ऐसे मौक़े पर चूक नहीं सकता था। पिछले तीस साल से आराम की ज़िन्दगी बसर करके और किसी से बग़ैर लड़े हुए, उसे लड़ने में कुछ मज़ा न आता था। वह एकदम से ठट्ठा मार कर हँसने लगा। मास्टर साहब आश्चर्य से उसकी ओर देखने लगे और चाकू तेज़ करना भूल गए। ठाकुर इसलिए हँस रहा था कि उसे उस समय अपनी आबरू को बचाना था। अगर कहीं लड़ कर हारा तो सारा मामला गुड़-गोबर हो जायगा। और उसे यह मौक़ा भी ख़ूबसूरती से सँभालना था। उसने फिर एक क़हक़हा लगाया और बढ़ कर हाथ मिलाने को हाथ बढ़ाया और कहा—"ठीक है, सब ठीक है! मास्टर साहब, मैं आपकी तेज़ी का इम्तहान लेता था। जब मैंने सुना कि आप मेरे गाँव में मास्टर होकर आए हैं, तब मैंने सोचा कि इस आदमी की बहादुरी देखनी चाहिए। अगर कायर है तो हमारे गाँव के लायक़ नहीं है!"

मास्टर साहब अब तक में सावधान हो गए थे। उसकी बात सुन कर उन्हें गुस्सा आ गया। बोले—मैं आपसे कहता हूँ कि जो अभी बात हुई थी, उसका फ़ैसला तो कर लीजिए!

"कोई बात नहीं है"—लापरवाही से ठाकुर ने कहा—"मास्टर साहब, मान लिया कि आपने कहा ही था, तो मुझे उसकी अब कुछ और शिकायत नहीं है। आप नए आदमी हैं। आपको बीच में दूसरे का बोलना अगर बुरा लगा भी तो कौन ताज्जुब! भला कभी आप ऐसे मौक़े पर बात करके देखें, बहुत मज़ा आता है। ख़ैर, जाइए अपना काम कीजिए × × ×!"

मास्टर साहब ने वहाँ से आकर अपना अचकन फ़ौरन पहिन लिया, और एक कुर्सी ज़मींदार के पास घसीटते हुए कहने लगे, जैसे बीच से बात कटी ही न हो—"मैं अर्ज़ कर रहा था कि स्कूल में लड़कों का खद्दर पहन कर × × ×"

卐 卐 卐

"अब तो तुम्हारी तबियत ठीक है न?"

"जी हाँ, डॉक्टर साहब की कृपा से अब अच्छा हूँ।"

"डॉक्टर साहब की कृपा से या परमात्मा की कृपा से?"

"फ़ीस तो मैंने डॉक्टर साहब को दी है।"

बीमा कम्पनी का एजेन्ट—महाशय, अब आपकी शादी हो गई है, अब आपको तुरन्त अपनी ज़िन्दगी का बीमा करा लेना चाहिए।

नवजवान—अभी तो मेरी स्त्री मुझसे काफ़ी प्रेम करती है, अभी तक उसकी ज़ात से मुझे ज़िन्दगी का अन्देशा नहीं मालूम होता।

सास का अत्याचार

श्रीमान सम्पादक जी, नमस्ते !

मेरा घर भागलपुर ज़िले के एक छोटे से गाँव में है। मैं कायस्थ-कुल की एक युवती हूँ। मेरी अवस्था लगभग ३० वर्ष की है। मेरी शादी को १७ साल हो चुके हैं। मैं लोअर प्राइमरी तक पढ़ी हूँ। जिनके साथ मेरी शादी हुई है, वे बहुत पढ़े-लिखे तो नहीं हैं, परन्तु ज़मींदारी सिरिश्ते का काम अच्छा जानते हैं और दो पैसा उपार्जन भी करते हैं। बड़े उदार और सहृदय हैं। मुझे कोई दुःख नहीं है। परन्तु हमारी पारिवारिक अवस्था बड़ी ही शोचनीय है। मेरे पति तीन भाई हैं। दो उनसे बड़े हैं। भाइयों में भी ख़ूब प्रेम है। परन्तु मेरी पूजनीया सास जी को भाइयों का प्रेम अच्छा नहीं लगता। उनकी हार्दिक इच्छा यही रहती है कि भाइयों में वैमनस्य हो जाए और ये अलग-अलग हो जाएँ, जिसमें एक तरफ़ होकर मालकिन बनने का मौक़ा मिले। इसीलिए वे मुझे और मेरे बच्चों को फूटी आँख भी देखना नहीं चाहतीं। अकारण ही मुझे कोसा करती हैं। मेरे तमाम कामों में उन्हें ऐब ही ऐब दिखाई देता है। उन्हीं के कारण मेरी जेठानियाँ भी मुझसे रुष्ट रहती हैं। घर का यह कलह देख कर मेरे पतिदेव बहुत चिन्तित रहते हैं। उनका सोच देख कर मेरी भी तबीयत व्याकुल हो जाती है। मेरी समझ में नहीं आता कि मैं क्या करूँ? पतिदेव का उदास और चिन्ताग्रस्त मुँह देख कर बड़ा दुख होता है। इसलिए आपकी शरण में आई हूँ। आप ही कृपा करके कोई उपाय बताइए।

आपकी,

—एक दुखिनी बहिन

[इस बहिन ने जो लम्बा पत्र लिखा है, उसका संक्षिप्त आशय हमने ऊपर दे दिया है। आए-दिन मूर्खा सासों द्वारा बहुओं पर जो अत्याचार होते रहते हैं, वे किसी से छिपे नहीं हैं। जब तक लड़के का ब्याह नहीं होता, तब तक ये सासें बहू का मुँह देखने के लिए और पौत्र खिलाने के लिए मदार शाह की मज़ार पर मानते मानती फिरती हैं और जब बहू घर में आ जाती है, तो हाथ धोकर उसके पीछे पड़ जाती हैं। वास्तव में इन बुढ़ियों के इस रोग की कोई दवा नहीं है। तथापि ऐसी अवस्था में चतुरा बहुओं का तो यही कर्तव्य होना चाहिए कि वे यथासम्भव सहनशीलता से काम लें, सास की उग्रता को अपनी नम्रता और प्रेम से जीतने की चेष्टा करें। गृह-कलह की शान्ति के लिए अलग हो जाना भी कुछ बुरा नहीं। भ्रातृत्व की रक्षा भाई से अलग रह कर भी हो सकती है और दिन-रात कलह और अशान्ति के चहले में फँसे रहने की अपेक्षा यह कहीं अच्छा भी है। इसलिए उक्त बहिन को हमारी यही सलाह है कि पहले तो वे अपने हृदय के प्रेम और श्रद्धा से अपनी सास को जीतने की चेष्टा करें और अगर इसमें सफल न हो सकें, तो प्रेमपूर्वक अपने पति और पुत्रों को लेकर अलग हो जाएँ। इसके सिवा और उपाय ही क्या हो सकता है? —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

बाल-विवाह का परिणाम

श्रीमान सम्पादक जी,

नमस्ते !

कृपया मेरे इस पत्र को आगामी अङ्क में सोत्तर प्रकाशित कर दीजिएगा।

मेरा विवाह अतीव शैशवावस्था में ही कर दिया गया था। उस समय मैंने विद्याध्ययन भी नहीं आरम्भ किया था। विवाह के दो ही महीने पश्चात् मेरे पिता जी स्वर्ग सिधारे। जब मैंने अङ्गरेज़ी स्कूल में पदार्पण किया तो मेरी अर्द्धाङ्गिनी मेरे घर आ गई। पर वह उसी समय से आधी पगली थी और अद्यावधि उसकी अवस्था परिवर्तित नहीं हो सकी। उत्तम तथा शिक्षित कुल की न होने के कारण अपनी मानसिक शक्ति को विकसित नहीं कर सकी। यद्यपि मैं कॉलेज के प्रथम वर्ष में अध्ययन करता हूँ और छात्रवृत्ति भी पाता हूँ, तथापि वह इसको सर्वथा नहीं समझती। उसके आचरण तथा रूप में कोई दोष नहीं, पर मेरी समझ में उसके मस्तिष्क में किञ्चित् पशुत्व भरा है। वह आज्ञाकारिणी अवश्य है, पर अपनी बुद्धि से लाचार है। मैंने उसे बहुत शिक्षा दी, पर निष्फल हुआ। वह अपनी पाशविक बुद्धि से प्रेरित हो ऐसे-ऐसे कर्म कर बैठती है, जिससे मेरी पूज्या माता ही नहीं, वरन् मैं भी अधीर तथा अवाक् हो जाता हूँ। ससुराल में कैसे चलना चाहिए, ससुर तथा जेठ इत्यादि ससुर-परिवार के सामने कैसे बोलना चाहिए, मेरे हज़ार सिखाने पर भी उसे न आया। यदि पड़ोस में किसी के घर जाती तो वहीं सट जाती है। कहाँ तक कहूँ, उसकी पाशविक बुद्धि अत्यन्त शोचनीय है। जब मैं घर जाता हूँ तो लोग कहते हैं कि इस पत्नी से तुम्हारा काम न चलेगा। तुम तो उन्नति की ओर अग्रसर हो रहे हो, पर यह सदा नीचे ही जाती है। इसलिए तुम दूसरा विवाह कर लो। विवाह के लिए पहले भी यथेष्ट यत्न होता रहा, पर मैंने अद्यावधि अस्वीकार किया। वास्तव में मुझे उसकी दशा देख कर तरस खाना पड़ता है। मैंने उसे छोड़ने की कभी इच्छा न की और न आज ही मेरी अभिलाषा दूसरा विवाह करने की है। पर अब मैं भी अनुभव करता हूँ कि बिना दूसरी पत्नी के मुझे बहुत कठिनाइयाँ झेलनी पड़ेंगी। मुझे विवाह करने की भी इच्छा नहीं होती, क्योंकि मेरा विचार है कि यदि दूसरी स्त्री आवेगी तो इसे दुःख मिलने की सम्भावना है। आज तक तो मेरे मन में यह नहीं घुसता कि मैं अपनी भावी पत्नी को वर्त्तमान पत्नी से अधिक या कम प्यार करूँगा अथवा उसे अधिक या कम सुविधा दूँगा। पर मैं डरता हूँ कि कहीं दोनों में कलह उत्पन्न हो गया तो सारा मज़ा किरकिरा हो जायगा। मेरे परिवार के सब लोग मुझे दूसरा विवाह करने के लिए बाध्य कर रहे हैं। विशेषकर मेरी माता, जिन्हें वृद्धा होने पर भी गृह-कार्य सम्पादित करने पड़ते हैं, उतावली हो रही हैं। अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि ऐसी दशा में मेरा क्या कर्तव्य होना चाहिए। इसे दर्शाने की दया करें। कृपया मेरा नाम तथा पता गुप्त रक्खेंगे।

भवदीय,

—एक किङ्कर्तव्य-विमूढ़

[प्रश्न वास्तव में बड़ा विकट है। परन्तु कहावत है कि 'गले पड़ा ढोल बजाए सिद्ध।' एक स्त्री के रहते दूसरा विवाह कर लेना तो उक्त युवक के लिए अपने जीवन को ज़बरदस्ती 'टग ऑफ़ वार' (रस्साकशी) में डाल देना होगा, इसलिए हमारी राय है कि युवक महोदय कुछ दिनों तक अपनी धर्मपत्नी जी को अपने साथ रक्खें, उन्हें कुछ पढ़ाने-लिखाने की चेष्टा करें और एक बार किसी अच्छे डॉक्टर से उनके मस्तिष्क की भी जाँच कराएँ। हमें विश्वास है, कि इन उपायों से उन्हें कुछ सफलता प्राप्त होगी।

—स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक युवक की सदाकांक्षा

श्रीमान सम्पादक जी,

मेरे एक मित्र, जो जाति के कायस्थ और ग्रेज्युएट हैं, उम्र उनकी २४ साल की है और १००) मासिक वेतन पर सरकारी नौकरी करते हैं। समाज-सुधार के विचार से वे किसी ऐसी विधवा से विवाह करना चाहते हैं, जो १८-१९ वर्ष की और कम से कम हिन्दी पढ़ना-लिखना जानती हो। जाति उसकी कायस्थ हो, चाहे श्रेणी कोई भी हो। मेरे मित्र का उद्देश्य केवल कायस्थ युवकों के सामने एक आदर्श रखना है। आशा

है, 'चाँद' के पाठकों में कोई सज्जन इस सम्बन्ध में अग्रसर होकर किसी विधवा के उपकार के भागी बनेंगे।

भवदीय,
—(डॉक्टर) शिवदत्तप्रसाद शर्मा, एच० एम० बी०
पो० ऑ० अजगैन (उन्नाव)

❀ ❀ ❀

एक और सज्जन लिखते हैं :—

पूज्यवर सम्पादक जी,

सादर नमस्ते ! मैं एक ओसवाल जातीय युवक हूँ। मेरी उम्र लगभग २० साल की है। मेरी सालाना आमदनी ६००) की है। घर में मेरी बूढ़ी माता हैं और मैं परदेश में रहता हूँ। गार्हस्थ्य जीवन बिना संसार सूना मालूम होता है। मैं विवाह करना चाहता हूँ। परन्तु हमारे समाज में लड़कियाँ मुफ़्त में नहीं मिलतीं ; उनके दाम दस हज़ार और आठ हज़ार होते हैं। मेरे पास इतना धन नहीं है और न मैं अपने लिए मूल्य देकर पत्नी ख़रीदना ही चाहता हूँ। इसलिए मैं किसी ओसवाल जातीय विधवा से विवाह करना चाहता हूँ। यदि कोई भाई इस कार्य में मेरी सहायता करेंगे, तो मैं उनका बहुत आभार मानूँगा।

आपका
—भैरूँदान कलवानी
विराटनगर, पो० ऑ० जोगवनी (पुर्निया)

[हम उपर्युक्त दोनों युवकों के सत्साहस की प्रशंसा करते हैं और आशा करते हैं कि 'चाँद' के पाठकों में कोई सज्जन इन्हें सहायता प्रदान करेंगे। कन्या-विक्रय का व्यापार ओसवाल-समाज का कलङ्क है और इसके प्रतिकार का एकमात्र मार्ग भी वही है, जिसका अनुसरण करने को श्री० भैरूँदान जी कलवानी तैयार हैं। समाज की रूढ़ियों पर पदाघात करने वाले इन सत्साहसी युवकों से हमारा यह भी अनुरोध है कि यदि उन्हें अपने समाज में विधवाएँ न मिलें, तो किसी भी समाज की विधवा से विवाह कर लेने का साहस करें। इससे रूढ़ि-व्याधि-ग्रस्त जीवों की आँखें जल्दी खुलेंगी। साथ ही समाज के युवकों का यह भी कर्त्तव्य है कि वे आजन्म कँवारे भले ही रह जाएँ, परन्तु विवाह के सम्बन्ध में लेन-देन को कदापि प्रश्रय न दें। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

पति की आवारगी

यवतमाल, सी० पी० से एक बहिन ने लिखा है :—

श्रीमान सम्पादक जी, सादर नमस्ते। मैं एक ब्राह्मण वंश की कन्या हूँ। मेरी उम्र लगभग ३० साल की है। मेरा ब्याह हुए कई वर्ष बीत गए। मेरे पति की उम्र लगभग ३८ साल है। वे मुझे पहले ख़ूब ही चाहते थे और मुझे सब प्रकार से सुखी रखते थे। उस समय वे थोड़े वेतन पर एक नौकरी करते थे। इसके बाद उन्होंने नौकरी छोड़ दी और पण्डिताई द्वारा रुपए कमाना शुरू किया। लेकिन दो साल से वे ऐसी नीच सङ्गत में पड़ गए हैं कि सारा काम-धाम छोड़ कर अपने हीनचरित्र मित्रों के साथ इधर-उधर भटकना शुरू कर दिया है। अब वे भाँग, गाँजा, चरस और तम्बाकू आदि मादक वस्तुओं का भी सेवन करने लगे हैं। यदि मैं इसके लिए उन्हें मना करती हूँ, तो मुझे लात, घूँसे और गालियाँ खानी पड़ती हैं। चार बच्चों के बाप होकर भी उन्हें घर-बार की ज़रा भी फ़िक्र नहीं है। जवानी ढल चुकी है, बुढ़ापा सिर पर सवार है। तो भी वे पर-स्त्री-गमन आदि दुर्गुणों में लिप्त हैं। अब आप कृपा करके बताइए कि मैं कौन सा उपाय करूँ ?

—एक अभागिनी।

[हमारे ख़याल में इस सारी ख़राबी की जड़ वही पण्डिताई है। इस हरामख़ोरी के पैसों ने ही उक्त ब्राह्मण को पतित बनाया है। इस बहिन को हमारी सलाह है कि वे ऐसे पतित पति के सुधार की आशा छोड़ें और अपने नगर के किसी पढ़े-लिखे सज्जन की सहायता से अपने बच्चों को किसी अनाथालय में भेज दें और स्वयं कहीं मेहनत-मजूरी करके जीवन यापन करें। हमें दुःख है कि इस बहिन ने अपना पूरा नाम और पता नहीं लिखा है। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

'एक अछूत विधवा की प्रार्थना'

गत दिसम्बर १९३२ के 'चाँद' में एक 'अछूत' विधवा की प्रार्थना छपी थी। उन विधवा बहिन से मेरी प्रार्थना है कि वे कन्या-महाविद्यालय जालन्धर सिटी के "विधवा-भवन" में जा सकती हैं। मैं स्वयं वहाँ रह कर आई हूँ। पूज्य पिता लाला देवराज जी वहाँ के प्रिन्सिपल हैं। वह एक महात्मा सज्जन हैं। विधवाओं और अनाथों पर उनकी बड़ी ममता है। जब मैं पहली बार वहाँ गई तो मेरा मन बड़ा दुखी था। परन्तु जब पिता देवराज जी का व्यवहार देखा, तब मैंने अपने को धन्य माना। विद्यालय से पृथक् होने पर भी आज तक मुझे उस शुद्ध और प्रेम-भरी वायु की याद आए बिना नहीं रहती।

विधवा बहिन यदि कुछ और विद्यालय के विषय में पूछना चाहती हों, तो वह मुझसे पत्र-व्यवहार करें।

—श्रीमती सी० डी० मिश्र, हेड मिस्ट्रेस
गर्ल्स स्कूल लाड़पुरा, कोटा (राजपूताना)

❀ ❀ ❀

'चाँद' में चिट्ठियाँ छपाने वाले भाइयों और बहिनों से नम्र-निवेदन

प्रायः बहुतेरे भाई-बहिन अपनी-अपनी राम-कहानी 'चाँद' में छपवाया करते हैं। दिसम्बर के 'चाँद' में जो चिट्ठियाँ छपीं हैं, उनको पढ़ कर मेरा हृदय जल उठा। मैं उन सज्जनों और श्रीमतियों का ध्यान ज़रा सी देर के लिए उन विधवा बहिनों की ओर खींचना चाहती हूँ, जो वैधव्य की ज्वाला में फूँकी जा रही हैं; जिन्हें सुन्दर तो क्या, रँगे वस्त्र पहिनने तक की भी समाज की ओर से आज्ञा नहीं है; जो अपना जीवन नाली के कीड़ों के समान सड़-सड़ और गल-गल कर परदे के पिंजड़े में काट रही हैं; जिनकी दशा ख़ूनी मुजरिमों जैसी है। कौन सा मनुष्य ऐसा होगा, जो सुखी रहना नहीं चाहता। अपने-अपने सुख के लिए सब जान पर खेल कर लड़ना चाहते हैं। परन्तु वे अपने से नीचे वालों की अवस्था देखें कि उन पर क्या बीत रही है? वे नीचे वाले कौन हैं? वही हिन्दू-समाज की कुलीन विधवाएँ, जिनका न घर में ठिकाना है और न बाहर। हमें महात्मा बुद्ध के जीवन-चरित को पढ़ कर सन्तोष करना चाहिए। संसार के सुख निर्मूल हैं। त्याग में जो शान्ति है, वह सांसारिक वस्तुओं में नहीं। हमारी जैसी विधवा बहिनों की दशा का विचार करके उन भाई-बहिनों को सन्तोष करना उचित है। जबकि भारतवर्ष में आज़ादी की ज्वाला फूट चुकी है, ऐसे समय में नवयुवक मानसिक और शारीरिक सुख भोगने की चेष्टा कर रहे हैं। मुझे उन दुखी भाई-बहिनों से सहानुभूति अवश्य है। परन्तु यह भी कहाँ की धाँधली है कि स्त्री रोगिणी है तो पति महाशय अपने सुख के लिए पुनर्विवाह रच मौज उड़ाएँ या स्त्री कर्कशा या फूहड़ है तो उसे जङ्गली जानवर समझ घर से लकड़ी मार कर हँकाल दें। संसार में सभी सुखी नहीं होते। जिसने अपने मन पर क़ाबू न पाया, वह मनुष्य नहीं है।

—श्रीमती सी० डी० मिश्र,
हे० मि०
गर्ल्स स्कूल लाड़पुरा, कोटा

❀ ❀ ❀

'पति की बेकारी'

श्रीमान सम्पादक जी, सादर नमस्ते!

आज मैंने दिसम्बर के 'चाँद' में आपका लेख देखा, जिसके पढ़ने से ज्ञात हुआ कि हमारे भारतवर्ष में इस समय भी, जबकि हम लोगों की इतनी हीन दशा है, हमारे पूर्वजों का ख़ून बाक़ी है। सब से प्रथम तो हम लोग आपको आपकी असीम कृपा के लिए हार्दिक धन्यवाद देते हैं कि आपने करुणा करके मेरे पत्र को 'चाँद' में स्थान दिया, जिसके कारण मैं आशा करती हूँ कि शीघ्र ही अपने इस कष्ट से छुट्टी पा जाऊँगी। इसके बाद मैं उन महापुरुष को अनेकानेक धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने मेरी सहायता सौ रुपए के नोट द्वारा की। मैं उन रुपयों को सादर ग्रहण करती हूँ, ताकि उनके उदार हृदय को कष्ट न हो। किन्तु जब मैं अपने देश की ओर निहारती हूँ, तो मुझे दीख पड़ता है कि मुझसे भी अधिक कितनी ही दुखिनी बहिनें हैं, जिनको सहायता की विशेष आवश्यकता है। इस कारण मैं उन रुपयों को आपकी सेवा में सविनय समर्पित करती हूँ कि आप जिस प्रकार चाहें, उसका उचित प्रबन्ध कर दें। क्योंकि आपको मुझ तुच्छ बुद्धिनी से कहीं अधिक मेरी बहिनों अथवा भाइयों के दुःख का अनुभव है और उनके बारे में आपको सूचना मिलती रहती है। इसके बाद मैं श्रीमान पण्डित शम्भूलाल जी नायक, ग्राम गौरिहार (बाँदा)

को धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने मेरे पति को जगह देने को लिखा है। मेरे स्वामी शीघ्र ही उनकी सेवा में जावेंगे। मैं अपने उन भाइयों को भी धन्यवाद देती हूँ, जिन्होंने कि मेरी सहायता के लिए पत्र भेजे हैं। अब आप से मेरी यह विनीत प्रार्थना है कि आप मेरे इस पत्र को 'चाँद' में छाप दीजिएगा, ताकि मेरा धन्यवाद उन दयालुओं के पास पहुँच जावे, जो इसके पात्र हैं।

आपकी सेविका,
—वही दुखिनी

[अपनी इस दुःख की दशा में भी इस बहिन ने उन १००) को अपने से भी अधिक दुखिनियों की सहायता के लिए अर्पण करके जो उदारता दिखाई है, उसके लिए हम उन्हें आन्तरिक धन्यवाद देते हैं। उन्होंने इन रुपयों के खर्च का भार हमें सौंपा है और हम उसे 'चाँद' के पाठकों को सौंपते हैं। कृपया पाठक बतावें कि ये १००) जो हमारे पास जमा हैं, किस प्रकार ख़र्च किए जाएँ। पाठकों की सम्मति आने पर हम स्वयं विचार करके उसीके अनुसार इन रुपयों का उपयोग करेंगे और उसकी सूचना आगामी 'चाँद' द्वारा देंगे। —स० 'चाँद']

❀ ❀ ❀

एक विपद-ग्रस्ता मुस्लिम महिला

जबलपुर (सी० पी०) के वकील श्री० आर० पी० पाण्डेय ने हमारे पास एक विपद-ग्रस्ता मुस्लिम महिला की करुणा-कहानी लिख भेजी है और लिखा है कि आप और आपके 'चाँद' के पाठक यदि इस महिला की कुछ सहायता कर सकें तो करें। यह महिला हिन्दी की पण्डिता हैं और हिन्दी-साहित्य से बहुत प्रेम रखती हैं। इनके पतिदेव परम स्वदेश-सेवक, साहित्यानुरागी और हिन्दी के लेखक हैं। अपने अध्यवसाय द्वारा इन्होंने 'विशारद' और 'साहित्यालङ्कार' की पदवी प्राप्त की है। वे स्वदेश-सेवा के अपराध में आजकल जेल में हैं। इस महिला ने उपर्युक्त वकील साहब के पास जो अपनी करुणा-कहानी लिख भेजी है, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं :—

"मेरे पति ने जब से नौकरी छोड़ी, तब से ही हम पर विपत्तियों के बादल छा गए। समाज-सेवा और हिन्दी-प्रेम ने हमको मुस्लिम-समाज से ख़ारिज कर दिया। मेरे और उनके पिता और कुटुम्बियों ने भी हमें अलग कर दिया। देश-सेवा के बदले हमारे रिश्तेदारों तक ने हमें गालियाँ दीं। × × × पतिदेव तो देश-सेवा का फल भोग रहे हैं और मैं बिना अन्न के भूखी मर रही हूँ। बड़े-बड़े महापुरुषों ने हमदर्दी के तार और चिट्ठियाँ भेजी हैं। अख़बारों ने भी सहानुभूति दिखाई है। परन्तु इन लम्बी-चौड़ी बड़ाइयों से मेरा पेट कैसे भर सकता है? हमदर्दी दिखाने वाले तो बहुत हैं, परन्तु वास्तविक मदद करने वाला कोई नहीं। आपने लिखा था कि 'चाँद' को लिख कर भेजो। लेकिन 'चाँद' वाले तो हिन्दू स्त्रियों की ही मदद करते हैं। क्या वे मेरी जैसी एक मुस्लिम स्त्री की मदद करेंगे? अगर आप मुनासिब समझें तो आप ही 'चाँद' वालों को लिख दें।"

[इन पंक्तियों को पढ़ कर पाठक स्वयं ही वस्तुस्थिति से परिचित हो गए होंगे और हमें आशा है, वे एक विपद-ग्रस्ता मुस्लिम बहिन की, यथासम्भव सहायता करने से न चूकेंगे। जिन्हें इस सम्बन्ध में कुछ पूछताछ करनी हो वे पं० आर० पी० पाण्डेय वकील, कचहरी के पास, जबलपुर (सी० पी०) या हमें पत्र लिख सकते हैं।

इसी सिलसिले में यह बता देना भी अनुचित न होगा कि 'चाँद' समस्त राष्ट्र और देश का सेवक है। प्रत्येक भाई-बहिन की—चाहे वे हिन्दू हों या मुसलमान अथवा पारसी या क्रस्तान—यथासाध्य सेवा करना ही इसके जीवन का उद्देश्य है।

—स० 'चाँद']

समर-यात्रा—लेखक श्रीयुत प्रेमचन्द, प्रकाशक सरस्वती प्रेस, बनारस सिटी, प्रथम संस्करण, पृष्ठ १८९, मूल्य १)

इस पुस्तक में बारह कहानियाँ संग्रहीत हैं। सभी कहानियाँ राजनीतिक हैं। प्रसन्नता की बात है कि प्रेमचन्द जी अब सामाजिक समस्याओं के चित्रण के साथ-साथ राजनैतिक क्षेत्र का दिग्दर्शन भी कराने लगे हैं। इन कहानियों में अहिंसात्मक सत्याग्रह का इतना सुन्दर और सजीव वर्णन है कि हमें पात्रों के साथ सहानुभूति होते देर नहीं लगती। कहानी-कला का यही तो सर्वोत्तम दृष्टिकोण होता है। शराब की दूकान, जुलूस, मैकू, जेल और होली का उपहार कहानियाँ विशेष अच्छी बन पड़ी हैं। इन कहानियों में प्रेमचन्द जी की व्यञ्जनात्मक शक्ति अच्छी निखर आई है। कई वाक्यों में तो अच्छे चित्र बन पड़े हैं :—

(१) उसका वह व्यङ्ग्य सर्प की भाँति उसके सामने बैठा हुआ मालूम होता था। (पृष्ठ ५)

(२) सहसा उसने लाठी फेंक दी और भीड़ को चीरती हुई यात्रियों के सामने आ खड़ी हुई, जैसे लाठी के साथ ही उसने बुढापे और दुःख के बोझ को भी फेंक दिया हो। (पृष्ठ ७)

(३) उसके कोमल अङ्गों में शायद हवा भी चुभती हो। (पृष्ठ २६)

एक स्थान पर समाज पर कितना अच्छा व्यङ्ग्य है :—

आप लोगों ने इस बात का आज नया परिचय दे दिया कि पुरुषों के अधीन स्त्रियाँ अपने देश की सेवा भी नहीं कर सकतीं। (पृष्ठ २८)

मनोभावना की अच्छी झलक इस प्रकार है :—

मर्द लज्जित करता है तो हमें क्रोध आता है, स्त्रियाँ लज्जित करती हैं तो ग्लानि उत्पन्न होती है।

हिन्दी-प्रेमियों को इस नए संग्रह का आदर करना चाहिए।

❀ ❀ ❀

संसार की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ—सम्पादक श्रीयुत चन्द्रगुप्त विद्यालङ्कार, प्रकाशक विश्वसाहित्य ग्रन्थमाला, मैकलेगन रोड, लाहौर; पृष्ठ-संख्या २९६; मूल्य २) सजिल्द २॥)

प्रस्तुत पुस्तक में संसार के प्रसिद्ध सोलह कहानी-लेखकों की कहानियों का संग्रह है। चार रूसी कहानी-लेखक हैं, शेष दो फ्रान्स से, दो इङ्गलैण्ड से, दो जर्मनी से, दो भारतवर्ष से तथा एक-एक अमेरिका, पोलैण्ड, बेलजियम तथा रोमानिया से लिए गए हैं। भारतवर्ष के कहानी-लेखक हैं श्रीरवीन्द्र ठाकुर और श्रीप्रेमचन्द। इस संग्रह में कुछ त्रुटियाँ अवश्य रह गई हैं। इवान तुर्गनेव की सर्वोत्तम कहानी 'पूसू' के बदले 'सपना' दी गई है। भारतवर्ष के कहानी-लेखकों में शरत् बाबू को छोड़ दिया गया है। 'क़ैफ़ियत' में यद्यपि शरत् बाबू का उल्लेख सम्पादक ने अवश्य किया है, पर मेरी राय में रवीन्द्र के बदले शरत् को स्थान दिया जा सकता था। 'आत्माराम' प्रेमचन्द की सर्वोत्तम कहानी नहीं है। इसके स्थान पर 'शतरञ्ज के खिलाड़ी' या 'स्तीफ़ा' कहानी दी जा सकती थी।

सम्पादक ने 'क़ैफ़ियत' में संसार के कहानी-साहित्य की अच्छी समीक्षा की है। अनुवाद की भाषा अच्छी है। हिन्दी में इस प्रकार के ग्रन्थों का प्रकाशन आवश्यक है, विशेषकर ऐसे समय में, जब कि हमारे यहाँ कहानी-

साहित्य का निर्माण हो रहा है। पुस्तक सुन्दर है। प्रत्येक कहानी-लेखक को इसे एक बार पढ़ लेना चाहिए। यदि इस पुस्तक में कहानी-लेखकों के चित्र भी होते, तो पुस्तक का महत्त्व और भी बढ़ जाता।

❀ ❀ ❀

केसर की क्यारी—सम्पादक मुन्शी सुखदेव-प्रसाद सिंनहा बिस्मिल, इलाहाबादी, भूमिका-लेखक मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव सम्पादक 'चाँद'; प्रकाशक—चाँद प्रेस, लिमिटेड, चन्द्रलोक, इलाहाबाद; पृष्ठ ३४+५९२; मूल्य ५)

हमें यह कहते हुए हर्ष और सन्तोष होता है कि अब हिन्दी में हमें ऐसे ग्रन्थ दृष्टिगोचर होने लगे हैं, जिनसे साहित्य के विविध अङ्गों की पूर्ति होती है। हिन्दी में हमें केवल ऐसे ग्रन्थों ही की आवश्यकता नहीं, जो हिन्दी और उसके अनेक प्रश्नों से सम्बन्ध रखते हैं; पर हम ऐसे ग्रन्थों की रचना भी चाहते हैं, जो अन्य साहित्यों के अङ्गों का निरूपण हमारे सामने कर सकें। यद्यपि उर्दू को हम हिन्दी के अन्तर्गत ही मानते हैं; क्योंकि उर्दू का वास्तविक रूप दिल्ली और मेरठ के समीप बोली जाने वाली खड़ी बोली हिन्दी ही है, पर उसमें फ़ारसी और अरबी के इतने अधिक शब्द और वचनों के रूप मिलाए जाने लगे हैं कि उर्दू हिन्दी के लिए अपरिचित सी होती चली जा रही है। इन दोनों भाषाओं में पारस्परिक स्नेह और समानता होना आवश्यक ही नहीं, उचित भी है। इसी भेद को दूर करने के लिए अथवा उर्दू की कविताओं को समझने के लिए मीर, ग़ालिब, ज़ौक, अकबर आदि उर्दू के महाकवियों की कृतियों का हिन्दी में अनुवाद हुआ था। हिन्दी वाले उर्दू कविता की रचना भी करने लगे; किन्तु यह प्रयास केवल एक ओर से रहा। दूसरी ओर से तो उपेक्षा का भाव ही नज़र आता है। हम आशा करते हैं कि उर्दू वाले भी अपनी भाषा को दूर हटाते हुए फ़ारसी और अरबी जैसी प्राचीन (Classical) भाषाओं से सम्बन्ध न जोड़ कर वर्तमान (Modern) भाषाओं से, जिनका भविष्य बहुत ही उज्ज्वल है, जान-पहचान करने का प्रयत्न करेंगे।

उर्दू भाषा की कविता को हिन्दी-भाषा-भाषियों के समीप लाने का सबसे अधिक श्रेय इस विशाल ग्रन्थ के सम्पादक बिस्मिल साहब को है। उन्होंने अनेक स्थलों पर मशायरे में पढ़ी जाने वाली उत्तमोत्तम उर्दू कविताओं का संग्रह कर एक स्थान पर सजा दिया है। यह हिन्दी में एक चिरस्मरणीय कृति रहेगी। इस प्रकार का प्रकाशन अभी तक हिन्दी प्रकाशकों के लिए अज्ञात था। मुझे आशा ही नहीं, वरन् विश्वास है कि इस कृति को देख कर इस प्रकार का साहित्य अब हिन्दी में तैयार होने लग जायगा। ऐसी दशा में यह पुस्तक इस प्रकार के साहित्य की पथ-प्रदर्शिका रहेगी।

इस पुस्तक की एक और विशेषता यह है कि प्रारम्भ में भूमिका-लेखक मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव ने उर्दू कविता में आने वाले साङ्केतिक शब्दों का विवरण भी दे दिया है। इससे एक विशेष लाभ यह हुआ है कि उर्दू कविता के वातावरण में न रहने वाले व्यक्ति को इस संग्रह के समझने में कठिनता न होगी। क़ैस, ख़िज़्र, ज़ाहिद, यूसुफ़, नासेह, बरहमन, बुत, मन्सूर आदि शब्दों की विवेचना सम्यक् रूप से की गई है। पुस्तक में प्रत्येक पृष्ठ पर फ़ुटनोट दे दिए गए हैं, जिनमें कठिन शब्दों का साधारण और सरल अर्थ दे दिया है। इससे पुस्तक की उपादेयता और भी बढ़ गई है। पुस्तक में कई शेर तो लाजवाब हैं :—

यह इज़तिराबे शौक़ तो बुलबुल का देखिए,
वह चाहती है गोद में ले लूँ बहार को।

—नूह (पृष्ठ १)

आए तुम और खिल गए ज़ख़्मे दिलोजिगर,
देखोगे इस बहार को या उस बहार को।

—रज़ी (पृष्ठ २)

खुल गए नज़अ में असरारे तिलस्मे हस्ती,
ज़ीस्त कहते हैं जिसे, मौत की अँगड़ाई है।

—नूह (पृष्ठ १८)

दिल से थम-थम के, ज़रा खींचने वाले खींचे,
एक-एक तीर में लिपटे हुए अरमाँ होंगे।

—बिस्मिल (पृष्ठ ७०)

हो गए ख़ुश कोई मजमा जब नज़र आया हमें,
रो लिए जी खोल कर जिस वक़्त तनहाई हुई।

—नूह (पृष्ठ ३६८)

शाम से सुबह तक शबे फ़ुरक़त,
साथ मेरे चराग़ जलता है।

दिल में है याद रुए जानाँ की,
आइने में चराग़ जलता है ॥
—बिस्मिल (पृष्ठ २५६)

यहाँ आइने में चराग़ जलने में आध्यात्मिक अभि-व्यक्ति कितनी अच्छी बन पड़ी है।

इस प्रकार इस सारी पुस्तक में बिस्मिल साहब ने मानों नए-नए चराग़ जला दिए हैं। पुस्तक के बीच-बीच में सुप्रसिद्ध शायरों के चित्र दिए हैं और अन्त में उनकी विस्तृत जीवनी। मैं समझता हूँ कि यह प्रकाशन सर्वाङ्ग सम्पन्न है। प्रत्येक साहित्य-प्रेमी के लिए यह एक आवश्यक पुस्तक है; जिससे मनोरञ्जन के साथ ही साथ ज्ञान-वृद्धि भी होगी। मैं तो इस पुस्तक को रोज़ पढ़ लेता हूँ। हृदय में एक प्रकार का नया आवेश हो उठता है। ऐसे सुन्दर प्रकाशन के लिए चाँद प्रेस के अध्यक्ष श्रीसहगल जी धन्यवाद के पात्र हैं।

—रामकुमार वर्मा, एम० ए०

❀ ❀ ❀

तेरा हार—लेखक श्री० 'बच्चन', सम्पादक, मुन्शी कन्हैयालाल जी, एम० ए०, एल्-एल्० बी०; प्रकाशक लाला रामनारायण लाल बुकसेलर, इलाहाबाद। आकार छोटा; पृष्ठ-संख्या १४५; मूल्य १)

यह 'तेरा हार' श्री० 'बच्चन' जी की कविताओं का संग्रह है। कविताएँ आजकल की प्रचलित नवीन शैली की हैं, उनके भाव, छन्द और भाषा भी वैसी ही है। कवि जी ने इस क्षेत्र में अभी पैर रक्खा है, इसलिए उन्होंने स्वयं ही स्वीकार किया है कि "इसकी कलियाँ मुझे अभी निर्जीव मालूम होती हैं। पर मुझे विश्वास है कि तेरे (कविता के) सजीव स्पर्श से इनमें जीवन आएगा।" एवमस्तु। कई कविताएँ भावपूर्ण और अच्छी हैं। कविता-प्रेमियों को इसे एक बार अवश्य देखना चाहिए।

❀ ❀ ❀

प्रसाद जी के दो नाटक (समीक्षा)—लेखक श्री० कृष्णानन्द जी गुप्त, सम्पादक श्री० दुलारेलाल भार्गव, सुधा-सम्पादक, प्रकाशक भी भार्गव जी ही हैं और आप ही के गङ्गा-पुस्तक-माला कार्यालय, लखनऊ से यह १) में मिलती भी है। काग़ज़ साधारण और छपाई साफ़ है, आकार मझोला और पृष्ठ-संख्या १५६।

इसमें श्री० जयशङ्कर 'प्रसाद' जी के दो नाटकों अर्थात् 'चन्द्रगुप्त मौर्य' और 'स्कन्दगुप्त' की विशद और विस्तृत व्याख्याएँ हैं। पहले यह व्याख्याएँ धारावाहिक रूप से 'सुधा' की शोभा बढ़ा चुकी हैं। उन्हीं को प्रकाशक महोदय ने 'सम्पादित' करके पुस्तक का रूप प्रदान किया है। 'जिन खोजा तिन पाइयाँ गहरे पानी पैठ' के अनुसार गुप्त जी ने 'प्रसाद' जी के दोनों नाटकों के दोष दिखाने में अच्छी सफलता प्राप्त की है और गुणों से ऐसे बचे हैं, जैसे गुलाब का फूल संग्रह करने वाले काँटों से बचते हैं। फलतः इसका 'समीक्षा' नाम तो सार्थक ही है! इतने पर भी आपने सौजन्यता के नाते लिख दिया है कि—"चन्द्रगुप्त की आलोचना लिख कर मैंने 'सुधा' के पाठकों का बहुत वक़्त लिया। परन्तु विश्वास रखिए, मेरा भी पर्याप्त समय नष्ट हुआ है।" इस तरह जमा-ख़र्च दोनों बराबर है। अब सुधा का कोई पाठक आप से अपने समय नष्ट होने की शिकायत नहीं कर सकता।

❀ ❀ ❀

विप्लव—लेखक, श्री० राधामोहन गोकुलजी; प्रकाशक, श्री० नारायणप्रसाद जी अरोड़ा, पटकापुर, कानपुर। आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या २८८; मूल्य १।)

'सत्ये नास्ति भयं क्वचित्' के पक्के अनुयायी वयो-वृद्ध श्री० राधामोहन गोकुलजी अपनी स्वतन्त्र प्रकृति और निर्भीक विचारों के लिए विख्यात हैं। आप केवल वर्त्तमान काल के धार्मिक ढकोसलों ही नहीं, वरन् मज़हब और ईश्वर के भी विरोधी हैं। प्रस्तुत पुस्तक में आपके समय-समय पर प्रकाशित तेरह निबन्धों का सङ्कलन किया गया है, जो धार्मिक, सामाजिक तथा स्फुट—इन तीन भागों में विभक्त हैं। इन निबन्धों में जो विचार प्रगट किए गए हैं, वे पाठकों के हृदयों में हल-चल मचा देने वाले हैं और उनमें यथेष्ट निर्भीकता, स्वतन्त्रता और निर्द्वन्दता है। विद्वान लेखक ने इन निबन्धों द्वारा एक नवीन विचार पाठकों के सामने रक्खा है तथा धर्म, ईश्वर और समाज के सम्बन्ध में स्वतन्त्रता

पूर्वक विचार करने की शिक्षा दी है। पुस्तक की भाषा प्राञ्जल तथा बामुहावरा है। हमारी राय है कि प्रत्येक विचारशील पाठक को एक बार इन निबन्धों को अवश्य पढ़ना चाहिए।

❀ ❀ ❀

डी वेलरा—लेखक और प्रकाशक श्री० नारायणप्रसाद अरोड़ा, बी० ए०, पटकापुर, कानपुर; आकार मझोला, पृष्ठ-संख्या १८३; मूल्य १)

आयलैंण्ड के भाग्य-विधाता एमन-डी-वेलरा का नाम, शायद ही कोई ऐसा पढ़ा-लिखा आदमी होगा, जो न जानता हो। इस महापुरुष ने अपनी मातृभूमि की जो स्तुत्य सेवा की है और कर रहा है, उसे जानने की उत्सुकता का होना भी प्रत्येक पढ़े-लिखे मनुष्य के लिए स्वाभाविक है। फलतः श्री० अरोड़ा जी ने हिन्दी पाठकों के लिए डी वेलरा महोदय का यह जीवन-चरित्र लिख कर बड़ा काम किया है। यह पुस्तक है तो छोटी ही, परन्तु इसमें चरित्र-नायक के जीवन की सभी मुख्य घटनाओं का सन्निवेश बड़ी निपुणता से किया गया है। इसके पढ़ने से पाठकों को डी वेलरा की जीवन-घटनाएँ तो मालूम ही होंगी, साथ ही आयलैंण्ड के आधुनिक इतिहास का भी एक ख़ाका उनके मानस-पट पर अङ्कित हो जायगा। पुस्तक की भाषा को रोचक और सरल बनाने की ओर भी लेखक ने ख़ूब ध्यान दिया है।

—'अन्तर्वेदी'

❀ ❀ ❀

नीचे लिखी पुस्तकें भी मिल गई हैं। प्रेषक महोदयों को धन्यवाद।

निराशा—(एक सामाजिक मौलिक उपन्यास)—लेखक, श्री० सीताराम जैन; प्रकाशक रावी आर्ट प्रिण्टिङ्ग वर्क्स, मोहनलाल रोड, लाहौर। मूल्य १)

❀

जगमगाते हीरे—अर्थात् कविता में स्वामी दयानन्द जी का जीवन-चरित्र—लेखक योगेन्द्रपाल; प्रकाशक महावीर औषधालय, रायकोट (लुधियाना)। दाम ॥)

❀

भारत-कल्याण—(खेलने योग्य सामाजिक नाटक)—लेखक श्री० विज्ञान-विशारद; प्रकाशक, चन्द्रिकाप्रसाद, क़ैसरबाग़, लखनऊ। दाम ॥)

❀

वीर-विभूतिः—(सप्त पञ्चाशिका)—लेखक, न्यायविशारद मुनिराज श्री० न्याय विजय; प्रकाशक जैन-युवक-सङ्घ, घड़ियाली पोल, बड़ौदा स्टेट; मूल्य लिखा नहीं। भाषा संस्कृत और गुजराती। जैन-धर्म सम्बन्धी पुस्तक है।

❀

तपस्विनी सुशीला—अर्थात् शक्की संसार। प्रकाशक पं० द्विजेन्द्र शर्मा, जम्मू (काश्मीर)। मूल्य निर्पक्ष (?) अध्ययन।

सुशीला एक भले घर की लड़की थी। पढ़ी-लिखी थी। विचार उच्च और पवित्र थे। उसने आजन्म ब्रह्मचारिणी रहने का विचार किया था। साथ ही उसे एक नवयुवक से पवित्र स्नेह भी हो गया। दोनों एक-दूसरे को भाई-बहिन की तरह देखते थे। परन्तु 'शक्की संसार' को उनकी पवित्रता पर सन्देह हुआ और दोनों ने एक साथ ही नदी में कूद कर जान दे दी। यही कथा इस छोटी सी पुस्तक में लिखी गई है।

❀

पुजारी-समाज में भयङ्कर व्यभिचार—लेखक, 'बेढब' और 'पागल'; प्रकाशक धर्मचन्द्र ऐण्ड ब्रादर्स, आगरा। दाम ।≈)

❀

मोसर व नुकता की भयानक प्रथा—प्रकाशक, मूलचन्द शर्मा, सम्पादक 'जाङ्गिड़ ब्राह्मण' बाज़ार लालकुआ, देहली। दाम ≈)

[स्वरकार—श्रीयुत नीलू बाबू]

विहाग—तीन ताल

[शब्दकार—'कर्ण']

स्थायी—दयानिधि सब दुख दूर करो।
हमको सुख भोगन को मारग कितहुँ न सूझि परो ॥
अन्तरा—जोर बटोर पाप की पूँजी करम कपाल भरो।
'कर्ण' समान भीरु भक्तन के हे हरी शोक हरो ॥

स्थायी

०				१				×				३			
												त			
नि़	स	ग	म	प	प	निध	नि	सं	—	नि	ध	पम	प	गम	ग
द	या	नि	धि	स	ब	दुउ	ख	दू	—	र	क	रोओ	ओ	ओओ	ओ
						त									
ग	ग	ग	—	प	—	म	प	ग	ग	म	—	ग	—	नि़	स
ह	म	को	—	सु	—	ख	भो	ग	न	को	—	मा	—	र	ग
												त			
ग	ग	म	प	नि	—	ध	नि	सं	—	नि	ध	पम	प	गम	ग
कि	त	हुँ	न	सू	—	झि	प	रो	—	ओ	ओ	ओओ	ओ	ओओ	ओ

अन्तरा

प	—	नि	नि	सं	—	सं	सं	—	रें	सं	नि	प	सं	नि	—
जो	—	र	ब	टो	—	र	पा	—	प	की	ई	पू	ऊ	जी	—
सं	गं	रें	मं	गं	रें	सं	नि	प	नि	प	सं	नि	—	—	—
क	र	म	क	पा	आ	ल	भ	रो	ओ	ओ	ओ	ओ	—	—	—
										त					
प	सं	सं	सं	नि	—	नि	प	—	प	म	प	ग	म	ग	—
क	अर	ण	स	मा	—	न	भी	—	रु	भ	अक	त	न	को	—
												त			
नि़	स	ग	म	प	—	नि	ध	सं	—	नि	ध	पम	प	गम	ग
हे	ए	ह	री	शो	—	क	ह	रो	—	ओ	ओ	ओओ	ओ	ओओ	ओ

[हिज़ होलीनेस श्री० वृकोदरानन्द जी विरूपाक्ष]

अगर आपको अपनी बीबी का शौहर होने का फ़ख़ हासिल है, तो ग़ालिबन आपको कभी नौशा बनने का शुभ अवसर भी प्राप्त हुआ होगा। वल्लाह, वे भी क्या दिन रहे होंगे !

❀

नवेलियाँ देख कर मुस्कराती होंगी, भौजाइयाँ छेड़-खानियाँ करती होंगी और वृद्धाएँ आपके मूँड़ पर आशीर्वचनों की झड़ी लगाती होंगी। जिस वक़्त आप घोड़े पर या 'नालकी' में ससुराल की गलियों से गुज़रे होंगे, उस वक़् फूटी आँखों ने भी आपको देखने की चेष्टा की होगी और घर-घर आपकी चर्चा हुई होगी।

❀

ठीक ऐसी ही दशा आजकल कालीकट के ज़मोरिन महोदय की है। आपकी दूल्होपम गम्भीरता और गली-गली आपकी चर्चा देख कर हिज़ होलीनेस के पोपले मुँह में भी पानी भर आता है। हिमालय से लेकर कन्याकुमारी तक और आसाम से लेकर काश्मीर तक आपके शुभ नाम से गूँज उठा है। कोई कमाल की उन्नति करता है, तो प्रातःस्मरणीय बन जाता है, परन्तु आप तो वल्लाह, अहर्निशि स्मरणीय बन रहे हैं !

❀

बड़े-बड़े लोग समझा कर थक गए, अनुरोध के टेलीग्राम 'रिसीव' करते-करते बेचारे तार बाबुओं की अँगुलियाँ फूल कर 'चिनियाँ केला' बन गईं। आपकी सेवा में इतनी चिट्ठियाँ पहुँचीं कि डाक-विभाग का घाटा पूरा हो गया। अजी जनाब, विश्ववरेण्य कवि रवीन्द्र-नाथ तक को आपकी सेवा में प्रार्थना-पत्र भेजना पड़ा। परन्तु अन्त में वही कहावत हुई कि 'भैंस के आगे बीन बजाया, भैंस खड़ी पगुराय !'

❀

जब कभी श्रीमती हर होलीनेस इस वृद्ध भङ्गड़ की दाढ़ी के पक्के बालों को सहलाते-सहलाते उन्हें अकस्मात पकड़ कर लटक जाती हैं, उस समय उनकी छोटी-छोटी मुट्ठियों में बाल नहीं, वरन् हिज़ होलीनेस की जान होती है। बस, एक ही झटके में कुबड़ी और सोंटे से सदा के लिए नाता छूटने की नौबत आ जाती है !

❀

उस समय अपने बाप के आगे भी न झुकने वाला मस्तक झुका जाता है श्रीमती जी के चरणों की ओर, चरण हटते जाते हैं पीछे की ओर और श्रीमती जी के मिज़ाज का पारा चढ़ा जाता है, सातवें आसमान की ओर। भला, मुट्ठी में जान आ जाने पर कौन चूकता है ? हज़ार अनुनय-विनय कीजिए, सुनवाई नहीं।

❀

उसी तरह इस समय दादा ज़मोरिन के मिज़ाज का पारा भी चौदवें आसमान पर है। क्योंकि आपके हाथ में किसी बूढ़े की दाढ़ी के पके बाल नहीं, संसार के सब से बड़े मनुष्य की जान—पैंतीस करोड़ भारतवासियों का भाग्य है। फलतः यही तो मौक़ा है, बड़े-बड़ों से भी नाक रगड़वा लेने का। अस्तु—

❀

भोले-भाले विश्वनाथ, सुनते हैं, बादशाह औरङ्गज़ेब के डर से (मालूम नहीं, अकेले ही या अर्द्धाङ्गिनी जी के साथ) ज्ञानवापी में कूद पड़े थे। अतुल सम्पत्तिशाली सोमनाथ पेट में इतने जवाहरात छिपाए बैठे थे, कि अपने स्थान से एक क़दम भी नहीं हट सके और अन्त में महमूद ग़ज़नवी के हाथों जान ही दे बैठे। काला पहाड़ के डर से कितने देवताओं को दुम दबा कर नौ-दो-ग्यारह होना पड़ा, यह इतिहास वाले अच्छी तरह जानते हैं।

❀

परन्तु गुरुवायूर के बाबा विश्वमूर्ति ऐसे भोंदू नहीं हैं। उन्होंने टीपू की टीप से बचने के लिए उसके पैरों में दर्द पैदा कर दिया और अन्त में गुलछर्रे उड़ाने के लिए, उससे कई गाँव भी ऐंठ लिए। एक राजा को सर्प-

दंशन से बचा कर अपने पुराने मन्दिर की मरम्मत करा ली और अन्त में केजष्पनी क़बाहत से बचने के लिए दादा ज़मोरिन को अपना 'गार्जियन' बना लिया। इसे पत्थर की मूर्ति कहिएगा या अक़्ल की पिटारी?

❀

ख़ैर, जैसे पत्थर के देवता वैसे ही पत्थर-हृदय उनके अभिभावक—'जैसे उदई वैसे भान, न इनके चुटिया न उनके कान।' इसलिए श्रीजगद्गुरु की राय है कि देश के सभी देव-रक्षकों को थोड़ी-थोड़ी ज़मोरिनी-जड़ता प्राप्त कर लेनी चाहिए, ताकि तर्क, युक्ति, धर्मशास्त्र, मनुष्यत्व और सहृदयता आदि दुर्गुणों के कारण देव-रक्षा के काम में बाधा न पड़ने पावे।

❀

हमें जान कर प्रसन्नता हुई कि इस सम्बन्ध में शारदा-पीठ के श्रीशङ्कराचार्य महोदय ने पहला क़दम बढ़ा दिया है। आपने लाट साहब को ललकारा है कि वे अछूतों की छाती पर जन्मजन्मान्तर तक कोदो दलते रहने का अधिकार सनातनियों को सौंप दें और ऐसा क़ानून गढ़ डालें कि सनातनी तोंदों का कोई बाल भी बाँका नहीं कर सके, नहीं तो श्रीमच्छङ्कराचार्य महोदय शाप देकर सरकार को भस्म कर डालेंगे।

❀

अभी उस दिन पुरी के शङ्कराचार्य ने सनातनधर्म की रक्षा के लिए, काशी में जो अलौकिक और अनुपम त्याग किया था, उसकी प्रशंसाजनित थकावट के कारण हिज़ होलीनेस की क़लम की कमर में व्यथा जारी ही थी, कि ये दूसरे हज़रत अर्थात् शारदा-पीठ के शङ्कराचार्य महोदय ने एकदम पौने चार लाइन का वक्तव्य फ़्री प्रेस को दे डाला!

❀

आपको मालूम नहीं, इन शङ्कराचार्यों के मुखों से निकले हुए एक-एक बोल का मोल सैकड़ों रुपए होता है। ये किसी चेला के घर जाकर उसे 'आयुष्मानभव' कह देते हैं, तो १०१) नक़द चरणों पर रखवा लेते हैं। इससे कम पर बीबी छम्मी जान किसी रईस की मुहफ़िल में मोजरा सुनाने भले ही चली जायँ, परन्तु बाबा कुर्तकोटि और भारतीतीर्थ नहीं जा सकते।

❀

'अक़्लमन्दाँ रा इशारा काफ़ी अस्त'—इस वाक्य के अनुसार, अगर बाज़ार-दर का कुछ भी आपको ज्ञान होगा तो इतने से ही आप श्रीशारदापीठ के श्रीमच्छङ्कराचार्य महोदय के पौने चार लाइन वाले वक्तव्य का मूल्य आँक सकेंगे और समझ जाएँगे कि इस संसार-व्यापी अर्थ-सङ्कट के दिनों में उन्होंने अपने वक्तव्य द्वारा कितनी बड़ी रक़म सनातनधर्म के नाम पर निछावर कर दी है।

❀

अब आप ही बताइए अपने ईमान और धर्म के मूँड़ पर हाथ रख कर और अल्लाहताला को हाज़िरो-नाज़िर समझ कर कि धर्म के लिए ऐसा अनुपम और अलौकिक त्याग इतिहास के पन्ने में कहीं देखा है? अजी, झख मारा करें राजा दधीचि और हरिश्चन्द्र आदि। उनका त्याग और धर्म-प्रेम हमारे इन शङ्कर भगवानों के त्याग और धर्म-प्रेम के पासङ्ग के बराबर तो हो ही नहीं सकता। राम-राम, 'कहाँ राजा भोज और कहाँ गङ्गू तेली!'

❀

अछूत अगर मन्दिरों में चले जायँगे तो धर्म का ध्वंस हो जायगा, देवता, पितृ और उनकी जान व माल के ये सनातनी ठीकेदार एक साथ ही रौरौ और कुम्भि-पाक में चले जाएँगे। वेदों से लेकर 'चूचेचोला अश्विनी' वाले लघुसंग्रह तक में साफ़-साफ़ लिखा है कि 'अछूतों को मन्दिरों में जाने देना पाप है।' फलतः शङ्कराचार्य महोदयों के इस अद्भुत शास्त्र-ज्ञान पर यह अकिञ्चन हिज़-होलीनेस अपना ताड़ी पीने वाला पुराना चुक्कड़ तक निछावर न कर दे तो क्या करे?

❀

मगर इतने से ही बस न समझ लीजिए, पुराने गूदड़ में पड़े हुए चीलर की तरह दादा सनातनधर्म की पुरानी झोली में भी एक से एक बढ़ कर धर्मधुरन्धर पड़े हुए हैं। पूना के पोंगापन्थियों ने अदालत में अर्ज़ी दी है कि महात्मा जी, मालवीय जी, श्रीराजगोपालाचार्य आदि पचत्तर नेता जो हरिजनों को मन्दिरों में जाने देने का अधिकार दिलाना चाहते हैं, क़ानूनन् रोक दिए जाएँ। देखी आपने, कैसी दूर की सूझ है? अब बताइए, ऐसी खोपड़ियों की ख़ातिर महामूल्यवान 'लतरा' के सिवा और किस वस्तु से हो सकती है?

❀

अरे भई, बुद्धि कोई ईंट या पत्थर की तरह ठोस और स्थिर वस्तु थोड़े ही होती है कि एक जगह रुकी रहे। उसका तो काम ही ठहरा घनचक्कर की तरह घूमते रहना। फलतः शारदा-क़ानून आन्दोलन के समय जिन्होंने वावेला मचाया था कि सरकार, अदालत और क़ानून को कोई हक़ नहीं कि धर्म और समाज के मामलों में हस्तक्षेप करें, उन्होंने ही अब धर्म की रक्षा के लिए अदालत की शरण ली है। भाई पोंगाराम को मौक़े पर जो सूझ गई वह सूझ गई। वे कोई लोहे की लाठ थोड़े ही हैं, जो एक स्थान पर अड़े रहें।

❀

हमें यह लिखते दुःख होता है कि कुछ अख़बार-नवीसों ने पूना के पोंगापुङ्गवों के इस कार्य को 'हिमाक़त' कह कर अकारण ही संसार के अगणित अहमक़ों का अपमान कर डाला है, इसलिए आश्चर्य नहीं कि विगत मूर्ख-सम्मेलनों के सभापति-द्वय—पण्डित दुलारेलाल जी भार्गव और आचार्य चतुरसेन शास्त्री मूर्खों (अहमक़ों) की ओर से इन पर मानहानि का दावा दायर कर दें।

❀

हमारी राय में अभी से इन महानुभावों के लिए कोई पदवी ठीक कर लेना जल्दबाज़ी होगी, क्योंकि अभी तो इन्होंने अपनी बुद्धि की बानगी भर दिखाई है। असल ज़ख़ीरा तो अभी खोपड़ी के अन्दर है। ज़रा समय आने दीजिए और इन्हें अपनी धार्मिकता का असली रूप दिखाने दीजिए, तब आपको स्वयं ही मालूम हो जायगा कि इन्हें अहमक़ कहना बेचारे अहमक़ों के साथ घोर अन्याय करना है।

❀

अच्छा, अब थोड़ी सी साहित्य-चर्चा भी सुन लीजिए। खुदा जाने किस बुरी साइत में श्री० अन्नपूर्णानन्द जी ने कविवर चचा की चर्चा आरम्भ की कि उसे पढ़ते ही 'विशाल-भारत' के सम्पादक पण्डित बनारसीदास जी चतुर्वेदी अण्डमन जाने को तैयार हैं और अपने साथ ही श्री० अन्नपूर्णानन्द जी तथा पण्डित हरिशङ्कर शर्मा को भी लेते जाने वाले हैं। कहावत है कि 'बाँड़ ख़ुद गए और नौ हाथ की रस्सी भी लेते गए!'

यही नहीं, जिस तरह चिकित्सा-शास्त्र को मथ कर आपने 'साहित्यिक-सन्निपात' नामक एक नए रोग, उसके निदान और उसकी दवा का पता लगाया है, उसी तरह आपकी राय में ये चन्द विनोदी लेखक अजीर्ण रोग की दवा—शायद 'विरेचन वटी' हैं। ये जहाँ रहेंगे, वहाँ से अजीर्ण रोग वैसे ही ग़ायब रहेगा, जैसे गधे के सिर से सींग!

❀

इसलिए हिन्दी के विनोदी लेखकों को 'विशाल-भारत' के इन 'साहित्य-धन्वन्तरि' महोदय से ज़रा सावधान रहना चाहिए। क्योंकि इन्हीं (ब्राह्मणों) के पूर्व-पुरुषों में कोई महर्षि महोदय थे, जिन्होंने आतापी और वातापी नाम के दो दुर्द्धर्षों को बिना डकार लिए ही पचा डाला था। इसलिए बाबा शाह मदार से विनीत प्रार्थना है कि हमारे 'चौबे जी' को अजीर्ण व्याधि से बचाये रक्खें, अन्यथा उनकी नवाविष्कृत विरेचन-वटियों की जो दुर्गति होगी, उसे सोच कर तो अपने राम का कलेजा काँप रहा है।

❀

'कहीं हाय-हाय कहीं उड़द का भसका!' चतुर्वेदी जी की कृपा से, इधर तो नए विनोदी लेखकों की जान आफ़त में है; मालूम नहीं, उनके साथ इन्हें जलावतन होना पड़े या अजीर्ण की दवा बन कर किसी भोजनभट्ट की अँतड़ियों में झाड़ू लगाना पड़े; उधर पुराने विनोदी श्रद्धेय दादा जगन्नाथप्रसाद जी चतुर्वेदी को आपने ऐसा मुजर्रब 'टॉनिक' पिला दिया है कि बुढ़ौती में भी हथियार पकड़ कर खड़े हो गए हैं। पण्डित बनारसीदास जी को लिखते हैं—"आज्ञा हो तो औज़ार ठीक करूँ!" वल्लाह, अवश्य!

❀

देखा आपने हमारे नए साहित्य-धन्वन्तरि जी का पक्ष-पात। अपने सजातीय (चतुर्वेदी जी) को तो ऐसी दवा दी कि अखाड़े में उतरने को तैयार हैं और बेचारे पण्डित हरिशङ्कर जी और श्रीयुत अन्नपूर्णानन्द जी को अपने साथ देशान्तर ले चले। सोचा होगा कि ये भी उन्हीं की तरह बिना जोड़ू-जाँते के रँडुए ही हैं।

[सम्पादकीय]

सरकार की नई कृपाएँ

पाठक जानते हैं कि 'चाँद' के संस्थापक श्री० रामरखसिंह सहगल पर पिछले कई महीनों से राजविद्रोह का एक मुक़दमा चल रहा है और मैजिस्ट्रेट की अदालत से उनको ६ मास की कड़ी क़ैद और ५००) जुर्माने की सज़ा दी गई है। श्री० सहगल जी ज़मानत पर छूटे हैं और मामले की अपील आजकल हाईकोर्ट में दायर है। इसके अतिरिक्त उन पर 'प्रेस एण्ड रजिस्ट्रेशन ऑफ़ बुक्स एक्ट' के अनुसार भी एक मुक़दमा चलाया गया था, जिसमें उनको ७५०) जुर्माना अथवा ६ सप्ताह क़ैद की सज़ा दी गई थी, किन्तु इसकी अपील करने पर सेशन्स जज की अदालत ने उनको निर्दोष पाकर छोड़ दिया, पर सहगल जी की इस रिहाई के विरुद्ध गवर्नमेण्ट की तरफ़ से हाईकोर्ट में अपील की गई है। इन मुक़दमों की पैरवी के झमेले के कारण और 'चाँद प्रेस, लिमिटेड' सम्बन्धी विशेष कार्य-भार के कारण उनको प्रायः बाहर आना-जाना पड़ता है। फलतः उन्हें इन दिनों बहुत व्यस्त रहना पड़ता है और पत्र तथा प्रेस की देख-भाल के लिए प्रायः उनको अवकाश नहीं मिलता। इन्हीं झञ्झटों के कारण उन्होंने संस्था का सारा प्रबन्ध-भार भी बोर्ड ऑफ़ डाईरेक्टर्स को सौंप दिया है। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने 'फ़ाइन आर्ट प्रिन्टिङ्ग कॉटेज' के 'कीपर' का पद त्याग दिया और आपके स्थान पर प्रेस के सुपरिण्टेण्डेण्ट श्री० एच० पी० मैत्रा, बी० ए० ने गत पहली दिसम्बर को नया डिक्लेरेशन दाख़िल किया। उसी दिन 'चाँद' के वर्तमान सम्पादक ने भी उसके प्रिण्टर और पब्लिशर का डिक्लेरेशन दाख़िल किया। डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट ने दोनों डिक्लेरेशनों को यह कह कर ले लिया, कि जाँच हो जाने के बाद इनकी मञ्ज़ूरी भेजी जायगी। साथ ही श्री० सहगल जी को उन्होंने सूचना दी कि उनका त्याग-पत्र श्री० मैत्रा का डिक्लेरेशन मञ्ज़ूर हो जाने के बाद स्वीकृत किया जा सकेगा। अस्तु, गत १० दिसम्बर को श्री० मैत्रा और 'चाँद' के सम्पादक को मैजिस्ट्रेट की तरफ़ से दो 'हुक्मनामे' प्राप्त हुए, जिनका अविकल भाषान्तर यहाँ दिया जाता है :—

कीपर के नाम

"जब कि २८ एडमॉन्स्टन रोड, इलाहाबाद का प्रेस, जिसका नाम 'फ़ाइन आर्ट प्रिण्टिङ्ग कॉटेज' है, पूर्ववर्ती 'कीपर' के अधिकार में था, तब उसमें इस तरह की बातें छपती थीं, जिनके लिए दफ़ा १२४-ए के अनुसार मुक़दमा चलाया गया था, और उसमें छपने वाले पत्रों के प्रिण्टर और पब्लिशरों से ज़मानत ली गई थी। श्री० एच० पी० मैत्रा, बी० ए० का, जिन्होंने अब 'कीपर' का डिक्लेरेशन दिया है, कई वर्षों से फ़ाइन आर्ट कॉटेज से सम्बन्ध है। मेरी सम्मति में इस बात का काफ़ी अन्देशा है कि अब भी इस प्रेस में सन् १९३१ के तेरहवें एक्ट की चौथी धारा और सन् १९३२ के दसवें (ऑर्डिनेन्स) की ७७वीं धारा के विरुद्ध बातें छपती रहेंगी। इसलिए मैं नए कीपर श्री० एच० पी० मैत्रा को सन् १९३१ के तेरहवें एक्ट की चौथी धारा के अनुसार १० दिसम्बर सन् १९३२ के पहले ५००) की नक़द या उतने ही मूल्य की गवर्नमेण्ट सीक्योरिटीज़ में ज़मानत दाख़िल करने की आज्ञा देता हूँ।"

प्रकाशक और मुद्रक के नाम

"पहले 'चाँद' से सन् १९३१ के तेरहवें एक्ट की सातवीं धारा के अनुसार ज़मानत ली गई थी, जो मार्च सन् १९३२ में वापस कर दी गई। इस ज़मानत के वापस किए जाने के बाद ही मेरा ध्यान 'चाँद' में प्रकाशित एक आपत्तिजनक कविता की तरफ़ आकर्षित किया गया। मैंने उसके सम्पादक (?) श्री० आर० सहगल को, जिनके विरुद्ध उस समय दफ़ा १२४-ए का एक मुक़दमा चल रहा था, चेतावनी दी कि यदि फिर कोई आपत्तिजनक चीज़ छपेगी तो नई ज़मानत माँगी जायगी। इस बात को ध्यान में रखते हुए कि मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव, जिन्होंने अब प्रिण्टर और प्रकाशक का डिक्लेरेशन दिया है, श्री० सहगल के सम्पादकीय काल से ही 'चाँद' से सम्बन्ध रखते हैं, और इस बात को भी ध्यान में रखते हुए कि श्री० आर० सहगल और उनके भाई श्री० एन० जी० सहगल अब भी 'चाँद' प्रेस के डायरेक्टर हैं, मेरी सम्मति में इस बात का काफ़ी अन्देशा है कि इस पत्र में फिर सन् १९३१ के तेरहवें एक्ट की चौथी धारा और सन् १९३२ के दसवें एक्ट (ऑर्डिनेन्स) की ७७ वीं धारा के विरुद्ध लेख प्रकाशित होंगे। इस पत्र के सम्पादक श्री० आर० सहगल के विरुद्ध दो फ़ौजदारी मुक़दमों की अपीलें दायर हैं और इस कारण सम्भवतः पिछले कुछ महीनों से पत्र की नीति नर्म रही है। पर सम्पादक के बदल जाने से वह प्रभाव जाता रहेगा। इसलिए मैं मुन्शी नवजादिकलाल श्रीवास्तव को १० दिसम्बर १९३२ से पहले सन् १९३१ के तेरहवें एक्ट की सातवीं धारा के अनुसार ५००) की नक़द या उतने ही मूल्य की गवर्नमेण्ट सीक्योरिटीज़ में ज़मानत दाख़िल करने की आज्ञा देता हूँ।"

इन हुक्मनामों के उत्तर में मैजिस्ट्रेट को लिखा गया कि आपने दस तारीख़ से पहले ज़मानत जमा करने का हुक्म दिया है और इसकी सूचना हमको दस तारीख़ को दोपहर के समय दी गई है। ऐसी परिस्थिति में आपकी आज्ञा का पालन किस प्रकार किया जाय? इसके सिवा सन् १९३१ के एक्ट में स्पष्ट कहा गया है कि ज़मानत जमा करने के लिए दस दिन का अवसर दिया जायगा। मैजिस्ट्रेट ने इस एतराज़ को मान लिया और १० तारीख़ के बदले १९ तारीख़ को ज़मानत जमा करने की आज्ञा दी। प्रेस दो दिनों तक बन्द रखना पड़ा! १९ दिसम्बर को श्री० मैत्रा ने 'कीपर' की हैसियत से ५००) की ज़मानत जमा कर दी। ज़मानत जमा हो जाने पर मैजिस्ट्रेट ने सहगल जी का त्याग-पत्र स्वीकार कर लिया और इसकी सूचना पत्र-द्वारा उनके पास भेज दी।

सहगल जी के हथियार ज़ब्त

इसी बीच में एक और उल्लेखनीय घटना हो गई। १९ तारीख़ को सहगल जी अपनी दुनली बन्दूक़ और दो तलवारों का लायसेन्स नया कराने को सिटी मैजिस्ट्रेट की अदालत में गए। ये हथियार उनके पास पिछले छः वर्षों से थे और इनके सम्बन्ध में सरकारी अधिकारियों की तरफ़ से कभी किसी तरह का एतराज़ या आपत्ति नहीं की गई थी। पर इस बार मैजिस्ट्रेट ने उनका लायसेन्स बहाल करने से इनकार कर दिया और उन्हें तुरन्त सरकारी मालख़ाने में जमा करने की आज्ञा दी, जिसका पालन उसी समय कर दिया गया। लायसेन्स नामञ्ज़ूर करने का कोई कारण नहीं बतलाया गया और न डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट को पत्र लिखने से कोई सन्तोषजनक उत्तर प्राप्त हुआ।

गवर्नमेण्ट की दूसरी अपील

पाठकों को स्मरण होगा, डाकख़ाने में 'भविष्य' की २२,००० प्रतियाँ, बिना किसी कारण के रोक ली गई थीं और १२ दिन के बाद उन्हें निर्दोष पाकर अधिकारियों ने छोड़ दिया था, इस अनुचित हरकत के विरुद्ध श्री० सहगल जी ने १०००) के नाम-मात्र (Nominal) हर्जाने का दावा सेक्रेटरी ऑफ़ स्टेट फ़ॉर इण्डिया इन कौन्सिल के नाम दायर किया था और दीवानी अदालत ने उन्हें १०००) के स्थान पर ५०) की डिक्री भी दे दी थी। अस्तु।

ये अन्तिम पंक्तियाँ लिखते-लिखते, अभी श्री० सहगल जी को एक सम्मन मिला है, जिससे पता चलता है कि उस मुक़दमे के विरुद्ध भी गवर्नमेण्ट ने डिस्ट्रिक्ट और सेशन्स जज की अदालत में अपील दायर कर दी है। इस मुक़दमे की पेशी १७ जनवरी को होगी, इस प्रकार पाठक देखेंगे, श्री० सहगल जी के विरुद्ध दो सरकारी अपीलें और एक उनकी अपील का मामला चल रहा है।

आगे-आगे देखिए होता है क्या?

❀ ❀ ❀

धर्म पर कुठाराघात

एक ज़माना था, जबकि धर्म या मज़हब की सत्ता ही संसार में सर्वोच्च सत्ता मानी जाती थी और उसके ख़िलाफ़ मुँह खोलना सब से बड़ा अपराध समझा जाता था। नर-हत्या के अपराधी तक पर दया दिखलाई जा सकती थी, परन्तु धर्म-निन्दक को असहनीय यातनाएँ देकर मार डालना ही 'कर्तव्य' माना जाता था। न्याय-विभाग के मुखिया धर्माधिकारी ही थे और वे प्रत्येक अभियोग का निर्णय धार्मिक नियमों की दृष्टि से किया करते थे। उस समय धर्म-याजकगण ही समाज के नेता, सञ्चालक और शासक आदि सब कुछ थे। समाज के नियन्त्रण के लिए वे जितने नियम या क़ानून बनाते थे, उन सबका प्रधान उद्देश्य यही होता था, कि उनके अधिकार में किसी प्रकार की बाधा न पड़े। परन्तु संसार की आर्थिक तथा राजनीतिक दशा के विकास और परिवर्तन के फल से धीरे-धीरे यह परिस्थिति बदल गई और समाज की बागडोर धर्म-याजकों के हाथों से निकल कर राजनीतिकों के हाथों में चली गई। वैसे तो अब भी संसार के प्रत्येक देश में धर्म-याजकों की श्रेणी पाई जाती है, परन्तु अब उसकी उस पुरानी प्रधानता का अल्पांश भी शेष नहीं रह गया है। फलतः अब उसको येन-केन-प्रकारेण अपना अस्तित्व क़ायम रखने के लिए वर्तमान काल के शासकों के साथ मिल कर चलना पड़ता है तथा उनकी हाँ में हाँ मिलानी पड़ती है। परन्तु नवीन लक्षणों से मालूम होता है कि धर्म और धर्म-याजकों की यह पराधीनतापूर्ण परिस्थिति भी अब अधिक दिनों तक नहीं टिक सकेगी और सम्भवतः शीघ्र ही बँधना-बोरिया समेट कर इस संसार से उन्हें कूच कर जाना पड़ेगा। इस सम्बन्ध में सब से पहला क़दम रूस ने बढ़ाया है। वहाँ गिर्जाघरों की स्थावर और जङ्गम सम्पति तथा उनकी अधिकांश स्वतन्त्रता तो बोलशेविक शासन के आरम्भ में ही हर ली गई थी। अब एक नया कार्यक्रम बनाया गया है, जिसके अनुसार रूस से धर्म का एकदम मूलोच्छेद कर डालने का ही निश्चय कर लिया गया है। यह कार्यक्रम सन् १९३२ से १९३६ तक पाँच वर्षों में पूर्ण होने वाला है। उसका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:—

(१) प्रथम वर्ष में समस्त गिर्जाघरों और अन्य धर्म-मन्दिरों को बन्द कर दिया जायगा।

(२) दूसरे वर्ष घर-घर जाकर पता लगाया जायगा कि वहाँ कोई निजी देवालय तो नहीं है। यदि होगा तो उसे नष्ट कर दिया जायगा।

(३) तीसरे वर्ष ऐसे तमाम लोगों को, जो इतने पर भी ईश्वर या धर्म पर विश्वास रखते होंगे, सरकारी नौकरी से हटा दिया जायगा और उनको किसी तरह की सरकारी सहायता नहीं दी जायगी। १५० सिनेमा की फ़िल्मों द्वारा प्रत्येक क़स्बे और प्रत्येक गाँव में और विशेष रूप से स्कूलों और कॉलेजों में धर्माचरण की निस्सारता के सम्बन्ध में प्रचार किया जायगा। इस आन्दोलन के बाद भी जो धर्म-याजक अपना पेशा न छोड़ेंगे, उनको देश से निकाल दिया जायगा।

(४) चौथे वर्ष समस्त धर्म-मन्दिरों को ज़ब्त करके उन्हें सर्व-साधारण के उपयोग के लिए सिनेमा और क्लब आदि के रूप में परिणत कर दिया जायगा।

(५) यदि इन चार वर्षों में इस कार्यक्रम में कोई त्रुटि रह जायगी तो उसकी पूर्ति पाँचवें वर्ष में की जायगी।

रूस की हवा मैक्सिको को भी लगी है और वहाँ की क्रान्तिकारिणी सरकार ने भी धार्मिक संस्थाओं और धार्मिक प्रचार के सम्बन्ध में कई नए क़ानूनों की सृष्टि की है। इन क़ानूनों के अनुसार अब वहाँ ऐसा कोई पादरी नहीं रह सकता, जो किसी विदेशी को अपना मुखिया या नेता मानता हो। इस दशा में रोमन कैथलिक पादरियों का उस देश में टिक सकना असम्भव हो गया है, क्योंकि वे रोम के पोप को अपना प्रधान नेता या धर्माचार्य मानते हैं और उसकी आज्ञाओं का पालन करते हैं। इन नियमों के विरुद्धाचरण करने के फल-स्वरूप कई पादरियों को फाँसी, देश-निकाला और जुर्माने की सज़ाएँ दी जा चुकी हैं। स्पेन की साम्यवादी प्रजातन्त्र सरकार भी धर्म की विरोधिनी है। वहाँ के कई शहरों में गिर्जाघरों के घण्टों पर पाँच पौण्ड प्रति घण्टे के हिसाब से टैक्स लगाया गया है और साथ ही उनको नियत समय के भीतर ही बजाने का भी नियम बना दिया गया है। ज़मोरा नामक क़स्बे में शाम के सात से सुबह के आठ बजे तक घण्टा नहीं बजाया जा

सकता, जिसके फल-स्वरूप गिर्जाघरों को सुबह का छः बजे वाला घण्टा बन्द कर देना पड़ा है। जैसे-जैसे सर्व-साधारण में समता और स्वतन्त्रता का भाव फैलता जाता है, वैसे ही वैसे वे धर्म और धर्म-याजकों की सत्ता के विरोधी बनते जाते हैं। क्योंकि धर्म ने संसार में बड़ी ही विषमता की सृष्टि की है और उसके नाम पर मनुष्यों पर ऐसे-ऐसे घोर अत्याचार किए गए हैं, जिनकी तुलना अन्यत्र मिल सकनी असम्भव है। धर्म ने विचार-स्वातन्त्र्य के मार्ग को अवरुद्ध कर दिया है और समयोचित सुधारों में भी इसके कारण सदैव बाधा पड़ती है। इन कारणों से समस्त देशों के स्वाधीनचेता तथा स्वतन्त्र विचारक व्यक्ति धर्म के विरोधी बन गए हैं और इसके समूल नाश अथवा इसमें क्रान्तिकारी परिवर्तन करने की चेष्टा कर रहे हैं। पर आश्चर्य है कि हमारे कितने ही देशवासी अब भी अन्धकार में पड़े हैं और उन्होंने मन्दिरों में अछूतों के प्रवेशाधिकार को ही एक बड़ा महत्वपूर्ण प्रश्न बना रक्खा है! वे नहीं समझते कि उनकी शक्ति कैसे निरर्थक कार्य में ख़र्च हो रही है। वे मन्दिरों की 'पवित्रता' की रक्षा के लिए हाय-तोबा मचा रहे हैं, जब कि ज़माना ऐसा आ रहा है कि मन्दिरों का अस्तित्व भी बना रहेगा या नहीं, इसमें सन्देह है!

❀ ❀ ❀

प्रवासी भाइयों की दुर्दशा

ब्रिटिश गायना, ट्रिनीडाड और सुरीनाम आदि टापुओं से लौटे हुए प्रायः एक हज़ार प्रवासी भारतीय बहुत दिनों से कलकत्ता के मटियाबुर्ज नामक मुहल्ले में ठहरे हुए हैं। समाचार-पत्रों की रिपोर्टों से विदित होता है कि ये लोग आजकल अकथनीय कष्टमय जीवन व्यतीत कर रहे हैं और अब तो उनकी दशा एकदम असहनीय हो चली है। इसलिए इस तथ्य को सरकार तथा जनता पर प्रकट करने के लिए उन्होंने कलकत्ते के बाज़ार में एक जुलूस निकाला था। इन लोगों को अब एक वक्त भोजन का भी ठिकाना नहीं है! फलतः उनका अन्त धीरे-धीरे पास आता-जाता है। कुछ उदार हृदय सज्जन उनकी सहायता कर रहे हैं, पर ऐसी सहायता गर्म तवे पर पानी की बूँदों के समान सिद्ध होती है। हाल ही में इस सम्बन्ध में बड़ी व्यवस्थापक सभा में भी कई प्रश्न पूछे गए थे और सरकार से आग्रह किया गया था कि वह इन विपद्ग्रस्तों को किसी नए काम में लगा कर उनके भरण-पोषण की व्यवस्था करे अथवा उनको पुनः उन्हीं टापुओं में भिजवाने का प्रबन्ध करे। इसके उत्तर में सरकारी मेम्बर ने कितनी ही ज्ञातव्य बातें बतलाई हैं, जिनसे विदित होता है कि ये प्रवासी भारतवासी अपनी इच्छा से टापुओं से लौटे हैं और अधिकांश कई वर्षों से मटियाबुर्ज में रहते हैं। उन्होंने कई बार सरकार की सेवा में इस आशय का प्रार्थना-पत्र भेजा है कि उनको सरकारी ख़र्च से विदेश भेज दिया जाय। परन्तु सरकार इसलिए तैयार नहीं हुई ; "क्योंकि सन् १९१९ से अब तक प्रायः डेढ़ लाख प्रवासी इस देश में लौट चुके हैं और यदि इन लोगों की प्रार्थना स्वीकार की जाती तो दूसरे लोग भी उसी तरह की माँगें पेश करते और इतनी बड़ी रक़म इस काम के लिए दे सकना सरकार के लिए असम्भव होता। ये लोग जिन टापुओं से लौटे हैं वहाँ की आर्थिक दशा भी दुर्भाग्य-वश आजकल अन्य देशों के समान गिरी हुई है और वे बाहरी लोगों का अधिक संख्या में वहाँ आना पसन्द नहीं करते। ऐसी दशा में सरकार अधिक से अधिक यही कर सकती है कि इन लोगों को अपने ख़र्च से उनके घरों तक पहुँचा दे और वहाँ पर वे अन्य लौटने वालों की तरह अपनी योग्यता और रुचि के अनुसार कोई काम करके जीवन-निर्वाह करें।" हमें दुःख से कहना पड़ता है कि सरकार का यह उत्तर सन्तोषजनक नहीं है और उसने इन लोगों के लिए जो मार्ग स्थिर किया है, उससे इनकी समस्या हल नहीं होगी। इससे तो केवल इतना ही होगा कि ये अभागे एक जगह संयुक्त रूप से मरने के बजाय, देश के विभिन्न दूरवर्ती स्थानों में जाकर मरेंगे और इससे इस घटना का कारुणिक प्रभाव नष्ट हो जायगा!! इन लोगों के अपने पुराने गाँवों में फिर से बसने में केवल आर्थिक कठिनाइयाँ ही नहीं हैं, वरन् उनसे भी बढ़ कर सामाजिक कठिनाइयाँ भी हैं। गाँवों के पुराने ख़्यालों के लोग ऐसे लौटने वालों को 'धर्म-भ्रष्ट' समझते हैं और वे प्रायः जाति-च्युत कर दिए जाते हैं। यदि उनके पास काफ़ी धन हो तब तो 'प्रायश्चित'

आदि करके और उन लोगों को खिला-पिला कर वे फिर समाज में सम्मिलित हो सकते हैं, अन्यथा कोई उनकी बात नहीं पूछता और उनके साथ प्रायः अच्छा व्यवहार तक नहीं किया जाता। ऐसी दशा में गाँवों में उनका गुज़ारा हो सकना कठिन है। इस परिस्थिति में यही उचित जान पड़ता है कि या तो उन्हें किसी टापू में, जहाँ जाना वे पसन्द करें और जहाँ इनकी आवश्यकता भी हो, भेज दिया जाय; अथवा इसी देश में कहीं ज़मीन और आवश्यक आर्थिक सहायता देकर उनकी एक स्वतन्त्र बस्ती बसा दी जाय; पर क्या विदेशी शासन से यह आशा करना हम पराधीनों के लिए सम्भव है?

❀ ❀ ❀

ऑर्डिनेन्स बिल

भारत-सरकार प्रायः एक वर्ष से भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन और राष्ट्रीय महासभा को ऑर्डिनेन्सों द्वारा कुचलने की चेष्टा कर रही है, पर जब उसे इस कार्य में सफलता प्राप्त न हुई तो उसने, स्वेच्छाचारपूर्वक कहिए, अथवा उसके चुने हुए 'जीहुजूरों' की नमकहलाली—उन्हीं ऑर्डिनेन्सों को तीन वर्ष के लिए क़ानून का रूप दे डाला है! यह कहने की आवश्यकता नहीं कि यह क़ानून न्याय और नीति के सर्वथा विरुद्ध है और इससे लोगों की लिखने और बोलने की स्वाधीनता प्रायः सर्वांश में नष्ट हो जाती है। इङ्गलैण्ड की इण्डिया-लीग की तरफ़ से जो डेलीगेशन इस देश की राजनीतिक परिस्थिति की जाँच करने आया था, उसने इस ऑर्डिनेन्स-शासन को किसी 'सभ्य-सरकार' के लिए कलङ्क-स्वरूप बतलाया है। उसके मतानुसार—"इस देश के सभी गोरे और काले राज्य-कर्मचारी जन-समूह के सम्बन्ध में किसी तरह का ज्ञान नहीं रखते और न उनके दिलों में जनता के प्रति सहानुभूति पाई जाती है। सर्वसाधारण द्वारा उनकी आज्ञाओं का पालन इसलिए नहीं होता कि वे जनता की आकांक्षाओं के अनुकूल निर्णय करते हैं, वरन् इसलिए होता है, कि उनके हाथ में शक्ति है और वे देशवासियों के मत की अवहेलना करके उसका उपयोग करते हैं।"

ऐसी परिस्थिति में सरकार और जनता के बीच में प्रेम और सद्भाव उत्पन्न होने की आशा किस प्रकार की जा सकती है? और बिना प्रेम तथा सद्भाव उत्पन्न हुए दमनकारी क़ानूनों से देश में सच्ची शान्ति किस प्रकार स्थापित हो सकती है? इसलिए डेलीगेशन का यह कथन सर्वथा सत्य है कि "शान्ति तभी स्थापित हो सकेगी, जब कि वर्तमान नीति सर्वथा त्याग दी जायगी और कॉङ्ग्रेस तथा महात्मा गाँधी का सहयोग प्राप्त करके समझौते की चेष्टा की जायगी। इसके अतिरिक्त अन्य तमाम उपाय व्यर्थ सिद्ध होंगे। क्योंकि यह कभी सम्भव नहीं हो सकता कि जनता के विश्वास-भाजन नेता और उनके हज़ारों अनुयायी जेलों में पड़े रहें, जनता की आवाज़ दबा दी जाय और ऐसी परिस्थिति में देश इङ्गलैण्ड द्वारा प्रदान किए गए शासन-सुधारों को स्वीकार कर ले।" परन्तु सरकार को इन उपदेशों की ज़रा भी परवाह नहीं है। वह बलपूर्वक शासन-सुधार की घुट्टी भारतवासियों के गले के नीचे उतार देना चाहती है, इसीलिए उसने ऑर्डिनेन्सों को क़ानून का रूप देकर भारतीय पत्रकारों तथा नेताओं को लिखने और बोलने की स्वतन्त्रता भी तीन वर्षों के लिए छीन ली है! इस सर्वथा स्वेच्छाचारी शासन का अन्तिम परिणाम क्या होगा, यह भविष्यवाणी करना भी इस ऑर्डिनेन्स-युग में हमारे लिए सम्भव नहीं है!

❀ ❀ ❀

अछूत बालकों की शिक्षा

अछूतोद्धार-आन्दोलन का एक मुख्य अङ्ग अछूत बालकों की शिक्षा का प्रश्न भी है। इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि जब तक अछूतों में समुचित रूप से शिक्षा-प्रचार न होगा तब तक उनकी वास्तविक उन्नति भी न हो सकेगी और न उनमें किसी प्रकार के सुधार से स्थायी फल प्राप्त हो सकेगा। इसलिए इस आन्दोलन के कार्यकर्ताओं को अभी से इस तरफ़ पूर्ण ध्यान देना चाहिए और निश्चय कर लेना चाहिए कि अछूतों की शिक्षा का प्रबन्ध किस प्रकार किया जाय। पुराने ढङ्ग के अधिकांश सुधारकों की दृष्टि में इसका उपाय अछूतों के लिए पृथक् स्कूल स्थापित

करना है, जैसा कि आर्य-समाज और अन्य संस्थाओं की तरफ़ से अब तक किया जाता रहा है। परन्तु जाँच करने से सिद्ध होता है कि यह उपाय अधिक फलदायक नहीं है और इससे अछूतों और उच्च जातियों का अन्तर और भी बढ़ता है। इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए बम्बई-सरकार ने सन् १९३० में एक कमिटी नियत की थी, जिसमें डॉ० अम्बेडकर तथा डॉ० सोलङ्की आदि अछूत-प्रतिनिधि तथा कई सुधारक भी सम्मिलित थे। कमिटी में अछूतों के लिए पृथक् स्कूल स्थापित करने के सम्बन्ध में विचार किया गया था और अन्त में यही निर्णय हुआ कि यह मार्ग पूर्णतया उपयुक्त नहीं है। इसका कारण बतलाते हुए कमिटी की रिपोर्ट में कहा गया है कि "यह सच है कि पिछले वर्षों में पृथक् स्कूलों के कारण अछूत जाति वालों का बहुत-कुछ उपकार हुआ है; और इनके बिना उनमें शिक्षा-प्रचार हो सकना असम्भव था। पर साथ ही यह भी स्वीकार करना पड़ेगा कि शिक्षा की उत्तमता की दृष्टि से इस तरह के स्कूल सदा हीन श्रेणी के होते हैं। इसके सिवाय इन स्कूलों से अछूत जातियों और शेष हिन्दू-समाज का अन्तर मिटने के बजाय और भी दृढ़ होता जाता है।" यही सम्मति पञ्जाब अछूतोद्धार-मण्डल की पञ्चवर्षीय रिपोर्ट (१९२६-१९३१) में प्रकट की गई है। उसमें मण्डल की कार्यवाही का वर्णन करते हुए कहा गया है—"अछूतों में शिक्षा-प्रचार के उद्देश्य से आरम्भ में मण्डल की तरफ़ से सात प्रारम्भिक पाठशालाएँ स्थापित की गईं, जिनमें केवल अछूत-बालक ही पढ़ते थे। × × × पर वे स्कूल अशिक्षा और अस्पृश्यता को मिटाने की दृष्टि से असफल सिद्ध हुए। × × × इसलिए एक वर्ष की निरर्थक चेष्टा के पश्चात् इन स्कूलों को बन्द कर देना पड़ा। अब मण्डल ने यह नीति ग्रहण की है कि जहाँ तक सम्भव हो अछूत बालकों को सार्वजनिक स्कूलों में भर्ती कराया जाय और उन्हें यथाशक्ति सहायता दी जाय।" पर इस मार्ग में भी कठिनाइयों की कमी नहीं है। यदि सरकार और अन्य स्थानीय संस्थाओं द्वारा अछूतों को सार्वजनिक स्कूलों में पढ़ने का अधिकार दे भी दिया जाय, जैसा कि अधिकांश स्थानों में किया जा चुका है, तो भी अछूत जाति वाले इस अधिकार का उपयोग नहीं कर सकते। अगर उच्च जातियों के हिन्दू उन पर अपने लड़कों को स्कूल में न भेजने के लिए दबाव डालें तो उनकी सामर्थ्य नहीं कि इसका विरोध कर सकें। इसलिए यह समस्या वास्तव में तभी हल हो सकेगी जब कि उच्च जाति वालों की मानसिक स्थिति में परिवर्तन होगा और वे उनको समानता का अधिकार देने को राज़ी होंगे। इस परिवर्तन का श्रीगणेश वर्तमान आन्दोलन से हो गया है, और जैसे-जैसे जन-संख्या में शिक्षा का प्रचार बढ़ता जायगा और वे अपने जन्मसिद्ध अधिकार को समझते जायँगे, वैसे-वैसे ही इस हानिकारिणी प्रथा का अन्त भी होता जायगा।

❊ ❊ ❊

हमारे पतन का मूल कारण !

हाल में पञ्जाब भ्रमण करते हुए आचार्य प्रफुल्लचन्द्र राय ने हिन्दू-समाज की वर्तमान दुर्दशा और उसके सुधार के उपायों पर एक बड़ा ही मार्मिक वक्तव्य प्रकाशित कराया है। उसमें आपने स्पष्ट कहा है कि हिन्दू-जाति के पतन का मूल कारण जात-पाँत का भेद-भाव ही है। यह हमारे समाज-रूपी शरीर में ऐसा ज़हर पैदा कर रहा है, जिससे हमारी जीवन-शक्ति नष्ट होती जाती है और अङ्ग-प्रत्यङ्ग शिथिल पड़ते जाते हैं! यह निन्दनीय प्रथा एक भाई को दूसरे भाई से लड़ाती है और एक समुदाय को दूसरे समुदाय का विरोधी बनाती है। इसका सबसे अधिक विषमय प्रभाव अछूतों पर पड़ा है, जो समाज के आवश्यकीय अङ्ग होते हुए भी, अस्पृश्य और दलित बना दिए गए हैं! इसके कारण करोड़ों नर-तन-धारियों को मनुष्यता के अत्यन्त साधारण अधिकारों से भी वञ्चित कर दिया गया है, और उनको उन्नति करने का ज़रा भी अवसर नहीं दिया जाता! आचार्य राय ने विदेशों के उदाहरण देकर सिद्ध किया है कि ऐसी कुप्रथा संसार के अन्य किसी देश में नहीं है और वहाँ छोटे से छोटा व्यक्ति भी चेष्टा करने पर राष्ट्र का सिरमौर बन सकता है। यह अवस्था केवल यूरोप तथा अमेरिका के आधुनिक देशों में ही नहीं पाई जाती, वरन् एशिया के चीन और जापान में भी, जो किसी दृष्टि से भारत के सहधर्मी कहे जा सकते हैं, अस्पृश्यता जैसी किसी प्रथा का नाम-निशान नहीं है! इन देशों में

मेहतर या भङ्गी नहीं होते !! वहाँ के किसान प्रत्येक घर में जाकर मैला (पाख़ाना) माँग कर ले जाते हैं और कभी-कभी तो उसके लिए पैसे भी देते हैं !!! इन देशों में प्रत्येक व्यक्ति अपनी इच्छा और रुचि के अनुसार कोई भी काम कर सकता है। आचार्य राय के मतानुसार कोई भी व्यक्ति, यदि वह स्वच्छ और पवित्र रहता है, तो छूने और खान-पान में सम्मिलित होने योग्य है। उन्होंने अन्तर्जातीय विवाहों के प्रचार पर विशेष रूप से ज़ोर दिया है और इसमें सन्देह नहीं कि वर्तमान परिस्थिति में यह उपाय हिन्दू-जाति की निर्बलता को दूर करने में रामबाण सिद्ध होगा। इससे कुछ ही समय में हिन्दू-जाति, जो इस समय अनगिनती टुकड़ों में बँटी है, संयुक्त रूप धारण कर लेगी। यह सच है कि इन तमाम सुधारों और परिवर्तनों से पुराने विचारों के लोग अत्यन्त मर्माहत होंगे और स्वार्थी तथा ढोंगी पण्डित, पुजारी, पुरोहित आदि, जिनकी जीविका इस गुरुडम और गोरख-धन्धे पर ही चल रही है, बड़ा बावैला मचाएँगे; पर यदि हिन्दुओं को सर्वनाश से बचना है और वे अन्य जातियों द्वारा अब अधिक ठुकराए जाने की आकांक्षा नहीं रखते, तो उनको अपने गले से यह जात-पाँत और छुआछूत का पत्थर उतार कर फेंकना ही पड़ेगा !

❁ ❁ ❁

देशी राज्यों का अनुकरणीय कार्य

देशी रियासतें साधारणतः भारत के राष्ट्रीय विकास में बाधा-स्वरूप हैं, तो भी उनकी आंशिक स्वतन्त्रता किसी-किसी विषय में बड़ी उपयोगी और अनुकरणीय सिद्ध हो जाती है। विशेषतः समाज-सुधार के जिन कार्यों को ब्रिटिश सरकार जनता में अप्रिय बनने के ख़याल से करने से हिचकती रहती है, उन्हें इन रियासतों के शासक, अगर उनमें कुछ सुबुद्धि होती है तो, बड़ी जल्दी पूरा कर डालते हैं। इसका एक ताज़ा उदाहरण अछूतोद्धार सम्बन्धी आन्दोलन है। इसके लिए जहाँ ब्रिटिश भारत के सुधारकों को एड़ी-चोटी का पसीना एक करना पड़ रहा है, वहाँ कई देशी राज्यों ने क़ानून बना कर इसको एक दिन में हल कर डाला है। बड़ौदा, कोल्हापुर और काश्मीर के शासकों ने अछूतों को राज्य के अधिकारयुक्त समस्त मन्दिरों तथा अन्य सार्वजनिक स्थानों में प्रवेश करने का अधिकार दे दिया है। दक्षिण भारत में, जहाँ अछूत-प्रथा का प्रश्न वास्तव में विकट है, इस शुभ कार्य को आरम्भ करने का श्रेय सैण्डूर नाम की छोटी रियासत को है। वहाँ के शासक की तरफ़ से एक घोषणा-पत्र प्रकाशित किया गया है। जिसमें कहा गया है—"अछूत-प्रथा एक बड़ा अभिशाप है और यह हिन्दू-समाज की जीवनी शक्ति का नाश कर रही है। इस हानिकारिणी प्रथा का अन्त होने से राज्य की प्रजा का बहुत-कुछ कल्याण होने की आशा है।

पुरस्कार-प्रतियोगिता

उत्तर की तिथि में वृद्धि

'चाँद' के बहुत से पाठकों—विशेष कर भारत से दूर उपनिवेशों में रहने वाले सज्जनों के विशेष अनुरोध से हमने गत नवम्बर और दिसम्बर में छपी हुई पहेलियों के निर्णय की तिथि १५ जनवरी की जगह १५ फ़रवरी सन् १९३३ कर दी है। और जब तक इन पहेलियों का निर्णय न होगा, तब तक दूसरी पहेली भी न छापने का निश्चय किया है। आशा है, पहेली-प्रेमी पाठक इससे लाभ उठाएँगे।

—सम्पादक

(पुरस्कार-प्रतियोगिता विभाग)

इसलिए दरबार अपनी वर्षगाँठ के उपलक्ष में अछूत कहलाने वाली जातियों को राज्य के मन्दिरों, कुँओं, स्कूलों और अन्य संस्थाओं का उपयोग कर सकने का अधिकार प्रदान करते हैं।" दक्षिण भारत के प्रधान हिन्दू-राज्य ट्रावनकोर का ध्यान भी इस तरफ़ आकृष्ट हुआ है और वहाँ राज्य की तरफ़ से एक कमीशन नियुक्त किया गया है, जो अछूतों के मन्दिर-प्रवेश के सम्बन्ध में जनता का मत संग्रह करेगा। ये निश्चय ही शुभ चिह्न हैं और यदि अन्य राजा भी शीघ्र इनका अनुकरण करें तो ब्रिटिश भारत के आन्दोलन को इससे बहुत-कुछ परोक्ष सहायता प्राप्त होगी।

हमने देखा न सलामत कभी इनका दामन,
गुल[1] भी तक़लीद[2] किया करते हैं दीवानों की।
हश्र[3] में और भी यह हश्र बपा कर देते,
है अलग इसलिए टोली तेरे दीवानों की।
गेसुए-हुस्न[4] में पेच और पड़े जाते हैं,
आज है सालगिरह इश्क़ के दीवानों की!

—"नूह" नारवी

बाल खोले हुए क्यों आप चले आए हैं,
और दीवानगी बढ़ जायगी दीवानों की।

—"हमीद" इलाहाबादी

अपनी हस्ती पे नज़र चाहिए ऐ शम्अ-सहर[5],
हमने माना कि हक़ीक़त नहीं परवानों की।

—"ख़लीक़" इलाहाबादी

शबे वादा की सहर हो गई तारे डूबे,
लो मिटी जाती है दुनिया मेरे अरमानों की।

—"माजिद" इलाहाबादी

उसको जलने के लिए, हमको पिघलने के लिए,
दिल मिला शम्आ का क़िस्मत मिली परवानों की।

—"नूह" नारवी

आज वहशत यह बढ़ी आपके दीवानों की,
धज्जियाँ पाँव तक आई हैं गरेबानों की।

—"मुस्लिम" इलाहाबादी

हद जहाँ मिलती है आबादी से वीरानों की,
धज्जियाँ कुछ नज़र आती हैं गरेबानों की।

१—फूल, २—नक़ल करना, ३—क़यामत, ४—केश, ५—सुबह का दीपक।

भा गई दिल से अदा किसको यह दीवानों की,
बढ़ती ही जाती है तौक़ीर[6] गरेबानों की।

—"माजिद" इलाहाबादी

हर तरफ़ भीड़ न हो किसलिए दीवानों की,
दश्ते-वहशत[7] में नुमाइश है गरेबानों की।

—"नूह" नारवी

कितनी सुलझी हुई, यह सूझ है दीवानों की,
रात-दिन ख़ैर मनाते हैं गरेबानों की।
यह जुनूँ, और यह सज-धज तेरे दीवानों की,
हँस के सब देखते हैं शक़ गरेबानों की।
आई जब हश्र में बारी तेरे दीवानों की,
धज्जियाँ पेश हुईं पहले गरेबानों की।
है नज़र हलक़ए ज़ंजीर पे दीवानों की,
आ गई याद उन्हें अपने गरेबानों की।
शान दुनियाए-जुनूँ देख ले दीवानों की,
सब ने खाई है क़सम अपने गरेबानों की।
पूछ-गछ हश्र में होती नहीं दीवानों की,
ख़ूब बन आई यहाँ चाक गरेबानों की।
मौसमे-गुल[8] में यही राय है दीवानों की।
धज्जियाँ अब हों लगातार गरेबानों की।
फूल के बदले चढ़ा जाते हैं अहले[9] वहशत,
धज्जियाँ तुर्बते[10] मजनूँ पे गरेबानों की।
गुले-सदबर्ग[11]को वह देख के बोले "बिस्मिल",
ख़ास पहचान है यह चाक गरेबानों की।

—"बिस्मिल" इलाहाबादी

६—इज़्ज़त, ७—जङ्गल, ८—बसन्त ऋतु, ९—दीवाने, १०—क़ब्र, ११—गेंदे का फूल।

बातचीत

निम्न-लिखित नए ग्राहकों का चन्दा नवम्बर तथा दिसम्बर माह में प्राप्त हुआ है। ग्राहकों को चाहिए कि वे अपने नम्बर स्मरण रक्खें और पत्र-व्यवहार के समय इसे अवश्य लिखा करें। बिना ग्राहक-नम्बर के पत्रों की उचित कार्यवाही करना किसी भी दशा में सम्भव नहीं है।

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१५८५	श्रीयुत पी० एन० चन्द्रशेखर, अलीपी	३।।)
३१५८७	लाला रामचन्द्र, पो० बारमेर ...	६।।)
३१५८८	श्री० एस० डी० भटनागर, नार[illegible]र ...	३।।)
३१५८९	श्रीमती रामरानी देवी, इटावा ...	६।।)
३१५९०	विद्यार्थी मोदनारायणसिंह, पो० साम्हो	३।।)
३१५९१	चौ० राजा भैया मालगुज़ार, पो० करेली	६।।)
३१५९२	कुमार रामविजयसिंह, पो० जहानाबाद	,,
३१५९३	श्री० आर० एम० कोभाना, लरकाना	,,
३१५९४	बाबू वृजविहारीप्रसाद सिंह, (पटना)	,,
३१५९५	स्टेशन मास्टर, जोधपुर रेलवे, डेगाना	,,
३१५९८	हेड मास्टर, हिन्दू एङ्गलो संस्कृत स्कूल, सधौरा, (अम्बाला) ...	,,
३१५९९	श्रीयुत रुद्रमरनपति त्रिपाठी, पो० मन्सूरगञ्ज ...	,,
३१६००	श्री० किशोरीलाल, पो० सुलतानगञ्ज	,,
३१६०३	मुन्शी गेंदालाल जैन, बड़नगर	,,
३१६०५	बाबू जालीमसिंह, पो० नेवाई, (दुग)	,,
३१६०६	पं० भैरवलाल शर्मा, पो० भिलवारा	,,
३१६०७	पं० भगवानदीन अवस्थी, पचमढ़ी ..	,,
३१६०८	बाबू लछमनप्रसाद, मथुरा ...	,,
३१६०९	मिस्टर भास्कर राव, पो० शाहीबाग़, अहमदाबाद	३।।)
३१६१२	लाला किशनदास, शिमला ...	६।।)
३१६१३	श्री० विशुनदत्त शुक्ल, पो० चौबेपुर (कानपुर)	३।।)
३१६१४	सेक्रेटरी, हिन्दी वाचनालय, मु० पो० घटनजी	६।।)
३१६१५	श्री० गणेशप्रसाद, पो० लङ्का (बनारस)	,,
३१६१७	बाबू वालजी पोपत, पो० सेजुया, मानभूम	,,
३१६१८	श्री० उर्मिला देवी (जालन्धर) ...	,,
३१६१९	ठाकुर लालसिंह जी, फ़ेरगुसन रोड, बम्बई नम्बर १३	,,
३१६२०	श्री० हरदयाल जी, पो० समथर ...	,,
३१६२१	पं० प्यारेलाल जी, बुलन्दशहर ...	,,
३१६२२	प्रिन्सिपल, पटना लॉ कॉलेज, पटना	,,
३१६२३	बाबू राधाकृष्ण, मु० पो० जसवन्तनगर	३।।)
३१६२५	बाबू ईश्वरसिंह, लैन्स डाउन हिल ...	६।।)
३१६२६-ए	श्री० बलभद्र शर्मा, अस्सीघाट, बनारस सिटी	,,
३१६२७	श्री० जगदीशशरण गुप्ता, पो० कुरला	,,
३१६२८	लाला काकमल राजनारायण, शाहजहाँपुर	,,
३१६२९	श्री० डी० एस० जमालकर, गुलबरगा	,,
३१६३०	बा० प्रह्लादराय, सरैयागञ्ज, मुज़फ़्फ़रपुर	,,
३१६३१	लाला रुद्रनाथसिंह, गोंडा ...	,,
३१६३२	मेसर्स नवलसिंह सोहनलाल, हिस्सार	,,
३१६३३	पं० केदारीलाल जी, एटा ...	,,
३१६३४	श्रीयुत हरदयालसिंह, हवड़ा ...	,,
३१६३५	श्री० विभूतिप्रसाद, बनारस ...	,,
३१६३६	श्री० मदनमोहन, रतनगढ़ ...	३।।)
३१६३७	पं० लक्ष्मणप्रसाद त्रिपाठी, बिलासपुर	६।।)
३१६३८	बा० छबीलसिंह, पो० बरछा ...	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२१६३९	मेसर्स रामचन्द्र रुद्रजी देसाई, महुवा, नवसारी	६॥)
२१६४१	श्रीरामदेव सिंह, डिगबोई	,,
२१६४२	सेक्रेटरी, मारवाड़ी मुफ़्त वाचनालय, पो० भुसावल	,,
२१६४३	कुमार राधाकिशन, इन्दौर	३॥)
२१६४४	श्री० गिरधारीलाल, पो० राघोगढ़	,,
२१६४५	वैदिक हिन्दी पुस्तकालय, बाँकीपुर, पटना	५)
२१६४६	श्री० हरबलदेव राम, मीरगञ्ज, जौनपुर	,,
२१६४७	धर्मपत्नी रणजीतसिंह वर्मा (कानपुर)	६॥)
२१६४८	श्री० पी० एन० नायर, अवादन	५)
२१६४९	सेक्रेटरी, ग्राम पञ्चायत, पो० सिवनी	६॥)
२१६५०	सेक्रेटरी तेज पुस्तकालय, पो० रावतसर	,,
२१६५१	मेसर्स शिवप्रसाद शाह रामचन्द्र शाह, पो० सिरामपुर, हुगली	,,
२१६५२	पं० केदारनाथ जी शुक्ला, बहार	,,
२१६५३	श्री० त्रिलोकचन्द, सिकन्दराबाद	,,
२१६५४	सेठ कृष्णगोपाल, कामटी	,,
२१६५५	श्री० ज्ञानेन्द्र सूफ़ी, रायपुर	,,
२१६५६	मिस्टर टी० वी० फ्रिंग, शिलाङ्ग	,,
२१६५७	श्रीमती कमलादेवी, पो० नावागढ़	३॥)
२१६५८	श्रीयुत लक्ष्मणसिंह कौड़िया, चन्दिया	६॥)
२१६५९	मेसर्स रामसहाय तुलसीराम, पो० जसवन्तनगर	३॥)
२१६६०	श्रीयुत एस० के० खरे, कटनी	६॥)
२१६६१	श्रीयुत ए० आर० प्रसाद, हजारीबाग़	,,
२१६६२	श्रीयुत भागमल, न्यू दिल्ली	३॥)
२१६६३	श्रीयुत शशिभूषणप्रसाद, पो० रातू, राँची	६॥)
२१६६४	श्रीयुत पुष्पदन्तप्रसाद जैन, पो० दौलतगञ्ज	,,
२१६६५	श्रीयुत गोकुलचन्द जी, कलकत्ता	,,
२१६६६	श्रीमती धर्मपत्नी लाला पन्नालाल, मेरठ कैण्ट	,,
२१६६७	शङ्करलाल वर्मा, कानपुर	,,
२१६६८	श्रीयुत मानसिंह, पो० नजीबाबाद	,,
२१६६९	मिसेज़ खेमकुमारी, फ़तेहगढ़	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
२१६७०	श्रीयुत एस० एन० बक्सी, लखनऊ	६॥)
२१६७१	श्रीयुत रामानन्द गुप्ता, लखनऊ	,,
२१६७५	रामचरित्र शर्मा, फ़िजी	६॥)
२१६७७	मिसेज़ ए० डी० खन्ना, पो० जेटसर	६॥)
२१६७९	मेसर्स वृन्दावन हरप्रसाद, झाँसी	,,
२१६८०	श्रीयुत कन्हैयालाल, राँची	,,
२१६८१	श्रीयुत छोटेलाल, लखनऊ	,,
२१६८२	मेसर्स मथुरादास द्वारकादास, गढ़वाल	,,
२१६८३	श्रीयुत शम्भुनाथ, जोधपुर	,,
२१६८४	स्वामी हरीनन्ददास जी, सक्कर	,,
२१६८५	श्रीयुत कामेश्वरप्रसाद, पो० लखनपुर	३॥)
२१६८६	श्रीयुत मदनमोहनदास, शिकोहाबाद	,,
२१६८८	श्रीयुत रोशनलाल, सरगोधा	६॥)
२१६९१	श्रीयुत ज्योतिस्वरूप सराफ़, अम्बाला सिटी	,,
२१६९२	मिस्टर राधेमोहन खन्ना, दिल्ली	,,
२१६९३	श्रीमती सावित्रीदेवी विदुषी, मथुरा	,,
२१६९४	मिसेज़ प्रकाशवती गुप्ता, मुरादाबाद	,,
२१६९५	मेसर्स दयालचन्द त्रिलोकीनाथ, पो० टोवा टेकसिंह	,,
२१६९६	मिसेज़ जे० एन० कौल, भावलनगर	,,
२१६९७	श्रीयुत शिवशङ्कर शर्मा, आगरा	,,
२१६९८	मिसेज़ शिवनारायण वशिष्ठ, गुरगाँव	,,
२१६९९	बा० कुशलचन्द, सरदारशहर	,,
२१७००	मेसर्स जे० नाथ एण्ड सन्स, अजमेर	,,
२१७०१	श्रीयुत बाँकेबिहारी लाल, पो० लङ्का	,,
२१७०३	बा० कुशलपालसिंह (मैनपुरी)	५)
२१७०४	श्रीयुत मोहनलाल बियानी, फ़तेहपुर	६॥)
२१७०५	श्रीमती रानीबहू, जबलपुर	,,
२१७०६	मेसर्स गोपालदास करोरीमल बेलन-गञ्ज, आगरा	,,
२१७०७	मेसर्स रामसनेही बालकराम, (फ़र्रुख़ाबाद)	,,
२१७०८	श्रीयुत कपूरचन्द जैन, झाँसी	,,
२१७०९	श्रीयुत लखपत राय, कलकत्ता	,,
२१७१०	जगन्नाथप्रसाद तिवारी, इन्दौर	,,
२१७११	महेन्द्रदत्त शर्मा, नरसिंहपुर	,,

ग्राहक-नम्बर	पता	प्राप्त रक़म
३१७१२	श्रीयुत मदनगोपाल, अजमेर ...	६॥)
३१७१३	श्रीमती हेमलताबाई, पो० सारनगढ़	,,
३१७१४	मिसेज़ प्रेमनारायण, नगीना ...	,,
३१७१५	श्री० गनेशलाल, शिमला ...	,,
३१७१६	दिवान मानचन्द्र, काँगरा ...	,,
३१७१७	बा० हरमोहनसिंह, हापुर ...	,,
३१७१९	श्री० नाथूलाल, लुधियाना ...	,,
३१७२०	मेसर्स चरनमल सुगनचन्द, फजिल्का	,,
३१७२१	मेसर्स निरञ्जनलाल रामचन्द्र, एटा	,,
३१७२२	आत्मप्रकाश नम्बरदार, पो० सराय सीधू	,,
३१७२३	श्री० रामशङ्कर, मुरादाबाद ...	,,
३१७२४	श्रीमती सावित्री देवी, न्यू दिल्ली ..	३॥)
३१७२५	बाबू विपिनविहारी, मु०पो० शिकोहाबाद	,,
३१७२६	श्री० माहेश्वरप्रसाद, भागलपुर ...	,,
३१७२७	मेसर्स पतीराम धनसुखदास, शिको-हाबाद	,,
३१७३०	श्री० प्यारेलाल जी मारवाड़ी, पो० सिवान	६॥)
३१७३१	बा० अम्बिकाप्रसाद, मुङ्गेर ...	,,
३१७३२	श्रीमती चन्दनदेवी, हमीरपुर ...	,,
३१७३३	श्री० बद्रीलाल, कैम्प दौर ...	,,
३१७३४	बा० फूलचन्द जी, शिकर ...	,,
३१७३५	मिसेज़ विद्यावती देवी, मण्डले ...	३॥)
३१७३६	श्रीमती कृष्णादेवी, पो० अकोट ...	३॥)
३१७४१	लाला रतनलाल जोगी, पो० चित्रकोट	६॥)
३१७४२	मिसेज़ एस० के० गफ़ूर, फ़ैज़ाबाद ...	,,
३१७४३	श्रीमती तारावती व्यास, कानपुर ...	,,
३१७४५	श्रीयुत केदारनाथ, बहराइच ...	३॥)
३१७४६	मिसेज़ आर० एन० अजारी, लाहौर	६॥)
३१७४७	श्रीयुत झूमनसिंह, सोजत सिटी ...	,,
३१७४९	पं० महादेवप्रसाद शर्मा, बीकानेर ...	,,
३१७५०	मिसेज़ गुप्ता, इन्दौर ...	,,
३१७५१	श्रीयुत कालकाप्रसाद जी, इन्दौर ...	,,
३१७५२	श्रीयुत विकासचन्द्र कपूर, बरेली ...	,,
३१७५३	श्रीयुत भोलासिंह, पो० जसराना ...	,,
३१७५४	श्रीमती सुशीलादेवी सक्सेना, लश्कर	,,
३१७५५	मेसर्स सूरजमल जयचन्द, मु० पो० दोहद	५)
३१७५६	श्री० रामस्वरूप शर्मा, कोटा ...	६॥)
३१७५८	श्रीमती दयावती देवी, सुक्कर ...	,,
३१७५९	श्रीयुत रघुनाथसहाय, आगरा ...	,,
३१७६०	ऑनरेरी सेक्रेटरी, इण्डियन रेलवे इन्स्टीट्यूट, सिरसा ...	,,
३१७६१	श्रीयुत बरकत राय, गुजरानवाला ...	,,
३१७६२	श्रीयुत नेमीनाथ ब्रह्मचारी, पो० चन्दबद	,,
३१७६४	श्रीयुत रूपनारायण, बाराबङ्की ...	,,
३१७६५	श्रीयुत जयप्रकास, लाहौर ...	६॥)
३१७६६	ठाकुर श्रीनारायण, पो० चौबेपुर ...	,,
३१७६७	बा० सत्यनारायणप्रसाद सिंह जी, मुज़फ़्फ़रपुर	,,
३१७६८	श्रीयुत रामगोपाल कहार, सिलचर	,,
३१७६९	श्री० कल्यान जी कुँवर जी, पो० गोंडिया	,,
३१७७०	श्री० वज़ीर यादवसिंह, मण्डी स्टेट ...	,,
३१७७१	श्री० कन्हैयालाल बर्मन, बनारस सिटी	,,
३१७७२	श्रीयुत नन्दकिशोर लोहिया, माय-मनसिंह	,,
३१७७३	राजकुमारसिंह जी, सुलतानपुर ...	,,
३१७७४	?० सच्चिदानन्द, पटना ...	,,
३१७७५	उत्कल भारती डॉक्टर कुन्तलकुमारी देवी, दिल्ली	,,
३१७७६	श्रीयुत वीरेन्द्रसिंह, मैनपुरी ...	,,
३१७७७	श्री० जे० पी० सक्सेना, लाहौर ...	,,
३१७७८	एस० डी० धर, श्रीनगर ...	,,
३१७७९	श्रीमती सुभद्रादेवी, गुरगाँव ...	,,
३१७८०	श्रीमान आर० खुमानसिंह साहेब, उदयपुर	,,
३१७८१	श्रीमान भैया राजकिशोर देव, पलामू	,,
३१७८२	श्री० हरिवल्लभ, मैनपुरी ...	,,
३१७८३	श्रीयुत वृजलाल झुनझुनवाला, रङ्गून	,,
३१७८४	प्राइवेट सेक्रेटरी झालावाड़, झालरापटन	,,

निम्न-लिखित पुराने ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों के रुपए हमें मिले हैं।

ग्राहक नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक नं०	प्राप्त रक़म
१२८७	६॥)	८०८६	६॥)
७५१५	,,	११२७	,,

ग्राहक न०	प्राप्त रक़म	ग्राहक न०	प्राप्त रक़म	ग्राहक न०	प्राप्त रक़म	ग्राहक न०	प्राप्त रक़म
८०४५	६॥)	२१११८	६॥)	२८९१५	६॥)	२९७४५	६॥)
२०७२७	"	३१०७७	"	२९७९३	"	२९६८०	"
२२०६२	"	२७९४	"	२९७७८	"	२९६९०	"
१५८६०	"	११८८५	"	२११६२	"	२९७६१	"
३००९३	"	६८८७	"	१५७०२	"	२३४०७	"
१८२४९	"	२७४२०	"	६४५	"	५७९	"
२१२४२	"	७८२०	३॥)	२४२१७	"	३०१३६	"
११८६३	"	११८६९	६॥)	२९७८९	"	२९७५१	"
१२५४५	"	२३१५५	"	२९६९४	"	२७३२२	"
२०५२२	"	२१४९१	"	२७१३६	"	२७१२५	"
२३०६७	"	२९६१०	"	२७१२४	"	७५३२	"
२९६३९	"	२९६०४	"	७५४१	"	७७३६	"
७१५६	"	२९७८६	"	२९८०५	"	१५४७८	"
३०१३७	"	३०१०२	"	१५८९०	"	३१२०	"
३१५८७	"	२१२२१	"	११२६५	"	१५३१५	"
३९१३	"	१६९७३	"	२७१२९	"	५९२	"
२९४७७	५॥)	२९५७९	"	२०१५	५।)	५०४९	"
८९३६	६॥)	२३७८१	"	१८२७	६॥)	२९८१५	"
७८१०	"	१९३९०	"	२९७८५	"	२१९४४	"
३०५९७	३॥)	२९६९१	"	२९९६७	"	२२७९३	"
२९८९४	६॥)	८१७९	"	२८४३३	"	२७०३८	"
३०१४३	"	३०४३१	"	१०५९	"	२२०४२	"
२९७४८	"	२७१५६	"	१५३६६	"	२३३४७	"
२००१४	३॥)	४८९५३	५)	२५९३७	"	८१७९	"
७३०१	६॥)	३०४४९	६॥)	३०२२३	"	२८५५३	"
११२८०	"	१५७३२	"	१८८३	"	१८५३	"
२०५८८	"	२८०५२	"	१७३२	"	६३८	"
२९८८२	"	११८५५	"	२२५९७	"	१५६६६	"
२३२९४	"	८२४७	"	२९७८०	"	२८४२५	"
१२५६८	"	२९९९२	"	२२७८५	"	२३१८९	"
५४०८	"	७०४	"	२३२४६	"	२५९७९	"
१७८४	"	४८१८	"	३१७०	"	२९७७७	"
११५०७	"	१५३०२	"	२९८१२	"	२३४०२	"
२२८१७	"	२३०६०	"	७२०२	"	१५११०	"
२७०८९	"	२५५८३	"	१२६४९	"	७७४०	"
२५८९९	"	२३७९५	"	२३५६९	"	२७२९९	"
२७८०९	"	२८४५१	"	२२६५८	"	१५८५८	"

ग्राहक नं०	प्राप्त रक़म	ग्राहक नं०	प्राप्त रक़म
२६८३५	६॥)	२६८०३	६॥)
२७०६२	"	२७०५६	"
२७२६४	"	६०३३	"
२२७३६	"	२२६२८	"
१५६०१	"	२६७५०	"
२६७४३	"	३०५६३	"
२३४५६	"	२२७१५	"
२२६१३	"	२२५५०	"
१५८६८	"	११४२०	"
२७२२७	"	२७२४०	"
२७३३७	"	१६२२७	"
२२७६१	"	३०५७५	"
२३०५७	"	१५६१०	"
२६६३२	"	२६६२५	"
१६२५	"	२३६४६	"
२६६८८	"	२२४७८	"
२२८१८	"	२७१३६	"
२६८८०	"	२६६०२	३॥)
२६६६६	"	२६८८८	६॥)
२६८०	"	३०६१	"
१५६३३	"	२६८०	"
२७४०२	"	१४४५५	"
१८८५	"	२६६६०	"

निम्न-लिखित ग्राहक-नम्बर के ग्राहकों को फ़रवरी १९३३ का अङ्क वी० पी० द्वारा पहले सप्ताह में भेजा जायगा। आशा है, वी० पी० स्वीकार कर बाधित करेंगे।

६६१ ६५८ १०६६ १२७४ १५३४ १५६१ १६८४
३२०५ ३२६३ ३३४८ ३३५६ ३३८६ ३४२८ ३६६३
५११८ ५२७६ ५५१४ ७६२५ ७६३० ७६६६ ८०१५
८१११ ८१६६ ८९६३ ८६६६ ६६६० १०१३७ १०१४३
१२०७० १२३८१ १२४१६ १२४२३ १२५५१ १२५५३
१२५७६ १२५८६ १२५६३ १२६५४ १२६८० १२७३०
१२७२२ १२७६६ १३८५१ १५५७८ १५७३५ १५६३८
१५६४८ १५६५७ १५६६४ १६०५७ १६१२८ १६१२६
१६१४८ १६१६३ १६१८० १६२०६ १६२२२ १६२४४
१६२७८ १६२८३ १६२८८ १६२६१ १६२६६ १६३००
१६३०५ १६३१६ १६३२५ १६३२६ १६३३० १६३३३
१६३५१ १६३५४ १६३५५ १६३५७ १६३६१ १६३६८
१६३७५ १६३७६ १६३८१ १६४५६ १६४७१ १६४७४
१६४७६ १६४७८ १६४८० १६४८२ १६४८३ १६४६६
१६५०३ १६५०५ १६५०६ १६५१४ १६५२० १६५२१
१६५२५ १६५३१ १६५४१ १६५५० १६५६१ १६५६०
१६६०६ १६६०६ १६६११ १६६१८ १६६२४ १६६२६
१६६२६ १६६३० १६६३५ १६६४२ १६६७६ १६७०४
१६७१५ १६७१६ १६७२० १६७२३ १६७४४ १६७४५
१६७४७ १६७६७ १६७८४ १६७६० १६७६१ १६३७३
१६८०६ १६८१० १६८५४ १६८५५ १६८८८ १६६२२
१६६२३ १६६३१ १६६६७ १६६६८ १६०३६ २४१५५
१६२६८ १६६१५ २०५७४ २२३७८ २२४०२ २३२०८
२३२४८ २३४२५ २३४३१ २३४८३ २३६६४ २३८१२
२३८१६ २३८४८ २३८५६ २३८७३ २३६०५ २३६१२
२३६२२ २३६३६ २३६५१ १७३११ १७३२७ १७३२८
२३६५३ २३६५४ २३६५५ २३६६२ २३६७६ २३६८०
२३६६१ २३६६४ २३६६६ २४०१४ २४०१५ २४०१६
२४०२१ २४०२३ २४०३३ २४०३८ २४०४१ २४०४६
२४०५३ २४०५८ २४०६० २४०६४ २४०६६ २४०७२
२४०७४ २४०७६ २४०७८ २४०७६ २४०८४ २४०६०
२४०६२ २४०९६ २४०९७ २४०६८ २४१०४ २४१०६
२४१०७ २४११० २४१११ २४११२ २४११८ ३०५४१
२४११६ २४१२० २४१२६ २४१३३ २४१३५ २४१४१
२४१५६ २४१५७ २४१६० २४१६४ २४१६६ २४१६७
२४१७१ २४१७३ २४१७५ २४१७६ २४१७६ २४१८०
२४१८२ २४१८३ २४१८५ २४१८६ २४१६० २४१६४
२४१६५ २४१६६ २४२०१ २४२०४ २४२०६ २४२०८
२४२१४ २४२१५ २४२१६ २४२१६ २४२२२ २४२२४
२४२२६ २४२४० २४२५६ २४२६४ २४२६८ २४२६६
२४२७५ २४२७६ २४२८२ २४२८८ २४२६२ २४३०६
२४३२१ २४३२३ २४३२४ २४३२६ २४३३४ २४३३५
२४३३८ २४३४१ २४३५७ २४३६१ २४३६५ २४३६८
२४३६६ २४३७२ २४३७७ २४३८० २४३८७ २४३८६
२४३६२ २४३६४ २४४०५ २४४१४ २४४१५ २४४१६
२४४१७ २४४१८ २४४२५ २४४३१ २४४३३ २४४३४
२४४४० २४४४१ २४४४५ २४४४७ २४४४६ २४४५३
२४४५६ २४४७४ २४४७५ २४४७६ २४४७७ २४४७६
२४४८३ २४५०३ २४५०४ २४५१५ २४५१८ २४५३५
२४५३८ २४५३६ २४५५१ २४५६५ २४५६७ २४५६८
२४५७१ २४५७३ २४५७४ २४५७६ २४५७६ २४५८३
२४६०० २४६१५ २४६५६ २४६५७ २४६६१ २४६६३
२४६६४ २४६७६ २४६८० २४६६८ २४७०४ २४७६५
२४७६१ २४७६२ २४८१० २४८३६ २४८४१ २४८४२
२४८४७ २४८५१ २४८५२ २४८६० २४८६३ २४६१२
२४६४२ २४६८५ २४६८८ २४६६५ २५०५१ २५२५४
२५३३४ २५३६६ २५४७० २५६३० २५६४२ २६४८८
२६५३३ २६५५३ २७१७६ २७२०६ २७२०६ २७२११
२७२४४ २७३४६ २७३५४ २७३५६ २७३६० २७३६१
२७३६४ २७३७५ २७३७८ २७४०४ २७४२३ २७४२६
२७४५१ २७४६३ २७४६७ २७४६८ २७४८३ २७४८५
२७४८६ २७४८७ २७४८८ २७४६० २७४६२ २७५०२
२७५०३ २७५०६ २७५०८ २७५२१ २७५२४ २७५२६
२७५३२ २७५३५ २७५३६ २७५४४ २७५५२ २७५५५

२७५५८ २७५६२ २७५६३ २७५६४ २७५७० २७५७४
२७५७९ २७५८६ २७५८८ २७५९३ २७५९५ २७५९६
२७५९७ २७६०१ ३०५४२ २७६०८ २७६१० २७६११
२७६१७ २७६२० २७६२१ २७६२२ २७६२३ २७६२४
२७६२५ २७६२८ २७६३१ २७६३२ २७६४४ २७६४५
२७६४६ २७६४७ २७६४९ २७६५० २७६५१ २७६५५
२७६५६ २७६६२ २७६६६ २७६८० २७६८२ २७६८४
२७७१० २७७१२ २७७२५ २७७२८ २७७३० २७७३२
२७७५० २७७५९ २७७६४ २७७६७ २७८१३ २७८२८
२७९६३ २८३४२ २८५१० २८६७३ २८७२७ २८७३३
२८७३८ २८८०८ २८८०९ २८९३३ २८९४५ २८९८१

२९९२२ २९९२३ २९९२४ २९९८३ २९९९१ २९९९४
२९९९५ २९९९८ ३०००९ ३००१२ ३००१४ ३००१६
३००१७ ३००२० ३००२३ ३००२५ ३००२६ ३००३०
३००३२ ३००३३ ३००३५ ३००३६ ३००३७ ३००४१
३००४२ ३००४७ ३००४८ ३००५३ ३००५७ ३००५८
३००५९ ३००६२ ३००६६ ३००६७ ३००७४ ३००७५
३००७६ ३००८७ ३००८९ ३००९० ३००९२ ३००९५
३००९६ ३००९९ ३०१०० ३०११९ ३०१२३ ३०१२५
३०१२७ ३०१३१ ३०१३३ ३०१४० ३०१४१ ३०१४८
३०१४९ ३०१६३ ३०१६७ ३०१७४ ३०१८७ ३०१९७
३०२०३ ३०५३६ ३०५३७ ३०५३८ ३०५३९ ३०५४०

सूचनार्थ निवेदन है

"मेरी भतीजी ६ महीना राज्यक्ष्मा (तपेदिक़) रोग से पीड़ित थी। श्री० स्वामी अमृतानन्द जी महाराज जो १६ सेण्ट जेम्स लेन नीबूतल्ला (बहु-बाज़ार) फ़ोन ३५२३ कलकत्ता में रहते हैं, उन्होंने उसे सिर्फ़ डेढ़ महीना के अन्दर ही बिलकुल अच्छा कर दिया। हालाँकि कलकत्ते के सब डॉक्टरों ने जवाब दे दिया था। परमात्मा स्वामी जी को अधिक दिन तक जीवित रक्खे और वे उपकार कर सकें।" भवदीय, ज्योतिष-चन्द्र सेन, पो० बरीसा, २४ परगना तारीख़ ५ अगस्त, १९३२।

---

३) में निहायत ख़ूबसूरत रिस्टवाच

१९३३ का कलेण्डर और डायरी मुफ़्त

लीवर और बहुत मज़बूत मैशीन। घड़ी को पत्थर पर पटक दीजिए तो भी शीशा नहीं टूटेगा। बिलकुल ही ठीक टाइम देने वाली गारण्टी ५ साल, क़ीमत ३) इसके साथ सन् १९३३ ई० का बहुत सुन्दर कलेण्डर और एक ख़ूबसूरत डायरी बिलकुल मुफ़्त। तीन घड़ियाँ लेने से डाक-ख़र्च अलग।

पता—इम्पीरियल ट्रेडिङ्ग को०,
पो० बक्स नं० ६७०१, कलकत्ता

कोई भी घर बाक़ी न बचे, जिसमें ८ दिन की चाबी वाली ऑफ़िस क्लॉक न हो

१,००० घड़ियों का चालान आया है, जो फ़ैक्टरी प्राइस पर बेचा जा रहा है। यह घड़ी समय ठीक देती है। पूरा घण्टा व आधा घण्टा ठीक बजाती है। एक दिन चाबी देने से ८ दिन चलती है—सस्तेपन और समय की सचाई में इन्होंने कमाल कर दिया। गारण्टी ७ साल। सागून का रङ्ग, फ़ैक्टरी की क़ीमत ७।।) डाक-ख़र्च अलग, साइज़ १६×१२ इञ्च। ऑर्डर के साथ ३) पेशगी भेजना चाहिए तथा नज़दीक के रेलवे स्टेशन का नाम लिखना चाहिए।

पता—भारत यूनियन ट्रेडिङ्ग को०,
सेक्सन (ए-सी) पो० ब० २३९४ (2394)
कलकत्ता

बच्चों के खेल की नक़ली झूठी (टॉय, लेड आदि) के चक्कर में न फँसें; हमारी सच्ची मज़बूत असली

आश्चर्यजनक पाकेट वाच

यह लीवर जेबी घड़ी है, जिसमें जार-प्रूफ़ मूवमेण्ट और कभी न टूटने वाला शीशा है। यह टाइम की सचाई, अनोखी सजावट, बनावट और सुन्दरता में अपना सानी नहीं रखती। गारण्टी १० साल, क़ीमत सिर्फ़ प्रचार के लिए २।) रक्खी गई है। ३ घड़ी एक साथ लेने से डाक-ख़र्च माफ़, ६ लेने से एक वैसी ही घड़ी मुफ़्त।

एम० एल० वाच कम्पनी,
(सेक्सन सी) १७६, क्रास स्ट्रीट, कलकत्ता

Printed and Published for and on behalf of The Chand Press Limited, by Munshi Naujadik Lal Srivastava, Editor, at The Fine Art Printing Cottage, 28, Edmonstone Road, Chandralok—Allahabad